जन-ज्ञान [मासिक]

मार्च १८७८

ओ३म्

ईश्वर

संसार के प्रसिद्ध
वैज्ञानिकों की दृष्टि में

मूल्य १०)

दयानन्द संस्थान

शिवरात्रि १९७८ तक

कोई आर्य परिवार ऐसा न रहे जिसके घर में वेद न हो।

दयानन्द संस्थान ही इतना सस्ता, सुन्दर
वेद भाष्य इतने कम मूल्यों में दे सकता है।

(८-३-१९७८ तक)

वेद भाष्य ४ जिल्दों में (कवर सहित)	१५१)
वेद भाष्य २ जिल्दों में १०१) कवर के	११)
वेद भाष्य सर्वश्रेष्ठ आर्ट पेपर पर :	४०१)

जिस के घर में वेद नहीं वह हिन्दू का घर नहीं !

अपना आदेश आज ही आधे मूल्य के साथ भेजिए—
रेलवे स्टेशन लिखें।

० ० ०

दयानन्द-संस्थान
वेद मन्दिर, दिल्ली-११००३६

सभी कृपया अंकित कर लें

यह अंक मार्च-अप्रैल का संयुक्तांक है। अगला अंक हमारा नए वर्ष का प्रथम अंक होगा और वह भी विशेषांक होगा। उसके लेखक हैं दिल्ली महानगर परिषद् के सदस्य प्रो० प्रशान्त वेदालंकार। मूल्य १०) किन्तु जन-ज्ञान के सदस्यों को वह भी उपहार में मिलेगा।

—संपादक

जन-ज्ञान के स्वामित्व व अन्य विवरण संबंधी जानकारी

फार्म ४, देखिए नियम ८

१. प्रकाशन का स्थान : नई दिल्ली. २. प्रकाशन अवधि : मासिक. ३, ४ व ५. मुद्रक, प्रकाशक व सम्पादक का नाम पता : १५९७ हरध्यान सिंह मार्ग नई दिल्ली-५. ६. उन व्यक्तियों के नाम व पते जो इस समाचारपत्र के मालिक व हिस्सेदार हैं या जो इसकी पूंजी के एक प्रतिशत से अधिक के शेयर होल्डर हैं : दयानन्द संस्थान नई दिल्ली-५

मैं राकेशरानी घोषित करती हूं कि ऊपर दिए गए विवरण मेरी पूरी जानकारी और विश्वास के अनुसार सही हैं.

(ह.) राकेशरानी प्रकाशक

प्रत्येक परिवार में वेद वाणी पहुंचाने के अभियान में हमारा हाथ बटाएं घर-घर में वेद भाष्य पहुंचाएं।

वेद मंदिर और आप का कर्तव्य

१. दान के प्रत्येक अवसर पर वेद मन्दिर को स्मरण रखिए।

२. अपने किसी भी प्रियजन की स्मृति में कैमरा बनवाइए। ५,००१) से १०,००१) तक

३. यज्ञशाला, मुख्यद्वार, व अतिथिशाला, गौशाला व अन्य विभागों को पूर्ण करने में सहयोग दीजिए।

४. कम से कम १००० ईंटों का व्यय २५१) देकर अपनी आहुति भेजिए।

५. पुस्तकालय के लिए पुस्तकें, अलमारी, दरी, लाउडस्पीकर, पंखे आदि दान में भेंट कीजिए।

६. अपने नगर से वेद मंदिर के लिए धन संग्रह कर भेजिए।

वेद मंदिर में पधारिए

मार्ग दर्शन : सादर निमंत्रण

जब भी आप दिल्ली पधारें तो वेद मंदिर में दर्शन अवश्य दें। हम आपके स्वागत के लिए उत्सुक हैं।

वेद मंदिर जाने के लिए पहले स्टेशन से या कश्मीरी गेट बस स्टैन्ड से आजादपुर आइए। आजादपुर जाने के लिए सभी स्थानों से बस सुविधा से मिल सकती है।

१३४ नं० की बस आजादपुर से वेदमंदिर के लिए दिन भर में ८ बसें मिलती हैं। प्रातः ६.२०, ७.४०, ९.००, ११.०० बजे। शाम के २.५०, ४.१०, ५.३०, ७.४०। यह बस आजादपुर से इब्राहीमपुर तक ही जाती है। इब्राहीमपुर से वेद मंदिर एक फर्लांग है। बाहर से आने वाले सज्जन रात्रि को वेद मंदिर में निवास भी कर सकते हैं। भोजन आदि से भी स्वागत होगा। प्रकृति के आंचल में—यमुना के किनारे बन रहे ऐतिहासिक वेद मंदिर में पधार कर हमारा मार्ग दर्शन कीजिए।

वेद मंदिर का दूरभाष नम्बर : ८०१२२१



महर्षि दयानन्द

जन - ज्ञान

[मासिक]

सम्पादक

कु० सुमेधा

दूरभाष : ५६६६३६

पता

१५६७, हरध्यानसिंह मार्ग

[निकट ३१-नाईवाला]

करौल बाग, नई दिल्ली-५

वार्षिक शुल्क २०)

विदेश मे ६ पौंड

(विमान से)

४ पौंड : समुद्री डाक से

(आजीवन ३०१)

एक प्रति : २ रुपये

वर्ष ८ : अंक ११

चैत्र सम्वत् २०३४

रजत अंक : मूल्य १०)

शिवरात्रि संदेश

बालक मूलशंकर जागा तो उसने धरती को जगा दिया, पाप - ताप - अज्ञान सभी भगाए, भाग्य उठाए, सपने सजाए और धरती के मानस का मंथन कर प्राणों को अमृत गंगा का पान कराया।

जागरण जीवन है,अमरता है,शक्ति है,प्यार है, संगीत और प्रेरणा का अजस्त्र स्रोत्र है। जो सोता है वह पाता नहीं, जो जागता है वह हारता नहीं।

इच्छा है कि शिवरात्रि का पर्व हमें १५० वर्ष पीछे ले जाए और हम फिर उस घटना को याद करें जब रात के अंधेरे में एक बालक के मन में जागरण की शंख ध्वनि गूंजी थी।

आज वह जागृति गीत हमारे मन की साध बन गया है। हम प्रत्येक वेद-भक्त को जगाना चाहते हैं। ईश्वर पुत्र को जागरण के मत्रों से पूत कर उन्हें कर्म क्षेत्र में अवतरित होने की इच्छा रखते हैं।

गंगा की धारा का संगीत हमें जगा रहा है। पक्षिगण अपनी कल ध्वनि से हमें उठने का आग्रह कर रहे हैं। अंधेरा अज्ञान का हमारे अंत:करण को चुनौती दे रहा है।

नया युग नई दिशा बोध भावना से हमारे जागरण की प्रतीक्षा कर रहा है। कौन सी वह घड़ी होगी जब राम के अनुयायी राम-सेना सजा आसुरी शक्ति का मर्दन करने चलेंगे।

भगवान कृष्ण का सुदर्शन चक्र उन हाथों की बाट देख रहा है जो उसे सम्भाल सकें। एक नयी ज्योति हम दूर दृष्टि से देख रहे हैं। हम देख रहे हैं वह क्षण—आते हुए जब मतवादों का अस्तित्व इतिहास के पृष्ठों की शोभा होगा।

अंतर आलोकित करो, मेरे प्राण ! जीवन का मूल्य समझो, अपना दायित्व पहचानो और देखो यह विशाल धरती जीवन के लिए दयानन्द-भक्तों की प्रतीक्षा कर रही है। जो सपने मूलशंकर ने देखे थे, जिन्हें दयानन्द ने जीवन रक्त से चित्रित किया था उन्हें साकार करने का समय आ गया है।

आर्य पुत्र ! प्राणों को ज्योतिर्मय कर प्रभु के सामीप्य से दयानन्द समान आगे बढ़ो। विजय आपके लिए वरमाला लिए खड़ी है।

उठो तो सही जागो तो सही—

—राकेशरानी पंडित

अंग्रेजी सत्यार्थ-प्रकाश

LIGHT OF TRUTH

मूल्य २०) : किन्तु अभी केवल
२५०) की २५ प्रतियां।
१० के लिए १८०) व ५ के लिए
१०५) भेजिए।

अधिक से अधिक मंगाएं

हिन्दी सत्यार्थ-प्रकाश

१७५) सैकड़ा

सुन्दर : आकर्षक : बढ़िया कागज पर

घर-घर में सत्यार्थ-प्रकाश
पहुंचाने का व्रत लें।

दयानन्द-संस्थान

वेद मंदिर दिल्ली-११००३६

मैं हृदय मन्दिर से लिख रहा हूँ~

१९७७ में हमने राजनैतिक अधिनायकवाद समाप्त किया था और अब १९७८ में आर्यसमाज से अधिनायकवाद समाप्त करना है। —भारतेन्द्रनाथ

पिछले अंक में हमारे विचारों को पढ़कर सार्वदेशिक सभा के एक उच्च अधिकारी ने हमें सूचित किया कि अब आपके और आपके पूरे परिवार के विरुद्ध बहुत गन्दे लेख लिखे जाएंगे। हमने उन का धन्यवाद किया और कहा कि वे जो चाहें लिखें, हम अपने विचारों पर दृढ़ हैं सत्य के लिए हमें सब के साथ मरना भी पड़े तो हम तैयार हैं।

उनके पास हमारे विचारों के विरुद्ध गालियाँ ही गालियाँ हैं, लेकिन हम उन्हें विश्वास दिलाते हैं कि हमारे मन में उनके प्रति, अपने पर निम्नतम आक्रमण करने वालों के प्रति कोई दुर्भावना नहीं है।

हम जो कुछ भी कर रहे हैं संसार के कल्याण के लिए, आर्यसमाज को शक्तिशाली बनाने के लिए कर रहे हैं और यदि कोई हमें हमारी भूल बता सके तो हम उसके प्रति नतमस्तक होंगे।

आर्यसमाज की कुदशा देखकर किसकी आंखों में आज रोना नहीं आता। इस स्थिति के लिए सभी एक दूसरे को अपराधी ठहरा रहे हैं। **हमारा पक्ष यह है कि सब लड़ने वाले हट जाएं और योग्य-विद्वान्-तपस्वी-संन्यासी के हाथ में नेतृत्व सौंप दें।**

एक कविता की पंक्ति है—

सिंहासन खाली करो
कि जनता आती है।

सो हम जनता को जगा रहे हैं। जनता को बुला रहे हैं। जनता में सर्वोच्च सत्ता निहित है। जनता का निर्णय सर्वमान्य होगा।

हमारे वर्तमान सार्वदेशिक सभा के अधिकारी स्वेच्छया गद्दी छोड़ दें तो इतिहास स्वर्णिम बनेगा। वे गद्दी के लिए आर्यसमाज की हत्या पर ही कटिबद्ध हैं तो जो भी होगा उसके लिए उत्तरदायी वे केवल वे होंगे।

अप्रैल में निर्वाचन है उस में परिवर्तन होगा ही—यह मेरा विश्वास है।

आर्यसमाज पर कृपा कीजिए !

सार्वदेशिक सभा के प्रधान माननीय लाला रामगोपाल जी से हम नम्रता पूर्वक करबद्ध प्रार्थना करते हैं कि यदि उन्हें आर्यसमाज से तनिक भी प्रेम हो तो वे शीघ्र से शीघ्र घोषणा कर दें कि अगले निर्वाचन में वे सार्वदेशिक सभा का प्रधान किसी योग्य विद्वान् संन्यासी को स्वयं बनाएंगे। यह उनकी आर्यसमाज के प्रति सच्ची सेवा होगी।

हमें लाला रामगोपाल जी के हृदय की भावना पर पूरा विश्वास है और हमारी यह धारणा है कि उन्हें आर्यसमाज के प्रति प्रेम भी है। अत महान् संगठन के उज्वल भविष्य के लिए वे गद्दी का मोह छोड़ कर सच्चे आर्यत्व का अनुकरणीय उदाहरण प्रस्तुत करेंगे, ऐसा हमारा विश्वास है, जिसके आधार पर हम यह प्रार्थना कर रहे हैं। वस्तुत: उन के कार्य-काल में जो कुछ भी हुआ, वह इतना अधिक अशोभनीय है कि उसकी चर्चा से भी मानसिक कष्ट होता है। फूट का वातावरण समाप्त करने के लिए, गुरुकुल कॉगड़ी को बचाने के लिए, आर्यसमाज को आगे ले जाने के लिए हमें अब एक सबल नेतृत्व चाहिए। प्रेम-श्रद्धा और सद्भावना के वातावरण में यह हो जाए इसी में सभी का आर्यसमाज का हित है।

क्या लाला जी अपनी महत्ता का परिचय देकर कुर्सी का मोह छोड़ेंगे ?

नयी क्रांति के लिए सार्वदेशिक सभा क्या करे ?

हमारी इच्छा है कि वर्तमान निर्वाचन की प्रथा कुछ बदली जाए। प्रत्येक साधारण सभा में अगले वर्ष का कार्यक्रम निश्चित हो, और जो भी उस कार्यक्रम को पूरा करने का व्रत ले, उसे सभा का नेतृत्व सौंपा जाए।

१-२ अप्रैल १९७८ में तीन वर्ष के लिए निर्वाचन होगा। अगले तीन वर्षों के लिए सभा का प्रधान उसे बनाया जाए जो निम्न कार्यक्रम को पूरा करने का व्रत ले।

तीन वर्ष में—

१. ३ लाख सत्यार्थ-प्रकाश हिन्दी में, १ लाख अंग्रेजी में और १ लाख प्रान्तीय भाषाओं में प्रसारित किए जाएं।

२. ५० हजार वेदों का भाष्य हिन्दी में, १० हजार प्राँतीय भाषाओं में, १० हजार अंग्रेजी में प्रसारित किया जाए।

३. प्रत्येक महाद्वीप में वैदिक विचारधारा के प्रचार के लिए एक विभाग खोला जाए और वह विभाग कम से कम १-१ लाख रु० प्रति वर्ष अपने-अपने महाद्वीप के देशों में प्रचार के लिए आरम्भ में व्यय करे।

४. भारत में कम से कम १००० नयी आर्यसमाजें खोली जाएं। और पुरानी आर्यसमाजों को संगठित किया जाए।

५. प्रत्येक प्रान्त के लिए एक प्रचार वाहन की व्यवस्था हो।

६. केरल-मद्रास-महाराष्ट्र-आन्ध्र आसाम-गुजरात-नागालैन्ड-त्रिपुरा आदि पिछड़े क्षेत्रों की ओर विशेष ध्यान दिया

जाए।

६. सभी प्रान्तों के लिए पृथक विभाग सभा में खोले जाएं।

८. विश्वविद्यालयों, महाविद्यालयों, समाचार पत्रों, आकाशवाणी, चल-चित्रों व राजनीतिज्ञों को प्रभावित करने के लिए पृथक-पृथक विभाग हों।

९. सभा का कार्यालय विशाल स्थान पर खुले में बनाया जाए, जिसमें स्वदेशी-विदेशी अतिथियों के लिए निवास की व्यवस्था हो। यज्ञशाला और सत्संग भवन हो। वर्तमान कार्यालय धार्मिक संस्था के लिए शोभनीय नहीं। कितना विचित्र है कि आर्यसमाज के सर्वोच्च संगठन में प्रतिदिन यज्ञ भी नहीं होता।

१०. न्याय सभा का सशक्त गठन कर सभी विवादों को समाप्त करने के लिए प्रभावशाली पग उठाए जाएं।

देश में—विदेश में—भूमंडल में आर्यसमाज छा जाए, इसके लिए कुछ करने का समय आ गया है। हम शताब्दी मनाकर नयी शताब्दी मनाने की तैयारी करें और ऐसा कुछ सोचें कि सारी धरती वेदमय हो जाए।

जो यह सब काम करने का संकल्प ले उस महान संन्यासी को नेतृत्व सौंपिए।

हम किस से कहें ?

जो करना है उस के लिए साधन नहीं, जहाँ साधन हैं वहाँ कर्म नहीं है। हम बिना साधनों के कर्म कर रहे हैं।

—प्रथम बार विश्व पुस्तक मेले में आर्यसमाज का संदेश लेकर आप का संस्थान गया।

—भारत के घर-घर में 'वेद' वाणी का ज्ञान आपके संस्थान ने कराया।

—वेद को विश्व धर्म बनाने के लिए रचनात्मक पग आपका संस्थान उठा रहा है। काम को भी यदि आप का आशीर्वाद नहीं मिलेगा, तो काम कैसे होगा ?

हम आपके बल से आगे बढ़ना चाहते हैं। दयानन्द-संस्थान को जितनी शक्ति मिलेगी—वेद की ध्वजा उतनी ही सबल रूप में फहराएगी।

आप स्वयं सोचिए हमारे कामों के सम्बन्ध में और यदि आपका मन संतुष्ट हो तो शिवरात्रि पर उदारता से अपना सहयोग दीजिए।

दान के प्रत्येक अवसर पर दयानन्द-संस्थान को याद रखिए फिर देखिए हम क्या करते हैं ? अपनी व्यथा आपसे न कहें तो किस से कहें ?

शिवरात्रि मनाइए

आर्यसमाजें, आर्यजनता, धर्मप्राण नर-नारी शिवरात्रि मनाएं। बोध दिवस के रूप में मनाइए या शिवरात्रि के रूप में, भावना एक ही है विश्व कल्याण की। सब शिवमय हो। अशिव कुछ भी न रहे, यही उद्देश्य हो।

धर्म के प्रचार के लिए आज हम कुछ करें। धर्म की रक्षा हुयी तो हमारी मानवता की रक्षा स्वयं ही हो जाएगी। आप कुछ कहते रहिए पर मन-प्राणों का सरगम जिस गति मे बज रहा है उस में धर्म संगीत प्रवाहित होना ही चाहिए।

—प्रश्न उभरता है आपने कितने

सत्यार्थ-प्रकाश बांटे हैं ?

—कितने परिवारों में प्रभु की अमरवाणी पहुंचायी है ?

—कितने अज्ञान के गढ़ों में प्रकाश किरणें पहुंचायी हैं ?

—धर्म और अधर्म का भेद बताने की शक्ति क्या आप में है ?

सोचिए और कुछ कीजिए। हम चाहते हैं उस ज्योतिपुंज 'शिव' के दर्शन सभी करें जिसने यह ब्रह्माण्ड रचा है। जो माँ भी है और पिता भी। सखा भी है और बन्धु भी। जिसने उसे जाना नहीं वह अनजाना है।

अपने परिवार, पड़ौस में, नगर में शिव-संदेश धर्म ज्योति के रूप में फैलाने के लिए जो कुछ कर सकते हों कीजिए। तभी शिवरात्रि बोधदिवस बन सकेगी।

५०वें वर्ष में

इस बार १४ मार्च को हम अपने जीवन के ४९ वर्ष पूरे कर ५० वें वर्ष में प्रविष्ट हो रहे हैं। इन ५० वर्षों में २७ वर्ष का समय हमने आर्यसमाज की सेवा के लिए अर्पित किया है। बदले में कुछ भी तो नहीं चाहा, न पद, न स्वागत, न धन, न प्रतिष्ठा। इच्छा-भावना केवल एक रही है कि मेरा आर्यसमाज धरती पर छा जाए, दुनिया को बदल दे।

अब जंगल में डेरा डाल दिया है। कुछ करने की साध है पर व्यक्ति नहीं। और किसी भी वस्तु का अभाव नहीं, सिवाय व्यक्तियों के। मुझे अगर दुःख है तो केवल यह कि हमारे बाद न घर का, न बाहर कोई ऐसा मिला जो हमारा काम सम्भाल सकता।

अब वेद मन्दिर में बैठ कर धरती पर वेद का साम्राज्य स्थापित करने की एकमात्र कामना है। यह कामना प्रभु ही पूर्ण करेंगे, ऐसा हमारा विश्वास है।

देव दयानन्द का नाम लेने वाले तो लाखों हैं पर दयानन्द काम करने के लिए जीवन देने वाले व्यक्ति नहीं रहे। कैसा दुर्भाग्य है यह, क्रान्ति की बात करने वाले भ्रांत पथ के पथिक बन गए। जोशीले भाषणकर्त्ता भाषणों से अधिक कुछ भी करने को तैयार नहीं। ऐसा लगता है कि ऋषि दयानन्द के प्रति स्नेह और आदर श्रद्धा की भावना समाप्त हो गई है।

त्रुटि कहां है ? शायद हममें ही है? हमारी साधना में, तप में कमी है अन्यथा यह कमी भी न रहती। सोच रहे हैं कुछ और करने की—

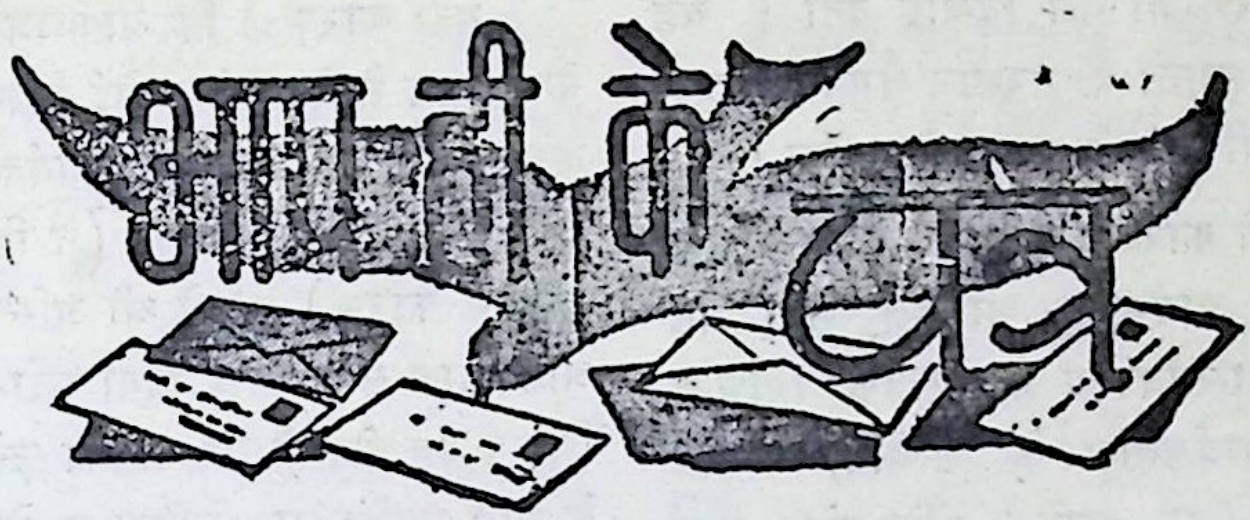
अपने जीवन में किसी से शत्रुता नहीं की। व्यक्तिगत रूप से किसी का अहित नहीं सोचा, सिद्धान्तों से समझौता नहीं किया।

बढ़ते जाना ही जीवन है। इसलिए कभी विश्राम नहीं किया। सैर सपाटा क्या होता है सोच भी नहीं पाया।

उम्र बीत गई चलते-चलते,
अरमान अभी बहुत बाकी हैं।
शायद कुछ कर सकें, न कर सकें,
कभी सोचा ही नहीं अंजाम हमने।

सभी का प्यार, आशीर्वाद, दुलार पाकर बचे हुए दिन भी प्यारे आर्यसमाज के लिए लगा सकूं--यही चाह है।

—भारतेन्द्र नाथ



आर्यसमाज का वर्तमान—

समस्याएं और समाधान

१. आर्यसमाज की प्रतिष्ठा बनी रहे, मैं रहूं या न रहूं । —शालवाले

२. कृण्वन्तो विश्वमार्यम् के लिए सर्वस्व समर्पण । - अग्निवेश

३. हम चाहते हैं केवल यह कि आर्यसमाज संसार पर छा जाए ।—भारतेन्द्र

४. विद्वानों में विरोध होने से अविद्वानों में वैर होना स्वाभाविक है ।
— ऋषि दयानन्द

आर्यसमाज के विभिन्न घटकों के नेताओं की आर्यसमाज के प्रति यह हार्दिक भावना । लेकिन इन नेताओं की दृष्टि-कोण भिन्नता तथा कार्य शैली की विप-रीतता के परिणामस्वरुप आज आर्यसमाज नाश के शिखर पर पहुंचने वाला है यदि यही आने वाले दशक में होता रहा तो क्या सरलता से सही अर्थों में आर्यसंगठन कहीं देखने को मिल जायेगा ?

आर्यसमाज की अजेय शक्ति विभिन्न खण्डों में बंट जाने के कारण आज आप-सी झगड़ों में विभाजित शक्ति का दुरु-पयोग किया जा रहा है महत्वपूर्ण रचनात्मक कार्यों का आज की परिस्थिति में कोई खास प्रश्न नहीं रह गया है।

परिणाम समाज में आर्यसमाज का प्रभाव तथा कार्यक्षमता लगातार कम होते जा रहे हैं आर्यसमाज का आन्दोलना-त्मक स्वरूप लुप्त होने के साथ संस्थात्मक स्वरूप उभर कर सामने है । इसके सिद्धान्तों तथा व्यवहारों में यदि प्रातः मायं का अन्तर कहा जाए तो क्या कुछ गलत होगा ?

ऐसी विषम स्थिति में इन सबका

---

१. सार्वदेशिक साप्ताहिक अंक २९ जनवरी ७८ से ।
२. वैदिक समाजवाद से ।
३. जन-ज्ञान अंक जनवरी ७८ से ।

मूल कारण जो मुझे दिखाई देता है वह है शीर्ष स्थानों में परस्पर वैमनस्य तथा सही अर्थों में न समझने की प्रवृत्ति।

इसी कारण आर्यसमाज के घटक एक दूसरे को आर्यसमाज का शत्रु मान बैठे लेकिन वास्तविकता यह है कि विभिन्न घटक आर्यसमाज के उत्थान, प्रचार प्रसार के लिए अपने-२ दृष्टि कोण तथा कार्य शैली के अनुसार प्रयत्नशील हैं।

इसलिए आर्यसमाज को आन्दोलनात्मक स्वरूप प्रदान करने के लिए यदि कोई पहली आवश्कता है तो वह है आर्य नेताओं को सभी मन मुटाव तथा पारस्परिक वैमनस्य भूलकर एक दूसरे को निष्पक्ष दृष्टिकोण से समझने—मूल्यांकन करने की।

आर्यसमाज के विभिन्न घटकों के नेताओं की अपनी-२ अलग-२ भूलें रही हैं। सार्वदेशिक सभा अधिकारियों मुख्यत: सभा प्रधान श्री राम गोपाल शाल वाले का आर्यसमाज के प्रति प्रेम, निष्ठा और प्रयत्नशीलता को भुलाया नहीं जा सकता। आपके अन्दर वह सभी गुण व योग्यतायें विद्यमान हैं जो किसी भी भेजे हुए वरिष्ठ आर्य कार्यकर्ता में होनी चाहिए। लेकिन उतनी बौद्धिक क्षमता आपके अन्दर नहीं है और न ही परिस्थति के प्रति वह जागरूकता, सचेतता जो समाज में क्रान्तिकारी परिवर्तन लाने सम्बन्धी आर्यसमाज के कार्यक्रमों का संचालन के लिए शीर्षस्थ नेता में होनी चाहिए। हां किसी संस्था का नेतृत्व करने सम्बन्धी आपकी योग्यता पर संदेह नहीं किया जाना चाहिए। किन्तु आर्यसमाज कोई संस्था तो नहीं है।

यही कारण है कि आप आर्यसमाज के माध्यम से देश को कोई दिशा देने में असमर्थ रहे हैं। वरिष्ठ कार्यकर्ता की बौद्धिक क्षमता के कारण (न कि नेतृत्व बुद्धि के कारण) आपने श्री अग्निवेश को आर्यसमाज से निकाल दिया सदा-सदा के लिए। यह ठीक है कि आपका उन लोगों के साथ मतभेद था। लेकिन मतभेद होना कोई अपराध तो नहीं है। उनके विचार तो वेदानुकूल दिखाई देते हैं और यदि कोई गलती ही थी तो उनका खण्डन तर्क देकर किया जाना ही उचित था। मतभेद तो स्वामी श्रद्धानन्द और म० कृष्ण में क्या कम थे? लेकिन क्या किसी को आर्यसमाज से निकाला गया था? इस संदर्भ में अधिक क्या लिखूं। मूलराज, एम.ए. को यहां याद किया जा सकता है।

पाठको! याद होगा आपके इन श्री शालवाले का हार्दिक प्यार, सहानुभूति इन युवा सन्यासियों ने खूब पायी। यह भी सही है कि इन्होंने (श्री अग्निवेश इन्द्रवेश) आर्यसमाज के अन्दर वर्ग संघर्ष का रास्ता अपनाया जो आज की स्थिति में गलत सावित हो चुका है। लेकिन दृष्टिकोण भिन्नता के कारण किसी को आर्यसमाज से निकालना कहां का न्याय है (जबकि वेद को सर्वोच्चता के रूप में स्वीकार किया गया हो)। मैंने श्री अग्निवेश की वैदिक समाजवाद पुस्तक को ध्यान से देखा है। पुस्तक में निहित आपकी भावना तथा प्रयत्नशीलता आर्य समाज के स्तर पर सराहनीय है।

श्री अग्निवेश को आर्यसमाज से निकालने का परिणाम हमारे सामने है। शक्तिविभाजन, गुटवाजी और रचनात्मक

कार्यों के प्रति आर्यजनों की उदासीनता के रूप में। इसके साथ-साथ युवा संन्यासियों का वर्गसंघर्ष का रास्ता अपनाना भी आज की परिस्थिति के प्रति काफी हद तक उत्तरदायी है।

आर्यसमाज की आज की परिस्थिति को देखते हुए यह कहना गलत न होगा कि समय रहते सभा प्रधान जी श्री अग्निवेश को आर्यसमाज से निकालने विषयक भूल का सुधार करें। दूसरी ओर दोनों युवा सन्यासी वर्ग संघर्ष के रास्ते से हट कर आर्यसमाज के अस्तित्व पर आयी चुनौती का सामना करने के लिए सहयोगशील प्रयत्न आरम्भ कर दें। इन के साथ-साथ पं० भारतेन्द्रनाथ तथा अन्य वे आर्यविद्वान, नेता जो समस्या के प्रति भी जागरूक हैं दोनों पक्षों को एक-दूसरे के निकट लाने, आपसी मतभेद दूर करने के लिए जो वहुत कुछ कर सकते हैं उन्हें प्रयत्न करना चाहिए।

लेकिन ध्यान रहे आरम्भ सभाप्रधान जी की ओर से ही होना आवश्यक है श्री अग्निवेश को पुनः आर्यसमाज में लेने से।

अन्त में समय रहते श्री रामगोपाल शालवाले जी ने यदि इस संदर्भ में कोई आवश्यक प्रयत्न नहीं किया तो याद रखना! इतिहास आपको कभी माफ नहीं करेगा। अस्तु।

—सोहन पाल सिंह आर्य
फुगाना (मु० नगरप्र० उ०)

राही तनिक निराश न होना

क्यूं समझा हूं निपट अकेला,
वस है यही परीक्षा वेला,
दिल में अरमानों का रेला,
निश्चय मूलशंकर आएगा,
गुरुवर तनिक उदास न होना,
राही .. ..

राह तेरी सीधी सच्ची है,
चाह तेरी प्यारी, अच्छी है,
किन्तु साधना कुछ कच्ची है,
तप कर कुन्दन बन जाएगा,
तप ले तनिक हताश न होना,
राही ....

दयानन्द का तू अनुगामी,
लेखराम श्रद्धा का हामी,
जो पतवार हाथ में थामी,
खेता चल साहिल आएगा निश्चय,
हत् विश्वास न होना,
राही .....

वेद वेदना से लख व्याकुल
आयेगा भामा हो विह्वल
पायेगा शक्ति का सम्वल
बाधाओं से घबरा कर,
हत् साहस, होश, हवास न होना।
राही .....

सोए आर्य अवश्य जगेंगे,
ऋषि के कार्य अवश्य लगेंगे,
बुरे भाव सब दूर भगेंगे,
चिंतित हतोत्साह, हत् शौर्य,
हत् प्रकाश न होना।
राही ....

आर्यसमाजें अब जागेंगी,
सब रगड़े, झगड़े त्यागेंगी,
फूट, वैर से हट भागेंगी,
'पाचाल' मंजिल आएगी,
कायरता का ग्रास न होना
राही.....

—रामपाल सिंह 'पाचाल'

विश्व पुस्तक मेले में : वेद की धूम

मेले में गया। चारों ओर अंग्रेजी पुस्तकों की धूम थी। घूमता हुआ ऊपर हिन्दी मण्डप में भी गया। वहां एक स्थान पर बड़ी भीड़ थी। पास जाने पर पता लगा की जन-समूह वेद के दर्शनों के लिए उमड़ रहा था।

दयानन्द संस्थान का नाम देखा, साहित्य देखा तो मन प्रसन्नता से भर गया। सचमुच संस्थान का यह कार्य इतिहास में अमर रहेगा।

बहुत दिनों से सुनते थे—

वेदों का डंका आलम में,
बजवा दिया ऋषि दयानन्द ने।

ऋषि दयानन्द ने वेदों का उद्धार किया। मार्गदर्शन दिया, पर १०० वर्ष बाद दयानन्द के सच्चे उत्तराधिकारी के रूप में प्रगट हुआ दयानन्द संस्थान। जिसकी कृपा से आज देश के हर शिक्षित की ज़बान पर वेदों का नाम है।

जहाँ भी हिन्दी का पाठक है वहां **चारों वेदों का हिन्दी भाष्य** शब्द गूंज रहा है।

पूछने पर पता लगा कि हजारों व्यक्तियों ने सत्यार्थ-प्रकाश लिया। वेद भाष्य के लिए तो जनता में सदा उत्साह रहता ही है। किन्तु प्रथम बार एक अंतर्राष्ट्रीय मेले में—दयानन्द संस्थान ने आर्यसमाज का नाद गुंजा कर जो सेवा की है उसके लिए प्रत्येक आर्यसमाज का सदस्य दयानन्द संस्थान का कृतज्ञ रहेगा।

मेले में सबसे अधिक यदि किसी एक पुस्तक की—इतने विशाल ग्रन्थ की मांग रही तो वह वेद था। १०१) में इतनी बड़ी-बड़ी दो जिल्दें—लोग आश्चर्य में थे, कि कैसे मिल रहा है इतना सस्ता।

मेरा मन प्रसन्न हो गया, हृदय गद्गद् हो गया और लगा कि दयानन्द के भक्त अभी हैं जो प्रचार में लगे हैं—सच्चे दिल से मैं उन बच्चियों को आशीर्वाद दे रहा हूं जिनको पुस्तक मेले में कठिन श्रम कर वेद का प्रचार करते देखा।

—डा० उदयनारायण मिश्र
झांसी

---

२५०) रुपए लागत का

चारों वेदों का हिन्दी भाष्य

दो जिल्दों में केवल १०१) रुपए में

जागते रहो

एक मूषक ने जगाया उग्र ऊहा पोह,
जन्म के संग क्रांति लाया सत्य का विद्रोह ।

एक सौ चालीस वर्ष पूर्व शिवरात्रि पर घटित चूहे की घटना इतनी प्रसिद्ध है कि उसे दोहराने की आवश्यकता नहीं। वस्तुत: उस शिवरात्रि का मूषक वह केन्द्र बिन्दु बना जहां से समस्त दिशाओं ने एक तीव्रतर सुधारात्मक मोड़ लिया। कारण कि मूलशंकर का उस रात्रि का जागरण एक अनोखा जागरण था जिसके सम्बन्ध में कविवर सौमित्र ने ठीक ही कहा था—

"तुम जगे ऐसे कि फिर सोये नहीं पल भर,
प्रात: लाया रात भर का जागरण ऋषिवर।"

महर्षि केवल शिवरात्रि की उस रात्रि को जगा हो ऐसी बात नहीं, सत्य तो यह है कि उसके बाद वह सो ही नहीं पाये, जैसे —

"इक तकमीले ख्वाब की खातिर उम्र भर जागता रहा कोई।"

ऋषि स्वयं ही नहीं जगे संसार को भी जगा गये।

शिवरात्रि की यह घटना ही आगे आने वाले महान् आन्दोलन का आधार बनी। बड़े कार्यों के सम्पादन के लिए बड़ी तैयारियों की आवश्यकता पड़ती है। महर्षि ने भी इस बड़े क्रान्तिकारी आन्दोलन के लिए भारी तैयारी की थी। अपनी आयु के १४ वर्ष से लेकर ५१ वर्ष तक वह इसी तैयारी में लगे रहे, तब जाकर कहीं इस आन्दोलन की नींव रखी जो आज आर्यसमाज के नाम से सुविख्यात है। पं० गंगा प्रसाद उपाध्याय ने ठीक ही लिखा है कि शिवरात्रि की 'इस छोटी सी बात पर सुधार का जो एक विशाल भवन खड़ा किया गया, उसी का नाम आर्यसमाज है।"

(भारतीय पतन और उत्थान की कहानी, पृष्ठ ६१)

महर्षि द्वारा प्रवर्तित इस आन्दोलन का इतिहास सामाजिक, सांस्कृतिक, बौद्धिक तथा राजनीतिक क्रान्ति के अभियान का समुज्ज्वल इतिहास है। किन्तु दुर्भाग्य! जिस समाज को राष्ट्र का पुरोहित बनकर जगना और जगाना था, वह स्वयं ही आलस्य, प्रमाद एवं अकर्मण्यता की गहरी निद्रा में सो गया और सर्वत्र एक मुर्दनी सी छा गई। यह सब देख कविवर लाखनसिंह भदौरिया 'सौमित्र' की लेखनी तड़प उठती है कि—

"इस सवाल ने फिर सिर उठाया है,
समाज शमशान है कि बगीचा है।
जिसके सपनों में आप खोये थे, जिसे आपने लहू से सींचा है ।।
कैसा पहरा है चौकीदारों का, बाग बरबाद किए जा रहे हैं लोग ।
समय दे रहा है चुनौतियों पे चुनौतियां,
देखता हूं पिये जा रहे हैं लोग ।।" (ज्योति के फूल, पृष्ठ ५)

आज सर्वत्र यही चर्चा है—

'बाग की रंगीनियों को क्या हुआ, बागबानों से यह पूछा चाहिए।'

किन्तु हमारी यह स्थिति है कि—

"दामन जला कर हमने घर भी जला दिया,
दुनिया को पता तो चला कि रोशनी हुई।" पर क्या ?
"इसी लिए तकदीर ने चुनवाये थे तिनके,
बन जाये नशेमन तो कोई आग लगा दे।"

आर्यो ! ऋषि की भावनाएं आज तुम्हें कोस-कोस कर कह रही हैं—

"उजाड़े हैं गुलिस्तां तुम ने जिन हाथों से दीवानो।
अगर तुम चाहते तो इन से वीराने संवर जाते ।।"

दोषी कौन ?

आखिर इस सबके लिए दोषी कौन है ? सामान्यत: इसके लिए आज सर्वत्र नेतृत्व की आलोचना की जा रही है। हम नेतृत्व को निर्दोष नहीं ठहराते किन्तु हम स्वयं को भी कम दोषी नहीं पाते। हमारी यह प्रवृत्ति सी बन गई है कि हम प्रत्येक बात के लिए नेतृत्व को दोषी ठहरा कर अथवा भरपेट कोस कर अपने कर्त्तव्य की इतिश्री समझ बैठते हैं। हम उस युग को क्यों भूल जाते हैं जब महर्षि के देहावसान के पश्चात् अभी सही नेतृत्व उभर भी न पाया था कि सर्वसाधारण में यह जोश था, वह कर्त्तव्य निष्ठा थी, वह उत्साह था कि देखते ही बनता था। तब आर्यसमाज का प्रत्येक सदस्य एक उपदेशक था, एक जिम्मेदार नेता था, एक आदर्श सेवक था और था एक सच्चा प्रहरी। तब दूसरे के मुख ताकने की प्रवृत्ति नहीं थी। एक अपूर्व उत्साह था प्रत्येक में। क्या वह युग पुन: उपस्थित नहीं किया जा सकता ? अनुयायी नेतृत्व को बल प्रदान करते हैं और नेतृत्व अनुयायिओं को दिशा निर्देश। दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। सफल नेतृत्व संगठन को चमका देता है जबकि कमजोर आन्तरिक कलह का कारण बनता है। वैसे ही जागरूक अनुयायी नेतृत्व को सदा सचेत रखते हैं जबकि निष्क्रय अनुयायी नेतृत्व को प्रमादी बनाने में हेतु बनते हैं। हमें यह नहीं भूल

जाना चाहिए कि नेता भी आखिर हम में से ही तो बनते हैं, वे कहीं बाहर से नहीं आते। "Membership is the staff out of which the leader-ship is drawn."

अत: नेतृत्व की आलोचना व्यर्थ है। स्वयं जमना होगा, उठना होगा और निर्माण करना होगा नये समाज का। उठो शिवरात्रि जगाने आई है।

"नशेमन पर नशेमन इस तरह तामीर करता जा,
कि बिजली गिरते-गिरते आप ही बेजार हो जाये।

और इस के लिए नेतृत्व का मुँह ताकने से काम नहीं चलेगा।

"बस मीरे कारवां पर न छोड़ो कारवां अपना,
तुम खुद भी ले के इल्मे जवां जागते रहो।"

यही आज की शिवरात्री का संदेश है और शिवरात्रि यही कहने आयी है।

आज की शिव-रात फिर संदेश लायी है,
और ऐसी रात को शत-शत बधाई है।
हर मनुज बोले, यही वर मांगता हूं मैं,
आ गई शिव-रात तो लो जागता हूं मैं।
शक्ति दो प्रभुवर, कलुष सब त्यागता हूं मैं,
हर शिवालय से कहे तम, भागता हूं मैं।

कामना जागे, किसी में तो यही जागे,
मांगना चाहे मनुज तो बस यही मांगे।

कोख दो तो मूलशंकर मातु जैसी दो,
जन्म दो तो पुण्य भू गुजरात जैसी दो।
प्रात: दो, ऋषि-वोध के उस प्रात: जैसी दो,
रात दो तो फिर उसी शिव-रात जैसी दो।

● ★ ●

(ज्योति के फूल पृष्ठ ११)

सार्वदेशिक सभा के प्रधान महोदय

सभा को अपनी सम्पत्ति न समझें !

अब इस वात के लिए प्रमाण देने की आवश्यकता नहीं रही कि सार्वदेशिक सभा के वर्तमान अधिकारी सभा को अपनी व्यक्तिगत सम्पत्ति समझ रहे हैं।

उन की अवैधानिक कार्यवाहियों और प्रतिनिधि स्वीकार करने के पक्षपातपूर्ण रवैये के कारण अंतरंग सभा के १० सदस्यों ने विधान सं० ३२ख के अंतर्गत एक पत्र लिखकर उनसे प्रार्थना की थी कि सभा की अंतरंग सभा की बैठक बुलाई जाए। इस नियम के अनुसार सदस्यों के आवेदन करने पर अंतरंग सभा की बैठक बुलानी अनिवार्य है।

सभा प्रधान जी को भेजे गए पत्र की पूर्ण प्रतिलिपि यह है :

श्रीयुत माननीय रामगोपाल शालवाले,
प्रधान सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा
महर्षि दयानन्द भवन, रामलीला मैदान,
नई दिल्ली-२

सादर नमस्ते।

विषय—**प्रान्तीय सभाओं से आए हुए प्रतिनिधि फार्मों को स्वीकार करने सम्बन्धी**

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा की नियमावली के नियम ३२(ख) के आधार पर हमारी आपसे प्रार्थना है कि वर्तमान परिस्थितियों को देखते हुए लोगों का स्पष्ट मत है कि सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा से सम्बन्धित प्रान्तीय सभाओं से आए हुए प्रतिनिधि फार्मों को सिर्फ अंतरंग सभा में बुलाकर स्वीकार किये जाये। अन्तरंग सभा के अलावा अन्य किसी को बैठक में न बुलायें।

कृपया इस सम्बन्ध में शीघ्र सभा की अन्तरंग सभा की मीटिंग बुलाकर उसमें फार्म स्वीकार करने की कृपा करें।

हम हैं सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा की कारोवारी (अन्तरंग सभा) के सदस्यगण :—

१. रामानन्द शास्त्री
२. रविदत्त वैद्य
३. मिहिरचन्द धीमान
४. भगवानदेव शर्मा

५- के० सीताया गुप्त　　६. विशम्भर प्रसाद शर्मा
७. छगन लाल विजयवर्गीय　　८. आनन्दप्रिय
९. भगवती प्रसाद गुप्त　　१०. गौरी शंकर कौशल

सभा नियम ३२(ख) : अन्तरंग सभा के अधिवेशन साधारणतया ३ मास में एक वार हुआ करेंगे। आवश्यकता होने पर प्रधान की आज्ञा से अधिक वार भी हो सकेंगे। परन्तु अन्तरंग सभा के ७ सभासद् किसी विषय पर लिखित निवेदन पत्र भेजें तो १ मास के भीतर अन्तरंग सभा का अधिवेशन बुलाना अनिवार्य होगा।

किन्तु सार्वदेशिक सभा के १० माननीय सदस्यों की प्रार्थना पर अन्तरंग सभा की बैठक न बुलाकर जो पत्र सभा के मन्त्री श्री सच्चिदानन्द जी शास्त्री ने सभी को भेजा है वह यह है—

सभा द्वारा भेजा गया पत्र

दि० २० फरवरी १९७८

श्री मन्महोदय,

नमस्ते !

आपके हस्ताक्षर से एक पत्र दिनांक ३०-१-७८ को श्री सभा प्रधान जी के नाम सभा की नियमावली सं० ३२ ख के अनुसार सभा बुलाने का प्राप्त हुआ है। इस में यह विषय लिखा गया है कि अंतरंग सभा प्रान्तीय सभाओं से आये हुए प्रतिनिधि फार्मों को स्वीकृत करे।

जंहाँ तक प्रान्तीय सभाओं से आये प्रतिनिधियों के फार्म स्वीकार करने का का प्रश्न है, उसके सम्बन्ध में ज्ञात हो कि सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा की अंतरंग २७ मार्च १९७७ को हुई थी। उस अंतरंग सभा ने पूर्व परम्परा के अनुसार विषय संख्या १९ के अंतर्गत अंतरंग सभा ने प्रतिनिधि फार्मों को स्वीकार करने का अधिकार सार्व० आ० प्र० सभा के माननीय प्रधान जी को सर्वसम्मत (निर्विरोध) दिया है।

इस अन्तरंग सभा की कार्यवाही की संपुष्टि १०-७-७७ की अंतरंग में हो चुकी है और पुनः १६-१०-७७ की अंतरग सभा में वार्षिक अधिवेशन की तिथियाँ भी निश्चित की गईं। इन अन्तरंगों में उक्त आवेदन पत्र **देने वाले सदस्यों में से अनेक सदस्य भी उपस्थित थे। परन्तु किसी ने भी किसी समय,** किसी प्रकार का विरोध सभा प्रधान को प्रान्तीय सभाओं से आर्य-प्रतिनिधियों के फार्म स्वीकार करने के दिए गए विषय में नहीं किया। बल्कि सर्वथा स्वीकार किया है और उस समय यह प्रश्न नहीं उठाया कि अंतरंग सभा स्वयं प्रतिनिधियों का फार्म स्वीकार करे।

मालूम हो कि श्री प्रधान को इस प्रकार का अधिकार सार्वदेशिक सभा द्वारा सदा ही दिया जाता रहा है, यह कोई नयी बात नहीं है।

इस सभी परिस्थिति को प्रस्तुत करते हुए निवेदन है कि वस्तु स्थिति समझ कर यह लिखें कि सभा को बुलाये जाने के पत्र पर आपने जो हस्ताक्षर किया है वह आपका ही है और आपने सारी परिस्थितियों और परिणामों को ध्यान में रख कर हस्ताक्षर किया है। शीघ्रातिशीघ्र आपका स्पष्टीकरण आना आवश्यक है।

आपको यह भी ज्ञात हो कि पूर्व दिए गए अधिकार के अनुसार सभा प्रधान जी ने प्रतिनिधियों के फार्म स्वीकार करने का कार्य बहुत कुछ पूरा कर दिया है और अंतरंग के निश्चयानुसार सभा का वार्षिक अधिवेशन बुलाने की तैयारियाँ पूरी की जा रही हैं और समय पर इसकी तिथियां घोषित कर दी जावेंगी।

ऐसी परिस्थिति में क्या आप अब भी उक्त पत्र के अनुसार अंतरंग बुलाने की आवश्यकता समझते हैं?

क्या आप समझते हैं कि अंतरंग सभा पूर्व दिये गये अधिकार इस अवस्था में वापस ले लेगी जबकि अधिकार का प्रयोग लगभग कार्य की पूर्णता पर पहुंच रहा है? क्या अंतरंग सभा का ऐसा करना उचित और नियमित होगा? क्या यह एक प्रकार का अविश्वास नहीं है? जबकि सभा की नियमावली में प्रधान के प्रति इस प्रकार की कार्यवाही का कोई विधान नहीं है और न उसकी अब तक की परम्परा ही रही है।

पत्रोत्तर अति शीघ्र भेजने की कृपा करें।

भवदीय :

(सच्चिदानन्द शास्त्री)

मन्त्री

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, नई दिल्ली

क्या इस पत्र के बाद भी जनता को किसी और प्रमाण की आवश्यकता है? क्या विधान, नियम और सारी परम्पराओं तो ताक पर रख कर मनमानी करना आर्यसमाज के भाग्य से खिलवाड़ नहीं है?

यह निर्णय करने का समय आ गा है कि जनता डिक्टेटरशिप कब तक सहेगी? और कब तक हम १-२ व्यक्तियों द्वारा आर्यसमाज को बर्बाद होते देखते रहेंगे?

हम नम्रता पूर्वक यह चेतावनी देना अपना कर्तव्य समझते हैं कि यदि इस क्रिया की कोई प्रतिक्रिया हुई तो उसका दायित्व केवल माननीय सभा प्रधान श्री ला० रामगोपाल जी शालवाले पर ही होगा। —**भारतेन्द्र नाथ**

राजस्थान के आर्य बन्धुओं की ओर से

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा में हो रही धांधली से सावधान !

आदरणीय आर्य वन्धुओ,

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा का निर्माण आर्यसमाज की संपूर्ण प्रान्तीय एवं देशीय सभाओं, आर्यसमाज से सम्वन्धित अन्य संस्थाओं पर नियंत्रण एवं आर्य समाज को वेद, महर्षि दयानन्द तथा आर्यसमाज के सिद्धान्तों के अनुरूप चलाए रखने के लिए हुआ था। प्रारम्भ में जव सार्वदेशिक सभा के अधिकारी वेद के विद्वान, आर्यसमाज तथा दयानन्द के अनन्य भक्त होते थे तव सार्वदेशिक सभा निरन्तर अपने लक्ष्य एवं कार्यक्रम के अनुरूप कार्य करती रहती थी। परन्तु जव से सभा में सर्वथा वेद ज्ञान से शून्य, अयोग्य , वर्तमान गन्दी राजनिति के राजनैतिक नेता, आर्थिक अपवित्रता से ग्रसित व्यापारी, असत्य को सत्य और सत्य को असत्य करने वाले वकील, ठेकेदार, जमीदार एवं पूंजीपति आदि अपनी तिकड़मों के द्वारा पदाधिकारी बनने लगे तव से वरावर हर समय कोई न कोई गड़वड़ी सभा में होती ही रहती है। जव बाड़ ही खेत को खाने लगे तो निगरानी करने वाले का क्या दोष ? जव सव आर्य समाजों की शिरोमणि सभा ही अपने कर्तव्य से च्युत होकर नित नई-२ अनुचित कार्यवाहियां करने लगे तो फिर सभा के पदधिकारियों के विरुद्ध कोई आन्दोलनात्मक कदम उठाने के अतिरिक्त कौन-सा मार्ग हमारे पास शेष रह जाता है ?

हम निम्न हस्ताक्षरकर्ता आप सव आर्य विद्वानों, संन्यासियों वानप्रस्थियों, आर्य समाज के पदधिकारियों तथा कार्यकर्ताओं के समक्ष सभा के पदधिकारियों के पिछले और वर्तमान अनुत्तरदायी कार्यवाहियों तथा जानवूझकर की गई गलतियों के निम्न कुछ नमूने प्रस्तुत कर रहे हैं। आशा है आप इन पर गंभीरता से विचार कर अपने विचारों से हमें अवगत करने का कष्ट करेंगे कि कौनसा ऐसा आन्दोलन, मार्ग या साधन खोजा जावे कि जिससे सदा-सदा के लिए आर्यसमाज की शिरोमणि सावदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा शुद्ध होकर संपूर्ण आर्य समाजों को शुद्ध कर महर्षि दयानन्द के स्वप्नानुसार आर्यसमाजों का पुनिनर्माण कर सकें। हम सभा के पदधिकारियों के विरुद्ध कोई कठोर आन्दोलन उठायें उससे पूवं आपसे प्रार्थना है कि आपकी दृष्टि में कोई और मार्ग हो तो अवश्य लिखने का कष्ट करें

१—कुछ वर्ष हुए सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के मुख पत्र 'सार्वदेशिक साप्ताहिक' में पं० दीनबन्धु शास्त्री कलकत्ता वालों के महर्षि दयानन्द की अज्ञात जीवनी के सम्बन्ध में धारावाही लेख प्रकाशित हुए थे। तत्पश्चात् वह अज्ञात जीवनी को पुस्तक के रूप में भी सभा के सामने प्रकाशित हुई थी। अजमेर के डा० भवानी लाल जी भारतीय सभा को लिखो-२ परेशान हो गये कि मेरा अज्ञात जीवनी को प्रामाणिक मनाने वालों के साथ शास्त्रार्थ करवा दीजिए। परन्तु कोई सुनवाई नहीं हुई। यह सत्य है कि अज्ञात जीवनी वस्तुतः गप्पों का पिटारा है। जिसकी अधिकांश बातें असत्य एव मनगढ़न्त हैं। फिर भी दोनों पक्षों को बैठा कर कोई निर्णय तो करना ही था। परन्तु सभा ने इस सम्बन्ध में कुछ नहीं कर, चुप्पी साधकर, उल्टे जीवन चरित्र को विकृत करने वालों को ही प्रोत्साहन दिया।

२—साप्ताहिक सत्संग दैनिक एवं विशेष यज्ञों में एक रूपता लाने के लिए सभा ने कोई ठोस कार्य नहीं किया जो भी धर्माधिकारी बना अपनी मोनो - पोली चलाकर सर्वमान्य निर्णयों को अपनी विद्वत्ता प्रदर्शित करने के लिए पलटता रहा। यद्यपि सभा के धर्मार्य सभा के कुछ विद्वानों ने इस सम्बन्ध में प्रयत्न कर यज्ञ- पद्धति एवं साप्ताहिक सत्संग से सम्बन्धित एक प्रमाणिक एवं सर्वमान्य पुस्तक भी प्रकाशित की। परन्तु अब एक दूसरे के विपरीत दो-दो पद्धतियों की पुस्तक सार्वदेशिक सभा से प्रकाशित हो रही हैं।

३—डा० विमला का शोध ग्रन्थ—'सायण तथा दयानन्द के वेद भाष्यों का तुलनात्मक अध्ययन' को प्रकाशित कर दयानन्द एवं उनके वेद भाष्य के साथ जो विश्वासघात किया वह किसी से छिपा नहीं है। इस सम्बन्ध में सारे भारत के आर्य विद्वानों का सार्वदेशिक सभा के प्रधान ने जो अनादर किया है वह किसी से भी छिपी हुई बात नहीं है।

४—'आर्यसमाज साहित्य सर्वस्व' नामक एक ग्रन्थ सार्वदेशिक सभा के नाम से प्रकाशित हुआ, जिसमें पौराणिकों द्वारा प्रकाशित 'दयानन्द तिमिर भास्कर' आदि जैसे उलूल-जुलूल ग्रन्थ भी आर्यसमाज के प्रामाणिक साहित्य की कोटि में रखे गये।

५—सृष्टि संवत् के सम्बन्ध में चल रहे विवाद में भी सार्वदेशिक के पदाधिकारी अपनी मोनोपोली चलाते रहे और चला रहे हैं। सार्वदेशिक साप्ताहिक में आचार्य वैद्यनाथ शास्त्री के बड़े व लम्बे-लम्बे लेख आधुनिक सूर्य सिद्धान्त को प्रामाणिक ग्रन्थ मानने तथा १ अरब ९७ करोड़ वाला सृष्टि संवत् ही ठीक है के प्रकाशित हुए। जिसमें ब्र० वेदव्रत मीमांसक के अन्यत्र प्रकाशित लेखों की अनर्थक आलोचना की गई। परन्तु जब ब्रह्मचारी जी ने उसके उत्तर में अपने लेख सार्वदेशिक साप्ताहिक में प्रकाशनार्थ दिये तो उन्हें रद्दी की टोकरी में डाल दिया गया। यह पक्षपात पूर्ण

रवैंया उक्त ब्रह्मचारी जी के साथ ही हो ऐसी बात नहीं, बड़े-बड़े विद्वानों के साथ भी हुआ और होता रहता है। ऐसे विद्वान सार्वदेशिक सभा की ओर से निराश बैठे हैं अनेक मरते मर गये परन्तु सार्वदेशिक के इन स्वयंभू नेताओं का शताब्दी समारोह दिल्ली में प्रदर्शनात्मक सम्मान प्राप्त नहीं किया। सृष्टि संवत् कौनसा सही है और कौनसा गलत है, इसका निर्णय तो विद्वान् ही कर सकते हैं। फिर भी इतना तो कहा जा सकता है कि ऋषि के ग्रन्थों में जो संवत् वर्णित हो वही सत्य माना जाना चाहिये। इस प्रश्न को सभा के अधिकारियों या पक्षधारी विद्वानों को अपनी प्रतिष्ठा का प्रश्न नहीं बनाना चाहिये।

६—डा० भवानीलाल जी भारतीय से महर्षि दयानन्द की जीवनी लिखवाली तथा अपने अनुरूप उसे संशोधित भी करवाली, फिर भी प्रकाशित नहीं की जबकि दूसरी ओर आर्य सिद्धान्तों से विपरीत उक्त ग्रन्थ प्रकाशित कर भारी धन का अपव्यय किया गया।

७—आर्य प्रतिनिधि सभा, पंजाब का दूसरे गुट के नेताओं को काटने के लिये विभाजन किया गया और १७-१८ वर्षों के बाद विवाद में से निकली हुई सभा को पुनः विवाद में डाल दिया गया। स्वामी श्रद्धानन्द की बलिदान अर्ध शताब्दी समारोह का एक ओर आयोजन का ढोंग, और दूसरी ओर उसी श्रद्धानन्द के स्मारक गुरुकुल काँगड़ी के विनाश का दोनों पक्षों द्वारा हो रहे ताण्डव नृत्य को देखकर ऐसा कौन सा आर्य नहीं होगा जिसका हृदय रो न उठेगा। यह निर्विवाद सत्य है कि गुरुकुल कांगड़ी का विवाद भी आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के विवाद का ही एक प्रमुख अंग है। क्या इससे हमारी शिरोमणि सभा के नेताओं की घिनौनी आर्य नेतागिरी का पर्दाफाश नहीं होता है ?

८—सार्वदेशिक सभा के पदाधिकारियों की उपस्थित एवं समर्थन पर आर्य प्रतिनिधि सभा, पंजाब के अधिवेशन [जो सम्भवतः सितम्बर १९७५ में हुआ था उस समय स्वा० इन्द्रवेश मीसा में बन्दी थे और अग्निवेश के पीछे पुलिस लगी हुई थी।] में सर्वप्रथम आर्यसमाज की ओर से आपात्काल एवं २० सूत्रीय कार्यक्रम का समर्थन किया गया था। उसके बाद तो आपात्काल में किस प्रकार सभा पदाधिकारियों ने संजय गाँधी की चमचागिरी की। उस पर विचार किस आर्य के हृदय में प्रबल विरोध (विद्रोह) की आग नहीं सुलगेगी ?

९—सभा की ओर से किसी पत्र का उत्तर न देना और अच्छे-अच्छे लेख कविताओं को सार्वदेशिक पत्र में प्रकाशित न करना तो आम बात है परन्तु सार्वदेशिक सभा के प्रधान श्री रामगोपाल जी शालवाले वानप्रस्थ के वही पुराने तोतारटन्त लम्बे-लम्बे भाषण फोटो सहित छापकर श्रम, समय और कागज का अपव्यय करना क्या तानाशाही हरकत नहीं है ?

१०—अभी हाल ही में 'दयानन्द दिव्य-दर्शन' (महर्षि दयानन्द की चित्रमयी जीवनी) ग्रन्थ प्रकाशित हुआ। जिसका विमोचन भारत सरकार के गृहमंत्री चौ० चरणसिंह जी ने किया है। उसको देखकर हमें काफी दु:ख ही नहीं हुआ वल्कि आर्यसमाज की वर्तमान स्थिति पर रोना भी आया। महान् दु:ख है कि अपने को दयानन्द का कट्टर भक्त मानने वाले लोगों ने ही दयानन्द के चित्रमय जीवन चरित्र को विकृत किया है। हाय ! हमारे पतन की चरम सीमा देखिये कि दयानन्द जैसे महापुरुष के चित्र उनके अपने अनुयायी ही ठीक प्रकार चित्रित नहीं कर सके। लाला रामगोपाल शालवाले, वानप्रस्थ के प्रधानत्व में सभा द्वारा प्रकाशित 'दयानन्द दिव्य-दर्शन' को देखने के वाद हमारे साथियों के मन में इतना रोष उत्पन्न हुआ कि यह आंदोलनात्मक विज्ञप्ति निकालने पर विवश होना पड़ रहा है।

सवसे वड़ा दु:ख तो यह है कि सभा के अन्य अधिकारी इन गड़वड़ियों के वाद भी चुप हैं। पिछले दिनों डा० विमला के शोध ग्रन्थ पर भी पहली आपत्ति किसी सभा अधिकारी ने नहीं उठायी थी। वल्कि अन्य लोगों ने उठाई थी। क्या सभा के अधिकारियों तथा आर्यसमाजियों का खून जम गया है ? क्या हम यह मान लें कि सभा में कोई महर्षि दयानन्द का दीवाना नहीं रहा ? क्या सभा के सभी साधारण सभासद अंतरंग सदस्य तथा पदाधिकारी चुप रहकर महर्षि दयानन्द के निम्न कथनानुसार पाप नहीं कर रहे हैं ? सत्यार्थ-प्रकाश के 'षष्ठम् समुल्लास' तथा संस्कार विधि के गृहाश्रम संस्कार के अथ सभा स्वरूप लक्ष्णम् में दयानन्द कहते हैं : "जिस सभा में वैठे हुए सभासदों के सामने अधर्म से धर्म और झूठ से सत्य का हनन होता है, उस सभा में सव सभासद मरे ही हैं।"

"मनुष्य को योग्य है कि सभा में प्रवेश न करे, यदि करे तो सत्य ही वोले, यदि सभा में वैठा हुआ असत्य वात को सुन के मौन रहे अथवा सत्य के विरुद्ध वोले वह मनुष्य अति पापी है।

सार्वदेशिक सभा के प्रधान जी वर्तमान घटिया किस्म एवं निम्न स्तर की प्राचीन भारतीय इतिहास की पुस्तकों की आलोचना कर भले ही अपनी गलतियों को छिपाकर अपनी नेतागिरी प्रदर्शित कर लें। परन्तु क्या प्रधान जी ने सार्वदेशिक सभा में प्राचीन भारत के सत्य इतिहास निर्माणार्थ कोई शोध कार्य प्रारम्भ करवाया है ? अगर नहीं तो .....

क्या आपात्काल में सभा के अधिकारियों ने श्रद्धानन्द वलिदान अर्धशताब्दी समारोह में श्रद्धानन्द के जीवन और कार्यों का सही-सही मूल्यांकन और विवेचन किया था ? क्या आपात्काल में इन नेताओं ने आर्यसमाज को कायरता की भट्टी में नहीं झोंका था ? अगर हाँ तो.....

क्या डा० विमला का शोध ग्रन्थ आदि सार्वदेशिक सभा के द्वारा प्रकाशित करने योग्य था ? क्या दयानन्द दिव्य दर्शन में दयानन्द के चित्र दयानन्द के चित्रमय जीवन को सही-सही प्रस्तुत करते हैं ? या कार्टून बनाते हैं ? अगर हां तो·····

फिर हम निम्न हस्ताक्षरकर्ता सभा प्रधान के समक्ष निम्न मांगें रखते हैं :—

१·—या तो उक्त संपूर्ण गड़बड़ियों और विशेषकर, उक्त दोनों ग्रन्थ तथा दयानन्द दिव्य दर्शन के प्रकाशन में हुई हानि के लिये सार्वजनिक रूप से क्षमा याचना की जावे और इसकी विक्री तत्काल वन्द की जाकर इसे निरस्त घोषित किया जावे ।

२—या स्वयं अपने साथियों सहित सभा के सभी पद और सदस्यता तथा आर्य समाज की प्राथमिक सदस्यता से त्यागपत्र देकर किये गये पापों का घर बैठकर प्रायश्चित करें ।

३— अगर नही तो अब आपकी कार्यवाहियां सहन सीमा से बाहर हैं। हमारे सामने 'सार्वदेशिक सभा के पदाधिकारियो गद्दी छोड़ो' आन्दोलन को तीव्र गति से प्रारम्भ करने के अतिरिक्त कोई मार्ग शेष नही रह जाता है ।

हमें पता लगा है कि सभा के शीघ्र ही नये चुनाव होने जा रहे हैं। तो नये चुनकर आने वाले पदाधिकारियों, अन्तरंग सदस्यों तथा साधारण सभासदों से हमारी प्रार्थना है कि अगर उक्त गड़बड़ियां करने वाले दोषी सभा प्रधान एवं अन्य पदाधिकारी उक्त माँगों के असुसार आचरण नहीं करते हैं तो गड़वड़ियों की अपनी अन्तरंग सभा में जाँच करवाकर दोषी व्यक्तियों को आर्य समाज की प्राथमिक सदस्यता से निष्काषित करने का उद्योग करेंगे ।

यह विज्ञप्ति आर्य समाज के किसी विशेष दल के समर्थन पर या उससे प्रेरित होकर नहीं प्रकाशित की जा रही है बक्कि निष्पक्ष होकर सभा के सहयोग (जो थोड़ा भी दयानन्द को मानता है) से प्रकाशित की ई है ।

हम हैं आर्य समाज के सदस्य :—स्वामी परमानन्द सरस्वती, डा० दयाशंकर दिवाकर, रामकृष्ण आर्य, प्रधान आर्यसमाज नगर कोटा, चन्द्रकान्त आर्य, कमलनयन वरुण, रामप्रसाद वैदिक, मदनलाल आर्य, कृष्ण स्वरूप, पुरुषोत्तम आर्य, अर्जुनदेव, विजय सिंह, सुखवीर शर्मा, राधेश्याम, अयोध्या देवी, शान्ति देवी, आदि सब नरग आर्य समाज केथूनीपोल कोटा, । विश्वम्भरनाथ, हरिप्रसाद, गणपतलाल, देवप्रसाद एवं ईश्वर सिंह—आर्यं समाज रावतभाटा (कोटा) । सियावरशरण एवं चन्द्र बिहारी आर्य, आर्य समाज बारॉ । चेतनप्रकाश आर्य, बीकानेर । विश्वम्भर नाथ, राजेन्द्रकुमार आर्य, आनन्द नरहरि सप्रे, लक्ष्मणदास गुलाटी, आर्य समाज कोटा जं० ।
दि० १७-२-७८

॥ ओ३म् ॥

दयानन्द संस्थान

[पंजीकृत—न्यास] द्वारा प्रकाशित

प्रमुख वैदिक साहित्य की सूचि

१. सम्पूर्ण वेद भाष्य : ४ जिल्दों में २८४)
२. सम्पूर्ण वेद भाष्य : ३ जिल्दों में २७१)
३. सम्पूर्ण वेद भाष्य : २ जिल्दों में २५०)
४. सम्पूर्ण वेद भाष्य आर्ट पेपर पर ६०४)
५. यजुर्वेद भाष्य महर्षि दयानन्द कृत सजिल्द मूल्य : ३०)
६. अथर्ववेद परिचय : पं० विश्वनाथ विद्यामार्तण्ड ५)
७. अथर्ववेदीय चिकित्सा शास्त्र : विद्यामार्तण्ड स्वामी ब्रह्ममुनि जी कपड़े की सुनहरी जिल्द (द्वितीय संस्करण) मूल्य १५)
८. वेदामृत। पृष्ठ ४०० से अधिक : सजिल्द मूल्य १०)
९. शतपथ ब्राह्मण (प्रथम काण्ड) : स्वामी समर्पणानन्द जी, मूल्य २५)
१०. सक्षिप्त महाभारत : स्व० पं० सन्तराम मूल्य १०)
११. सामवेद भाष्य सजिल्द मूल्य २५)
१२. वैदिक गीता भाष्य सजिल्द मूल्य १५) : सुनहरी जिल्द २०)
१३. वेदांजलि सजिल्द मूल्य १५)
१४. अपने प्रभु से : प्रार्थना सजिल्द मूल्य १०)
१५. श्री मद्दयानन्द प्रकाश : सजिल्द मूल्य ८) अजिल्द मूल्य ६)
१६. अथर्ववेदीय मन्त्र विद्या सजिल्द मूल्य ८)
१७. वेदों का यथार्थ स्वरूप सजिल्द मूल्य १०)
१८. उपनिषद् संग्रह : महात्मा नारायण स्वामी जी सजिल्द मूल्य १०)
१९. वैदिक सत्संग पद्धति (हिन्दी) नया संस्करण अजिल्द मूल्य ८० पैसे
२०. वैदिक अर्थनीति—श्रीपाद दामोदर सातवलेकर। मूल्य ४० पैसे
२१. वैदिक अर्थशास्त्र परिचय : पं० भारतेन्द्र नाथ मूल्य १)
२२. क्या वेद में मांस भक्षण का विधान है ?
लेखक – आचार्य शिवपूजन जी, कानपुर मूल्य १)
२३. वेद और बाईबिल—दीनानाथ सिद्धांतालंकार। मूल्य १)
२४. मोक्ष का वैदिक मार्ग—आचार्य वैद्यनाथ व योगीराज पथिक १)

२५. वैदिक सिद्धान्त—प० यश:पाल सिद्धांतालंकार मूल्य ३)
२६. गायत्री शतक—पं० शिवदयालु आर्य मूल्य २)
२७. ईश्वर-भक्ति—स्वामी सर्वदानन्द सरस्वती मूल्य १)५०
२८. माँ गायत्री : तृतीय संस्करण मूल्य १)५०
२९. धर्म का मार्ग—पं० सुरेशचन्द्र विद्यालंकार मूल्य १)
३०. अमृतपथ—पं० दीनानाथ सिद्धांतालंकार, सजिल्द मूल्य ५)
३१. नारायण अध्यात्म सुधा—श्री महात्मा नारायण स्वामी जी मूल्य १)
३२. शतक-त्रयी—पं० शिवदयालु जी आर्य मूल्य १)५०
३३. उपनिषद्-वचनामृत—पं० दीनानाथ सिद्धांतालंकार मूल्य १)
३४. ईशोपनिषद्—पं० हरिशरण सिद्धांतालंकार मूल्य १)
३५. उपनिषद् त्रयी पं० शिवदयालु आर्य मूल्य १)५०
३६. स्वर्ण पथ—स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती अजिल्द १)५०
३७. वैदिक धर्म ही क्यों ? महात्मा नारायण स्वामी मूल्य ५० पैसे
३८. महान् अनुपमेय—ऋषिराज स्वामी दयानन्द मूल्य १)५०
३९. धर्म का सार : ९ कथाएं मूल्य १)
४०. आर्याभिविनय (काव्यमय व्याख्या) मूल्य १)५०
४१. प्रभु के चरणों में—हरिशरण सिद्धांतालंकार मूल्य १)५०

अन्य उपयोगी साहित्य

४२. ऋषि दयानन्द ने कहा था मूल्य १)५०
४३. योगेश्वर श्री कृष्ण—स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती ६० पैसे
४४. १८५७ के भूले विसरे शहीद—बनारसी सिंह। मूल्य १)५०
४५. कल्याण का मार्ग - श्री जगन्नाथ पथिक मूल्य २५ पैसे
४६. यज्ञ प्रसाद महात्मा आनन्द स्वामी जी मूल्य ६० पैसे

विवाह पर बांटने के लिए

४७. वैदिक गृहस्थाश्रम—विद्यामार्तण्ड पं० विश्वनाथ जी मूल्य ८)
४८. धरती का स्वर्ग : गृहस्थाश्रम मूल्य २)
लेखक—पं० शिवकुमार शास्त्री महामहोपदेशक सजिल्द मूल्य ३)
४९. आदर्श परिवार - श्री युगल किशोर चतुर्वेदी मूल्य ६० पैसे

आर्यसमाज सम्बन्धी साहित्य

५०. स्वामी दयानन्द (जीवन चरित्र सजिल्द मूल्य ६) अजिल्द मू० २)
५१. ज्योति स्तम्भ ६)
५२. आर्य क्रांतिकारी—श्री बनारसी सिंह मूल्य ३)

५३. विश्व को आर्यसमाज का सन्देश – पं० भारतेन्द्र नाथ मूल्य ३० पैसे

महर्षि दयानन्द कृत ग्रन्थ

५४. सत्यार्थ प्रकाश : शताबदी संस्करण बिना जिल्द मूल्य ३)

५५. ,, ,, राज संस्करण सजिल्द मूल्य ६)

५६. ,, ,, उपहार संसकरण कपड़े की वढ़िया जिल्द ८)

५७. ,, ,, अनुपम शताब्दी संसकरण-१० X १५ इंच का का वड़ा साइज ५१)

५८. ,, ,, अनुपम शताब्दी संस्करण- १० X १५ इंच सुनहरी जिल्द, आर्ट पेपर पर १०१)

५९. संस्कार विधि : (वड़ा साइज) सजिल्द मूल्य ६)

६०. संस्कार विधि : (छोटा साइज) अजिल्द ४)

६१. व्यवहार भानु : स्वामी दयानन्द सरस्वती, मूल्य ४० पैसे

६२. स्वमन्तव्यामन्तव्यप्रकाश मूल्य २० पैसे

६३. मूर्तिपूजा की हानियां मूल्य २० पैसे

६४. आर्योद्देश्य रत्नमाला मूल्य २० पैसे

६४ ए उपदेश मञ्जरी—महर्षि के व्याख्यान मूल्य २)

अन्य साहित्य

६५. वोध रात्रि (महाकाव्य) मूल्य ६)

६६. गीत मंजरी (नया तीसरा संस्करण) मूल्य २)५०

६७. आर्यसमाज के आधार—स्वामी सत्यानन्द मूल्य १)४०

६८. प्रार्यना सुमन—पं० चन्द्रभानु सिद्धान्त भूषण मूल्य १)

६९ आदर्श सुधारक—स्वामी दयानन्द सरस्वती : श्री देवेन्द्र नाथ मुखोपाध्याय मूल्य ६० पैसे

७०. ब्रह्माकुमारी -मत समीक्षा । पं० दीनानाथ सिद्धान्तालकार मूल्य २५ पैसे

७१. सत्संग महिमा: स्वामी वेदानन्द तीर्थ मूल्य ४० पैसे

७२. वैदिक संध्या ३२ पृष्ट मूल्य २० पैसे

७३. श्रद्धांजलियाँ मूल्य १)४०

प्रचार पुस्तिकाएं (ट्रैक्ट)

७४. आर्यसमाज क्या मानता है ? श्री मदनमोहन विद्यासागर: मूल्य २० पैसे

७५. महर्षि दयानन्द की विशेषताएं : महात्मा नारायण स्वामी २० पैसे

७६. आर्यसमाज की विचारधारा : पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय २० पैसे

७७. आर्यसमाज की मान्यताएं : पं० रामचन्द्र देहलवी, मूल्य २० पसे

जन-ज्ञान (मासिक)

७८. विश्व को वेद का सन्देश: भारतेन्द्रनाथ मूल्य :२० पैसे
७९. आर्यसमाज के दस नियम: व्याख्या सहित मूल्य: २० पैसे
८०. निमन्त्रण आर्य समाज का: स्व० पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय मूल्य : २० पैसे
८१. आर्यसमाज के १०० वर्ष :पं० भारतेन्द्रनाथ मूल्य : २० पैसे
८२. सुख का मार्ग: पं० भारतेन्द्र नाथ मूल्य : २० पैसे
८३. आर्य कौन ? : पं हरिशरण सिद्धान्तालंकार, मूल्य : २० पैसे
८४. स्वास्थ्य का महान् शत्रु: अण्डा स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती मूल्य : २० पैसे
८५. साम्यवाद—समाजवाद क्यों नहीं ? महात्मा नारायण स्वामी मूल्य : २० पैसे
८६. वेद महिमा मूल्य : २० पैसे
८७. उपनयन का महत्व मूल्य : २० पैसे
८८. स्वामी दयानन्द सरस्वती : संक्षिप्त जीवनी मूल्य : २० पैसे

अंग्रेजी साहित्य

89. Light of Truth—By Swamy Dayanand Saraswati Rs. 20-00
90. " " (Abriged) Rs. 2-00
91. Life & Teachings of Swami Dayanand Saraswati by Chhaju Singh Rs. 25-00
92. An Introduction to the Commentary on the Vedas By Swami Dayanand Rs. 10-00
93. Teachings of Swami Dayanand Rs. 1-50
94. Ten Commandments Rs. 1-50
95. Message of the Arya Samaj to the Universe 50 P.
96. Vedic Prayer Rs. 4-00
97. Dayanand the Great 20 P.
98. An Introduction to the Arya Samaj 20 P.
99. Universal Patriotism Rs. 2-00
100. Vedic Life Rs. 4-00
101. Christianity and Vedas Rs. 2-00
102. What is Yoga ? 20 P.
103. Man and his Religion—Dr. Satya Prakash Rs. 1-50
104. A Short Life of Swami Dayanand Rs. 2-00
105. The Great Gayatri 25 P.
106. Vedic Fundamentals Rs. 4-00
107. Essence of Vedic Religion 20 P.
108. The fundamentals of the Arya Samaj 20 P.
109. Whose Wealth ? by Mahatma Anand Swamy 10/-
110. Dayanand's Outline of Vedic Philosophy Rs.15-00
111. Yoga of Patanjali Re. 1-00
112. Ramayana—by Shri H. N. Kapoor Rs. 5-00
113. Agnihotra—by Dr. Satya Prakash Rs. 10-00
114. Krishnayan—by Shri H. N. Kapoor Re. 1-00
115. Nectareal Songs of the Vedas— by Dr. (Swami) Satya Prakash Saraswati Rs. 6-00

ईसाईयत सम्बन्धी साहित्य

११६. पोप की सेना का भारत पर हमला — २० : पैसे
११७. वाइविल को चुनौती — २० : पैसे
११८. वाइविल कसौटी पर — २५ : पैसे

विविध साहित्य

१२१. वेद-ज्योति — सजिल्द: मूल्य ६)। अजिल्द ४)
१२२. वाल-सत्यार्थप्रकाश : स्वामी जगदीश्वरानन्द — मूल्य :२)५०
१२३. भाई परमानन्द : जीवन चरित्र— वनारसी सिंह मूल्य : २)
१२४ वन्दना के स्वर : क्षेमचन्द्र सुमन — सजिल्द मूल्य : १५)
१२५ वाल्मीकि रामायण : (संक्षिप्त) श्री प्रेमचन्द्र शास्त्री मूल्य ३)
१२६. दयानन्द चित्र-दर्शन — मूल्य : २०)
१२७. ज्ञान-दर्शन: लेखक डा. भवानीलाल भारतीय एम. ए. पी. एच.डी. सजिल्द : मूल्य १०)
१२८. दयानन्द चित्रकथा— — मूल्य :५० पैसे
१२९. चार फल— — मूल्य :३० पैसे
१३०. योग की राह पर : — मूल्य :५० पैसे
१३१. पातंजल योगशास्त्र : — मूल्य : १)
१३२. भारत की अवनति के सात कारण — मूल्य : ६० पैसे
१३३ शक्ति रहस्य : पं० यशपाल सिद्धान्तालंकार — मूल्य : १)५०
१३४ वृहस्पति राज धर्म सूत्र : — मूल्य : २)
१३५ उपनिषद कथा माला : महात्मा नारायण स्वामी — मूल्य : १)
१३६ अध्यात्म योग : पं० दीनानाथ सिद्धान्तालंकार (कपड़े की जिल्द) मूल्य : ८)
१३७ स्वामी श्रद्धानन्द (जीवन परिचय) — मूल्य : ४० पैसे
१३८ महर्षि दयानन्द का ऐक्यवाद — मूल्य : १)
१३९ महर्षि दयानन्द ऐतिहासिक संस्मरण — मूल्य : १)
१४०. राष्ट्रवादी दयानन्द — मूल्य : १)
१४१. ईश्वर : वैज्ञानिकों की दृष्टि में — मूल्य १५)
१४२. जनज्ञान —(शताब्दी विशेषांक) — मूल्य : १०)
१४३. योग और ब्रह्मचर्य्य (सचित्र) — मूल्य :१)५०

आदेश के साथ १।४ धन अगाऊ भेजें। रेलवे स्टेशन लिखें।

दयानन्द संस्थान, वेद मन्दिर, ३१ नाईवाला, करोल बाग नई दिल्ली-५। दूरभाष : ५६६६३९/८०१२२१

अमृत वचन—अनमोल वाणी

(१) मनुष्य के दो महान शत्रु हैं क्रोध और मद्यपान। ये दोनों ही शरीर को इस प्रकार से घुला देते हैं जैसे की सोने को सुहागा पिघला देता है।

(२) सब जानते हैं कि गुनाह या ऐब या दुर्व्यसन बड़े पाप और ऐब है। परन्तु आश्चर्य यह है कि गुनाहगार को यह बहुत प्यारे होते हैं।

(३) सत्य बोलना पुण्य है और झूठ बोलना पाप है।

(४) जो धीरे-धीरे पकता है वह बहुत मीठा और जायकेदार होता है।

(५) हम न तो हिन्दू हैं, न मुसलमान, न सिक्ख, न फारसी, न यहूदी, न ईसाई। हम तो सच्चे मायने में इन्सान हैं।

(६) अन्धाधुन्ध न तो किसी की नकल करो और न कभीं भूल कर लालच करो। क्योंकि लालच दुःखों की खान है।

(७) पृथ्वी और आसमान की प्रत्येक वस्तु परमात्मा की आज्ञा मानकर चल रही हैं। उसकी आज्ञा सर्वोपरी और सर्वमान्य हैं।

(८) यह दुनिया उस सच्चे परमात्मा का घर है और सच्चा व्यक्ति ही प्रभु की नगरी में रहने के योग्य है। कहा भी है—सच्चे का बोलबाला और झूठे का मुंह काला।

(९) परमात्मा न्यायकारी और सत्यरूप है। उसके सारे काम सत्य पर आश्रित हैं वह स्वयं भी सच्चा है और उसका दरबार भी सच्चा है।

(१०) सूरज, चांद, तारे, वायु, समुद्र, सब ईश्वर की कृपा से अपना-अपना कार्य सम्पादन कर रहे हैं। उस शक्तिशाली परमात्मा की आज्ञा के बिना एक पत्ता तक नहीं हिल सकता।

(११) यदि संसार में सच का व्यवहार छोड़कर असत्य व्यवहार

से पैसा कमाया जाए तो चरित में एक तरह का धब्बा लग जाता है, जो धोने पर भी नहीं छूटता।

(१२) परमात्मा के नाम में ऐसा जादू है कि उसका नाम जपने से अन्धे को आंख, वहरे को कान और कोढ़ी को सुन्दर काया मिलती है।

(१३) जो प्रभु भक्त है, प्रभु के अस्तित्व में विश्वास रखते हैं और श्रद्धापूर्वक जो उसका नाम जपते हैं, ऐसे व्यक्तियों का इहलोक और परलोक दोनों सुधर जाते हैं।

(१४) पवित्र आत्मा वह नहीं हुआ करते जो जल से शरीर की शुद्धि कर लेते हैं। बल्कि पवित्रआत्मा वे हैं, जिनके शरीर में प्रभु का निवास स्थान है। वही शरीर शुद्ध समझे जाते हैं।

(१५) मनुष्य को स्वप्न में भी कभी ऐसा कार्य न करना चाहिये जिससे कि वह प्रभु के दरवार में जाकर लज्जित हो।

(१६) अच्छा खाना, अच्छा पीने, अच्छे कपड़े पहनने से आत्मा की न तो भूख-प्यास मिटती है, न उसे सन्तोष होता है। आत्मा तो तभी सन्तुष्ट रह सकती है जव उसे अ।ध्यात्मिक भोजन दिया जाय।

(१७) सच्चे नाम के विना मनुष्य का कहीं भी ठौर ठिकाना नहीं है। अगर कल्याण चाहते हो तो सव काम छोड़कर रात दिन-प्रभु को भजो।

(१८) कड़वा वोलने से शरीर और मन भी कड़वा हो जाता है।

(१९) वास्तव में जात-पात का भेद और वर्ण व्यवस्था आदि सव ढकोसला है। हमारे उत्तम काम ही हमारे जात-पात होते हैं।

(२०) जिस व्यक्ति में लोभ, लालच, मिथ्या मोह, अभिमान और मत्सर है वह विद्वान होते हुये भी पंडितों की सभा में मूर्ख कहलाता है।

राजधानी में बन रहें विशाल वेद मंदिर के लिए दान भेजिए।

—सत्यार्थी

अभिव्यक्ति एवं सोच

भारतीय चितंन की एक अवधारणा (निष्कर्ष भी कह सकते है) कि प्रक्रिया की गति भीतर से बाहर की ओर होती है। आइए, इसी बात को अभी चिंतन का धरातल बनायें।

हम जो बोलते या लिखते हैं, उसकी जमीन कहीं भीतर है। यानि 'अभिव्यक्ति' का प्रस्थान बिन्दू मोटे तौर पर हमारा 'सोच' है। सोच का प्रस्थान बिन्दू क्या होगा इस पर फिर कभी विचार करेंगे। देखिये, व्यक्ति अपने ही भीतर एक 'व्यक्ति' है और पूरी दुनिया भी। बाहर की सा ी स्थितियों, स्मृतियों, जानकारी का नक्शा ही भीतर बनता रहता है। इसे जरा ध्यान से समझिए—

कैसी विचित्र बात है यह कि बाहरी दुनिया जब भीतर स्थापित होती है तब वह भीतरी व्यक्ति से छोटी होती है—किन्तु जब भीतरी व्यक्ति बाहर स्थापित होता है तब बाहरी दुनिया की मान्यताओं और स्थापनाओं के सामने बौना होने लगता है। यही कारण है कि ऐसे ढेरों कानून, कायदे, मर्यादायें, सीमायें, मान्यतायें हमारी 'नैतिकता' का पर्याय हो गई हैं और प्रामतौर पर हम हमारा भीतरी व्यक्ति नहीं, बाहरी दुनिया ही जीते हैं। परिणामतः हमारा असली व्यक्तित्व तो हो जाता है गुम और ऊपर परत-दर-परत दुनिया जम जाती है। इसीलिए सुधार या परिमार्जन की कोशिश भी बाहरी परतों तक ही रहती है। चलिए, इसे 'अभिव्यक्ति' के संदर्भ से जोड़ें।

हम लोगों के पास अच्छाई बुराई, निर्लज्जता, कमजोरी, समझदारी, बुद्धिमत्ता, बेवकूफी आदि जानने के लिये कुछ रेडिमेड फ्रेमे है जिसमें किसी भी अभिव्यक्ति को फिट करके देखा जाता है। नतीजा यह कि अभिव्यक्ति का सारा का सारा ढंग ही अपनी स्वाभाविकता खोकर इन्हीं फ्रेमों के अनुरूप ढल रहा है। मेरी कोशिश यह रही है कि 'सोच' भीतर के 'व्यक्ति' और भीतर की 'दुनिया' के सही ताल मेल से ही चले और इसी भीतरी 'सोच' की बाहरी अभिव्यक्ति सहजता से हो। भला, सोच और अभिव्यक्ति के बीच फासला क्यों? फिर एक बात और है कि 'अभिव्यक्ति पर नियंत्रण' की अपेक्षा 'सोच पर नियंत्रण' ज्यादा कारगर हो सकता है। क्योंकि 'अभिव्यक्ति पर नियंत्रण' सामाजिक कायदों के सापेक्ष होगा जबकि 'सोच पर भीतरी नियत्रण' शाश्वत मूल्यों के सापेक्ष होगा। समूह मन की जड़ता को तोड़ने के लिए अभिव्यक्ति ही तो एकमात्र

जरिया है, इसलिये सोच (विचार) को शब्द दे सकने में पूरी-पूरी ईमानदारी और सहजता की जरूरत है। इससे जुड़ा दूसरा लाभ आत्म मूल्यांण और आत्म-परिमार्जन भी तो है। मान लो. कोई विचार तुम्हारे मन में जन्म लेता है। यदि तुम इसे हिम्मत से (या सहजता से शब्द दे दो, तो बाहर कुछ न कुछ असर होगा ही। इस असर का विश्लेषण करने पर तुम्हें अन्दाज लगेगा कि यह विचार बुरा है तक तुम अपने भीतर सुधार 'मन' या 'विचार' की गहराई से करोगी, जो वास्तविक सुधार होगा। जबकि अभिव्यक्ति न देने की दिशा में उस बुराई को भीतर ही सड़ने देना कहां तक उचित है? पर अगर विचार भला है तब तो अभिव्यक्ति से कोई बुनियादी नुकसान होगा नहीं।

पर इस सबका मतलब यह नहीं कि अभिव्यक्ति के मामले में गैर जिम्मेदाराना स्वच्छन्दता बरती जाये। अभिव्यक्ति या सोच में स्वतन्त्रता होनी चाहिए। स्वच्छन्दता में जहां कोई भी भीतरी या बाहरी नियम व व्यवस्था नकार दी जाती है, वहीं स्वतन्त्रता में भीतरी व्यक्ति के स्तर के नियम, सिद्धांत व व्यवस्था पालन जरूरी है। रजनीश का मानव' स्वच्छन्द है, दयानन्द का आर्य स्वतन्त्र। स्वच्छन्द अभिव्यक्ति किसी की हानि से बेखबर होगी जबकि स्वतन्त्र अभिव्यक्ति में किसी की अनुचित हानि न होना पहली शर्त होगी। हानि एक सापेक्ष शब्द है, यहां इसका अर्थ उसके औचित्य के सापेक्षतः लगाया जाये।

स्वस्थ और सुन्दर आंखों के लिए

भीमसेनी काजल

आंखों को नीरोग और सुन्दर बनाता है।

मुरारी ब्रदर्स

जी०-७, माडल टाऊन, दिल्ली-११०००७

गुरुकुल कांगड़ी फार्मेसी, हरिद्वार की
औषधियां प्रयोग करें

गुरुकुल कासारि

खांसी की अपूर्व गुणकारी औषधि

उपयोग किसी भी कारण से हुई खांसी, नजला, जुकाम आदि में लाभदायक है। सेवन विधि दिन में तीन बार छोटी चम्मच लेकर उंगली से चाटें।

● ★ ●

आंखों के अनेक रोगों के लिए

भीमसेनी सुरमा

¤¤¤

च्यवनप्राश

उत्तम स्वादिष्ट रसायन
शरीर को बलिष्ठ और कान्तिमय बनाता।

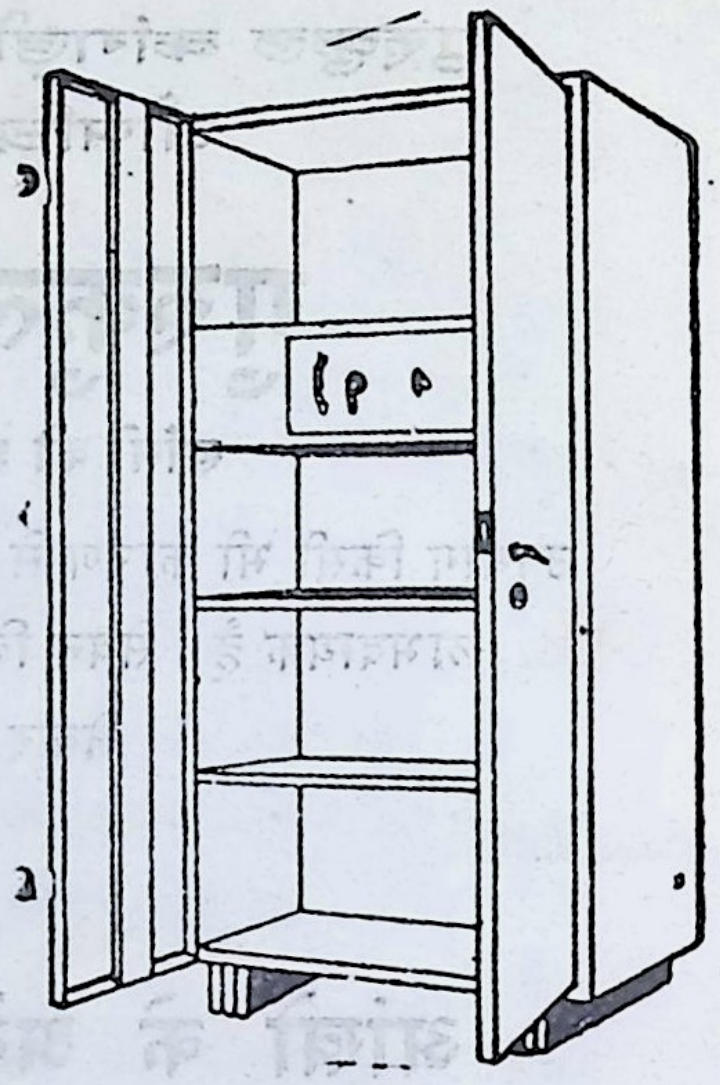
शारीरिक क्षीणता एवं फेफड़ों के लिए प्रसिद्ध
आयुर्वेद रसायन

पो. गुरुकुल कांगड़ी फार्मेसी (सहारनपुर)

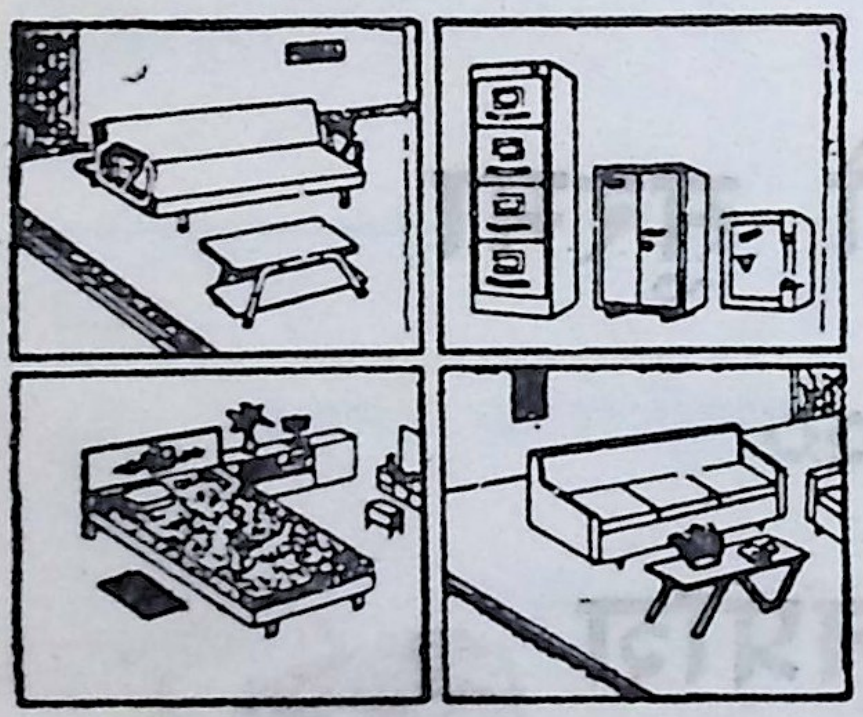
शाखा कार्यालय—६३, गली राजा केदारनाथ
चावड़ी बाजार, दिल्ली-११०००६ फोन नं० २६१४३७

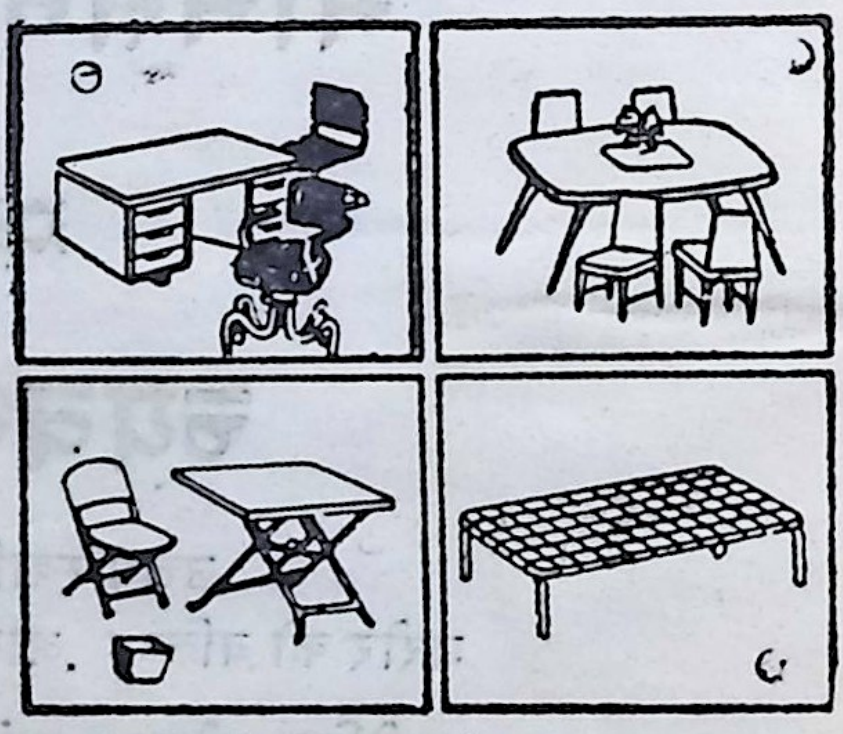
सुन्दर फरनीचर का प्रगतिशील नाम

डिलाईट



वर्षा उपवन व और कार्यकुशलता के कारण आज डिलाईट पक्की अलमारियां और फर्नीचर सारे भारत में प्रसिद्ध हैं क्योंकि यह देखने में सुन्दर, मजबूत टिकाऊ और पक्के रंगों में उपलब्ध हैं। मकान हो या घर, विवाह हो या कोई शुभ अवसर, यह सबकी शोभा बढ़ाता है।
आप भी आज डिलाईट फरनीचर खरीद कर अपने घर, आफिस व दुकान की शोभा बढ़ावें और आनन्द पावें।





डिलाईट सेफ वक्स

कुतुब रोड, दिल्ली-६. फोन 511380

विक्रेता

१. काटेंज स्टोर, २० विनय नगर मार्कीट, नई दिल्ली।
२. काश्मीर क्राकरी हाऊस, लक्कड़ बाजार, लुधियाना।
३. मित्तल ब्रादर्स, सिरकी बाजार, भटिण्डा। ४. निहालचन्द गोपालदास, अबोहर।
५. महेन्द्रा ब्रादर्स, कोर्ट रोड, मोगा।
६. जेम सेल्स कार्पोरेशन, सेक्टर ७-सी दु० नं० ३०, मध्य मार्ग, चण्डीगढ़।
७. हरयाणा आयरन एण्ड स्टील इण्डस्ट्रीज, बाजार हिसारिया, सिरसा।
८. लीला इलैक्ट्रिक कं०, ७० कोतवाली रोड, श्री गंगानगर (राज०)।
९. राणा इण्डस्ट्रीज, लाडपुरा बाजार, कोटा (राज०)।
१०. आदर्श इलक्ट्रिक एण्ड जनरल सप्लायर्ज, नैकोली, नीमच (म० प्र०)।
११. ओवरसीज ट्रेड एजेन्सीज, केसरगंज, अजमेर।

ईश्वर

संसार के सुप्रसिद्ध वैज्ञानिकों की दृष्टि में

ओ३म्

ई श्व र

संसार के सुप्रसिद्ध
वैज्ञानिकों की दृष्टि में

प्रस्तुत कर्त्ता एवं अनुवादक

पंडित क्षितीश कुमार वेदालंकार एम. ए.
सह संपादक दैनिक हिन्दुस्तान, नई दिल्ली

जन-ज्ञान प्रकाशन
दयानन्द संस्थान, वेद मन्दिर, दिल्ली-३६

जन-ज्ञान-प्रकाशन का २१८ वां पुष्प

प्रकाशक :

पंडिता राकेश रानी, अध्यक्ष
दयानन्द संस्थान वेद मन्दिर, दिल्ली-३६
दूरभाष : ८० १२ २१

दिल्ली कार्यालय :

दयानन्द संस्थान
१५९७ हरध्यान सिंह मार्ग, करौल बाग,
नई दिल्ली-११०००५
दूरभाष : ५६ ६६ ३९

सम्पादक :

सुमेधा

मूल्य : सजिल्द पुस्तकालय संस्करण
पन्द्रह रु० : १५)

शिवरात्रि : संवत् २०३५

मुद्रक :

नरेन्द्र प्रिंटिंग प्रेस, २० मॉडल बस्ती, नई दिल्ली-११०००५।

अपनी ओर से.....

ईश्वर है, यह विचार आस्तिकता की पृष्ठ भूमि है। ईश्वर नहीं है ऐसा कहने वालों को नास्तिक कहा जाता है।

ईश्वर की सत्ता पर तो सभी संप्रदाय एक मत हो जाते हैं, किन्तु वह कैसा है, कहां रहता है, क्या कर सकता है, क्या नहीं कर सकता ? इन प्रश्नों पर मत विभिन्नता है। और इसी अनेकता ने संप्रदायवाद को जन्म दिया है।

आधुनिक युग के महान् मनीषी दार्शनिक महर्षि दयानन्द सरस्वती ने अपने अमर ग्रंथ सत्यार्थ- प्रकाश में जो विचार प्रस्तुत किए हैं उन के द्वारा ईश्वर के स्वरूप को समझा जा सकता है ऐसा हमारा निश्चित मत है। हमारा यह भी विश्वास है कि महर्षि दयानन्द ने ईश्वर का जो रूप प्रस्तुत किया है उसे जानकर नास्तिकता स्वयं मिट जाती है।

पश्चिम के जिन विद्वानों ने ईश्वर की सत्ता से इन्कार किया, उन की दृष्टि में बाइबिल के ईश्वर का स्वरूप था, यदि उन्होंने वेद-वर्णित ईश्वर की व्याख्या जानी होती तो वे सभी नास्तिक ईश्वर विश्वासी होते।

फिर भी यह सुखद आश्चर्य का विषय है कि सं सार के सुप्रसिद्ध वैज्ञानिकों, और चिन्तकों ने ईश्वर की सत्ता को स्वीकार किया है। प्रस्तुत ग्रंथ वैदिक सिद्धान्तों के पोषण की दृष्टि से नहीं अपितु हिन्दी जगत् को संसार के विभिन्न वैज्ञानिकों के दृष्टिकोण से परिचित कराने की दृष्टि से प्रस्तुत किया जा रहा है।

हिन्दी जगत् के लब्ध प्रतिष्ठित विद्वान वैदिक दर्शन व अध्यात्म ज्ञान के व्याख्याता पं० क्षितीशकुमार जी ने अपनी भाव पूर्ण लेखनी से लेखों के संपादन व अनुवाद में मूल लेखकों की भावना को सही रूप में प्रस्तुत करने में सफलता पायी है। आंग्ल भाषा से अनुवादित यह लेख हिन्दी में पढ़ते हुए भी पाठक यह अनुभव नहीं कर पाता कि यह अनुवाद है, यही अनुवादक की विशेषता है।

ईश्वर के स्वरूप को समझने में, उसकी सत्ता के विश्वास में, पाठक का मन जागृत करने में ग्रंथ सफल होगा, और इसे पढ़कर ईश्वर से मिलने की चाह मानस में जागृत होगी, ऐसा हमारा विश्वास है।

मानव मात्र के अंतर में प्रभु से मिलने की उत्कंठा उत्पन्न हो, हम उस प्रियतम से मिलें, उस के समीप बैठें जिस से मिलन ही हमारे कल्याण का एक मात्र मार्ग है, यह हमारी कामना है।

अंतर का अंधकार भगाने और ज्योति पुंज मन में बिठाने में आप सफल हो, इस जीवन में प्रभु की गोद में बैठ कर आनन्द मधु रस पान करें—यह हमारा आशीर्वाद है—

और इसी मंगल कामना के साथ यह ग्रंथ आप को अर्पित करते हुए हम प्रसन्नता अनुभव कर रहे हैं—सब की कल्याण कामना करते हुए—

—राकेशरानी पंडित
शिवरात्रि २०३५

अध्यक्ष
दयानन्द संस्थान वेद मंदिर
दिल्ली-३६

ईश्वर

सच्चिदानन्द स्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वांतर्य्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टि कर्ता है, उसी की उपासना करनी योग्य है—

महर्षि दयानन्द सरस्वती

स्पष्टीकरण

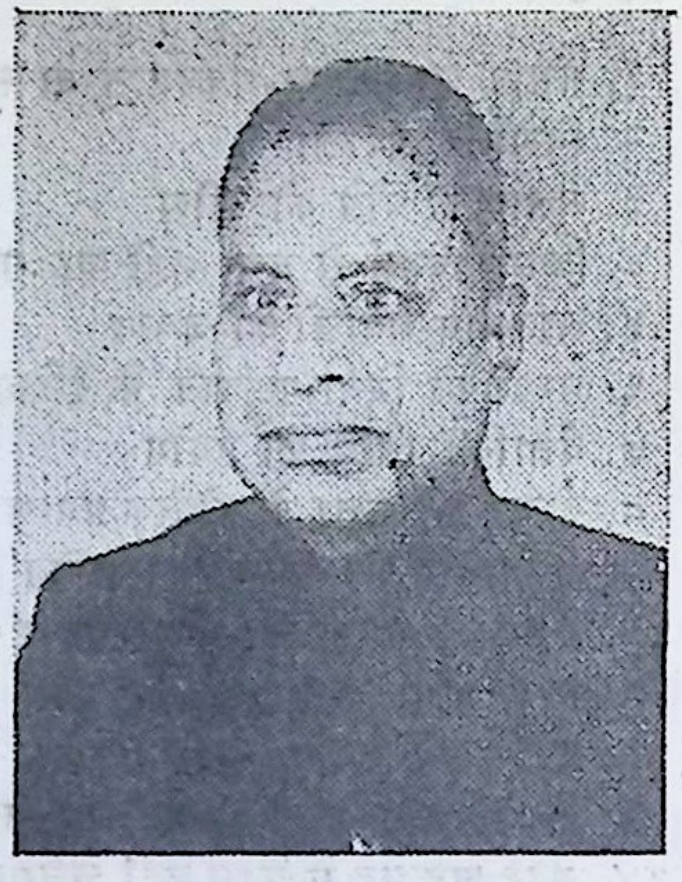
इस ग्रन्थ में प्रकाशित विचार सर्वत्र वैदिक धर्म के सिद्धान्तों के अनुकूल ही हैं, ऐसा हमारा दावा नहीं है। कई लेखों के विचारों से हमारी असहमति है। फिर भी, पश्चात्य वैज्ञानिकों की ईश्वर सम्बन्धी विचारधारा क्या है, यह बताने के लिए हम यह पुस्तक प्रकाशित कर रहें हैं। पाठक अन्यथा न समझें, इसलिए यह स्पष्टीकरण आवश्यक है।

—अध्यक्ष दयानन्द संस्थान

विषय-सूची

क्रम सं०	लेखक का नाम	पृष्ठ सं०
१. संसार का उद्भव-अकस्मात् या सप्रयोजन—फ्रेंक ऐलन		१
२. निर्णायक परीक्षा	राबर्ट मौरिस पेज	६
३. गुलाब के पौधे की सीख	मरिट स्टेनली कौंगडन	१०
४. जिस निष्कर्श से बचा नहीं जा सकता	जान क्लीवलैण्ड कोथरान	१४
५. लाजवाव सवालों का जवाव	डोनाल्ड हेनरी पोरटर	१६
६. तथ्यों को विना पक्षपात के देखिए	एडवर्ड लूथर कैसल	२५
७. वैज्ञानिक विधि का प्रयोग	वाल्टर ओस्कर लुण्डबर्ग	२६
८. ईश्वर की सत्ता के भौतिक प्रमाण	पाल क्लेरेंस ऐवरसोल्ड	३२
९. आइन्स्टीन की 'सृजनात्मक शक्ति' की पहचान—मारलिन बुक्स क्रडर		३५
१०. वैज्ञानिक खोजों का संकेत ईश्वर की ओर—जार्ज अर्लडेविस		४०
११. सादा पानी ही कहानी कह देगा	थामस डेविस पार्क्स	४४
१२. प्रकृति की जटिलता और ईश्वर	जान विलियम क्लोट्ज़	४७
१३. हमें परेशान करने वाला सबसे महत्त्वपूर्ण प्रश्न—ओस्कार लियो ब्राकउएर		५१
१४. कोरे जड़वाद से काम नहीं चलेगा	इरविंग विलियम नौव्लौक	५४
१५. वैज्ञानिक दृष्टि और ईश्वर	जान लियो ऐबरनेथी	५७
१६. रहस्यवादी युवक का स्पष्ट चिन्तन की ओर कदम—रसेल लोवेल मिक्सटर		६१
१७. पौधों की दुनिया में ईश्वर की छाप	जेराल्ड टी० डेन हारतोग	६५
१८. वनान्वेषी की डायरी के तथ्य	लारेंस कोल्टन वौकर	६९
१९. माली के वेटे ने जो सीखा	वाल्टर एडवर्ड लैमर्ट्स	७५
२०. करोड़ों जीवित कोषों का बोलता पैगाम	रसेल चार्ल्स आर्टिस्ट	८०
२१. आस्तिकवाद का औचित्य	जार्ज हर्वर्ट ब्लाउण्ट	८५
२२. भू-विज्ञान का संकेत	डोनाल्ड रोबर्ट कार	९१
२३. आधुनिक ज्योतिष और बाइबिल का उत्पत्ति-खण्ड—पीटर डब्ल्यू स्टोनर		९५
२४. महान् व्यवस्थापक	क्लौड एम० हैथवे	१००
२५. विद्वानों की साक्षियां	मर्लिन ग्राण्ट स्मिथ	१०३
२६. 'प्राकृतिक नियमों' की एक झांकी	एड्विन फास्ट	१०७
२७. रासायनिक नियम और ईश्वर	जान एडोल्फ़ ब्यूलर	११०
२८. विज्ञान मेरे विश्वास को विचलित नहीं कर सका—एल्बर्ट मैकोम्स विन्चेस्टर		११६
२९. जड़वाद को आस्तिकवाद के सामने झुकना होगा—ओलिन कैरोल कार्केलिट्ज़		१२०
३०. ईश्वर ही आदि और अन्त	एडमण्ड कार्ल कौर्नफैल्ड	१२५
३१. विश्व केन्द्रीय नियंत्रण के अधीन	अर्ल चेस्टर रेक्स	१२८
३२. धर्म भी विज्ञान-सम्मत है	माल्कम डन्कन विन्टर, जूनियर	१३१
३३. मिट्टी के कमाल	डेल स्वार्तजेन दुवर	१३५
३४. मिट्टी, पौधे और ४००० वर्ष पुराना स्पष्टीकरण—लीस्टर जान जिमरमैन		१३९
३५. मनुष्य स्वयं भी एक प्रमाण है	रावर्ट हौर्टन कैमरोन	१४३
३६. प्रयोगशाला की सीख	एलमर डब्ल्यू मौरेर	१४६
३७. विज्ञान और धर्म में संगति	वेने यू० आल्ट	१५१
३८. डाक्टरी चिकित्सा में ईश्वर का स्थान	पाल अर्नेस्ट एडोल्फ	१५५
३९. फूल, पक्षी, पानी की बूंद और तारे	सेसिल वोइस हैमान	१६०
४०. ईश्वर-सत्ता का पूर्ण निश्चय	एण्ड्रयू कौम्बे आइवी,	१६३

ग्रन्थ के अनुवादक



श्री पं० क्षितीशकुमार वेदालंकार गुरुकुल कांगड़ी के उन सुयोग्य स्नातकों में से हैं जिन पर कोई भी संस्था उचित रूप से गर्व कर सकती है। हैदराबाद के आर्य सत्याग्रह में महात्मा नारायण स्वामी जी के साथ जाने वाले सत्याग्रहियों में गुरुकुल कांगड़ी के ब्रह्मचारियों के जत्थे का नेतृत्व करने का सौभाग्य आपको ही प्राप्त हुआ था।

दर्शन अध्यात्म, राजनीति तथा ललित निबन्धों के लेखक के रूप में ख्याति प्राप्त। पैनी पत्रकारिता व सूझबूझ के धनी होने के साथ वाणी में जन-मानस को आन्दोलित करने की अद्भुत क्षमता। लेखनी और वाणी पर समान रूप से अधिकार।

साहित्य की जिस भी विधा पर लिखा, अपने ढंग का अनुपम लिखा। व्यंग्य भी लिखा तो सीधा दिल में उतर जाने वाला। उपन्यासों की शैली ऐसी रोचक कि वेदों के विद्वान् से वैसी शैली की कल्पना करना कठिन। भाषा में कविता का आनन्द विद्वत्ता की पुट होते हुए भी रस से ओत-प्रोत। जीवन में सात्विकता, सादगी, नम्रता और सरलता की सुगन्ध।

आर्यसमाज क उपदेशक के रूप में सामाजिक जीवन का प्रारम्भ। विभाजन से पूर्व पंजाब में आर्य समाज के मंच पर धूम। विभाजन के पश्चात् पत्रकारिता में प्रवेश पहले 'अर्जुन' में और बाद में दैनिक "हिन्दुस्तान" में सहायक सम्पादक के रूप में कार्य।

१० अक्तूबर १९१७ को विजयादशमी से अगले दिन (भरत-मिलाप) दिल्ली में जन्म। मूलतः हरियाणा वासी। शिक्षा-गुरुकुल कांगड़ी से 'वेदालंकार' और आगरा विश्वविद्यालय से एम० ए०।

आपकी पुस्तकें : १. आर्य सत्याग्रह में गुरुकुल की आहुति, २. जातिभेद का अभिशाप, ३. आर्यसमाज की विचारधारा, ४. जलबिन्दु (गुजराती से अनूदित), ५. मधुर आकांक्षा (अंग्रेजी से अनूदित), ६. स्वेतलाना (उपन्यास), ७. गांधी जी के हास्य विनोद, ८. सातवलेकर अभिनन्दन ग्रन्थ, ९. मौरिशस स्मारिका, १०. दयानन्द दिव्य दर्शन, ११. बंगलादेश स्वतंत्रता के बाद (यात्रा-विवरण), १२. ईश्वर वैज्ञानिकों की दृष्टि में (आपके हाथ में)।

—सुमेधा

अनुवादक की ओर से

सृष्टि के आदि से ही मनुष्य में सत्य को जानने और उसके अन्वेषण की उत्कट लालसा रही है। मनुष्य अपने चारों ओर की विचित्र और विविधता भरी सृष्टि का अवलोकन करता है तो तुरन्त उसके मन में प्रश्न उत्पन्न होता है कि यह सृष्टि कहां से आई। क्या इसका कोई बनाने वाला है, या यह अपने आप बन गई? फिर वह अपने आपको भी देखता है। वह जानता है कि कुछ वर्ष पहले उसका जन्म हुआ था और उस जन्म से पहले वह इस संसार में नहीं था। वह यह भी जानता है कि एक दिन उसकी जीवनलीला समाप्त हो जाएगी और तब वह इस संसार में नहीं रहेगा। अपने चारों ओर अन्य प्राणियों को जन्म लेते और मृत्यु को प्राप्त होते वह नित्य प्रति देखता है और तब उसके मन में सृष्टि की उत्पत्ति के सम्बन्ध में भी सहज जिज्ञासा उत्पन्न होती है।

इसी जिज्ञासा को चिन्तन का प्रारम्भ कह सकते हैं। चिन्तन अर्थात् तत्व-चिन्तन। इसी तत्त्वचिन्तन का नाम 'दर्शन' (या फिलासफी) है। इस 'दर्शन' शब्द में ही यह बात भी छिपी है कि ऐसा चिन्तन एक विशेष प्रकार की दृष्टि का द्योतक है। यह चिन्तन कोरा चिन्तन न होकर ऐसा चिन्तन है जिसमें तर्क और बुद्धि को मुख्य स्थान है। बुद्धि-युक्ति चिन्तन ही दर्शन शास्त्र का आधार है। इस चिन्तन से प्रेरित तलस्पर्शी दृष्टि रखने वाले ही द्रष्टा अथवा ऋषि कहलाते हैं।

जीवन में नित्य प्रति घटने वाली घटनाओं में मानव जब यह देखता है कि संसार में कोई भी चीज बिना बनाए नहीं बनती—जैसे कुम्हार के बिना घड़ा नहीं बनता, जुलाहे के बिना कपड़ा नहीं बनता, लुहार के बिना औजार नहीं बनते और स्वर्णकार के बिना आभूषण नहीं बनते, तब वह इस नियम की स्थापना करता है कि बिना कारण के कोई कार्य नहीं होता, प्रत्येक कार्य के पीछे कोई न कोई कारण होता है।

पर कारण भी एक तरह का थोड़े ही होता है! कुम्हार का ही उदाहरण लें। यह ठीक है कि बिना कुम्हार के घड़ा नहीं बन सकता। पर बिना मिट्टी के भी तो घड़ा नहीं बन सकता। इसलिए घड़ा बनने से पहले मिट्टी और कुम्हार दोनों का होना आवश्यक है। यदि कुम्हार और मिट्टी दोनों उपस्थित हों, पर दण्ड और चक्र उपस्थित न हों, तब भी घड़ा नहीं बन पाएगा। इस प्रकार घट नामक वस्तु को कार्यरूप में परिणत होने के लिए तीनों का होना आवश्यक है—कुम्हार, मिट्टी तथा दण्ड और चक्र। इन्हीं तीनों कारणों का नाम है—निमित्त कारण, उपादान कारण

और साधारण कारण। घड़े के निर्माण में कुम्हार है निमित्त कारण, मिट्टी है उपादान कारण और दण्ड-चक्र आदि हैं साधारण कारण। इन तीनों कारणों के बिना संसार की कोई भी चीज नहीं बन सकती। दर्शनशास्त्र की दृष्टि से इसी का नाम है—कार्य-कारण सिद्धान्त।

जब यह कार्य-कारण सिद्धान्त संसार की प्रत्येक वस्तु पर लागू है तो सृष्टि पर लागू क्यों नहीं होगा? आश्चर्य की बात यही है कि नास्तिक लोग संसार की प्रत्येक वस्तु के सम्बन्ध में इस कार्य-कारण के सिद्धांत को लागू करते हैं, पर सृष्टि की उत्पत्ति के सम्बन्ध में लागू नहीं करते। अन्य हरेक वस्तु के सम्बन्ध में वे सर्वात्मना यह स्वीकार करेंगे कि वह बिना कारण के नहीं बन सकती, पर सृष्टि के सम्बन्ध में कहेंगे कि यह बिना किसी कारण के या बिना किसी कर्ता के बन गई। यह बुद्धि-युक्त चिन्तन का—दर्शन का—सर्वथा अपलाप है।

इसीलिए वेदान्त दर्शन में 'अथातो ब्रह्म-जिज्ञासा'—कह कर जब ब्रह्म की जिज्ञासा का प्रकरण प्रारम्भ करते हैं, तब तुरन्त दूसरा सूत्र आता है—

जन्माद्यस्य यतः (अ०।१।२)

—अर्थात् इस जगत् के जन्म, स्थिति और प्रलय का जो कारण है, वही ब्रह्म है और वही जानने योग्य है।

ऊपर हमने कार्य-कारण सिद्धान्त की चर्चा करते हुए तीन कारणों की चर्चा की है—निमित्त, उपादान और साधारण। वही तीनों कारण सृष्टि के सम्बन्ध में भी पूरी तरह लागू होते हैं। निमित्त कारण वह है जो स्वयं अपरिवर्तित रहकर नाना रूप पदार्थों को बनाता है। उपादान कारण वह है जिससे निर्माता किसी पदार्थ का निर्माण करता है। और साधारण कारण वह है जो बनाने का साधन बने या जिसके लिए पदार्थ का निर्माण हो। इस प्रकार इस सृष्टि का निमित्त कारण हुआ परमात्मा, उपादान कारण हुआ प्रकृति और साधारण कारण हुआ जीव। इसी को वैदिक धर्म में त्रैतवाद की संज्ञा दी गई है।

परमात्मा का एक विशेषण ऐसा है जिसमें यह सारा तत्त्वचिन्तन अनायास समाहित हो गया है और वह विशेषण है—सच्चिदानन्दस्वरूप। इस 'सच्चिदानन्द' शब्द में ईश्वर, जीव और प्रकृति—इन तीनों की स्थिति का सम्यक् निदर्शन है। प्रकृति केवल सत् है (चेतन नहीं), जीव सत् और चित् दोनों हैं (पर आनन्द नहीं), और परमात्मा तीनों है—वह सत् भी है, चित् भी और आनन्द भी।

प्रकृति—सत्
जीव—सत्+चित्
परमात्मा—सत्+चित्+आनन्द (सच्चिदानन्द)

ईश्वर, जीव और प्रकृति—इन तीनों की यथार्थ स्थिति का बोध कराने वाला एक बहुत सुन्दर मंत्र है—

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति॥

[यजु० १।१६४।२०]

— दो सुन्दर पक्षी हैं जो कई गुणों में समान है और परस्पर मित्र है। वे दोनों एक ही वृक्ष पर बैठे हैं। उनमें से एक तो उस वृक्ष के फलों को स्वाद ले लेकर खाता है और दूसरा केवल देखता रहता है। इस मंत्र में अत्यन्त सुन्दर रूपक है। वे दोनों पक्षी हैं ईश्वर और जीव। वे 'सयुज' इसलिए है कि व्याप्य-व्यापक भाव से सम्बद्ध है। 'सखा' इसलिए हैं कि उनमें चेतनता और पालनादि के गुण समान हैं। जैसे ये दोनों पक्षी (ईश्वर और जीव) अनादि हैं, वैसे ही वह वृक्ष भी अनादि है। वृक्ष है—प्रकृति। सारा संसार उस प्रकृति का ही तो खेल है। जीव रूपी पक्षी इस संसार रूपी वृक्ष के फलों को स्वाद ले लेकर खाता है अर्थात् अपने पाप-पुण्यों के फल भोगता है और दूसरा पक्षी अर्थात् ईश्वर अपने कर्मफल नहीं भोगता, केवल जीव के कर्मफल भोग की व्यवस्था करता है।

ऊपर हमने बात को बहुत सरल ढंग से समझाने का प्रयत्न किया है। पर विज्ञ पाठक कहेंगे कि यदि इस जगत् और ईश्वर की पहेली इतनी ही आसान है, तो मूर्खों की बात छोड़िए, विद्वानों में ही इतना मतभेद क्यों है ?

इसका प्रथम उत्तर तो यह है कि मतभेद होना मनुष्य के चिन्तनशील और बुद्धियुक्त प्राणी होने की निशानी है। जानवरों में ही मतभेद नहीं होते—न उनमें वाद-विवाद होते हैं, न उनके आस्तिक या नास्तिक जैसे कोई सम्प्रदाय ही होते हैं। यह सारा जंजाल केवल मनुष्य की बुद्धि की ही उपज है।

दूसरा उत्तर यह है कि ईश्वर की सत्ता की सिद्धि सचमुच ही बहुत आसान है पर निहित स्वार्थों ने उसे जानबूझ कर जटिल बना दिया है। जटिल न बनाएं तो चेले गुरुओं की शरण में जाएं ही क्यों ? गुरुओं ने अपनी महत्ता बनाए रखने के लिए ही अपने अपने चेलों की जमात खड़ी कर दी है और उन चेलों के करतब देख देख कर सामान्य व्यक्ति ईश्वर पर विश्वास करता हो तो न करे। शायर ने कहा है न—

खुदा के बन्दों को देखकर के खुदा से मुन्किर हुई है दुनिया।
ऐसे बन्दे हों जिस खुदा के वह कोई अच्छा खुदा नहीं है॥

और तीसरा उत्तर यह है कि परमात्मा संसार के अन्य पदार्थों की तरह ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों से ग्रहण नहीं किया जा सकता, क्योंकि वह उन इन्द्रियों का विषय ही नहीं है। आंख केवल रूप को ग्रहण करती है, अरूप को नहीं। कान केवल शब्द को ग्रहण करते हैं, अशब्द को नहीं। जिह्वा केवल रस को ग्रहण करती

है, रसातीत को नहीं। नासिका केवल गन्ध को ग्रहण करती है, गन्धातीत को नहीं। त्वचा केवल स्पर्श को ग्रहण करती है, स्पर्शातीत को नहीं। परमात्मा तो 'अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययम्' है। वह तो इन्द्रियातीत है, इसलिए इन्द्रियगोचर कैसे हो सकता है ? जितनी इन्द्रियां है, वे सभी बहिर्मुखी है—('पराञ्चि खानि व्यतृणत् स्वयम्भूः।') इसलिए वे केवल बाहरी और स्थूल वस्तुओं को ही देख सकती है, सूक्ष्म वस्तुओं को नहीं। इन्द्रियों की अपनी सीमा है, उस सीमा से बाहर वे नहीं जा सकतीं। इसलिए जो लोग इन्द्रियगोचर विषयों से परे किसी वस्तु की कल्पना नहीं करना चाहते, वे परमात्मा को भी क्यों मानेंगे ? जो केवल प्रत्यक्ष को ही प्रमाण मानते हैं, और अप्रत्यक्ष और परोक्ष में विश्वास नहीं करते, वे अपने आपको नास्तिक कहेंगे और इसी में गर्व अनुभव करेंगे।

केनोपनिषद् की एक आख्यायिका इस विषय पर अच्छा प्रकाश डालती है—

सृष्टि-रचना के पश्चात् सब देवताओं को इस बात का अभिमान हो गया कि इसके रचियता हम ही हैं, परमात्मा नहीं। देवताओं का मान-मर्दन करने के लिए भगवान् स्वयं एक यक्ष के रूप में प्रकट हुए। यक्ष के दिव्य रूप को देखकर सब देवता चकित हुए और चकराए। देवराज इन्द्र ने अग्निदेव से कहा—"हे अग्निदेव ! आप जाकर पता लगाइए कि यह अनुपम दिव्य तेजधारी यक्ष कौन है ?" अग्निदेव गए। यक्ष ने अग्निदेव को देखते ही उनका परिचय और सामर्थ्य पूछा। अग्निदेव ने अकड़ कर कहा—"मैं जातवेद हूं। द्युलोक और पृथ्वीलोक के सभी स्थावर-जंगम पदार्थों को क्षण भर में भस्मीभूत कर सकता हूं।" यक्ष ने अग्निदेव के सामने एक तिनका रख दिया और कहा कि इसे जलाकर दिखाइए। अग्निदेव अपनी सारी शक्ति लगाकर भी उस छोटे से तिनके को नहीं जला सके और लज्जा से नतमस्तक होकर वापिस लौट आए।

तब इन्द्र ने पवनदेव को भेजा। यक्ष ने पवनदेव को देखकर उनसे भी उनका परिचय और योग्यता पूछी। पवनदेव ने भी सदर्प कहा—"मैं मातरिश्वा हूं और पृथ्वी और अन्तरिक्ष के मध्य जो कुछ भी है, उसे उड़ा सकता हूं।" यक्ष ने पवनदेव के सामने तिनका बढ़ाते हुए कहा—'इसे उड़ाइए।' पवनदेव भी अपना सारा जोर लगाकर थक गए और उस तिनके को नहीं उड़ा सके। तब पवनदेव भी अपनी पराजय स्वीकार कर चुपचाप लौट गए।

इस प्रकार जब एक एक कर सभी देवता पराजित हो गए, तब अन्त में सब देवताओं ने इन्द्र से कहा—"अब आप ही इस यक्ष का पता लगाइए।" 'तथास्तु' कह कर इन्द्रदेव चल दिए। इन्द्र को आता देख यक्ष स्वयं तिरोहित हो गया। हतप्रभ देवराज इन्द्र दुविधा में पड़ गए कि यह क्या हो गया। तभी एक सर्वालंकृता, दैवी ज्योति से युक्त, उमा नाम की एक कन्या प्रकट हुई। इन्द्र ने उससे पूछा कि यह यक्ष कौन था और अब कहां चला गया। उसने इन्द्र से कहा: "वह यक्ष और कोई नहीं,

साक्षात् ब्रह्म था। अरे देवताओं ! यह उसी की शक्ति है जिससे सारे संसार के सब पदार्थ शक्तिमान् हुए हैं। वे तुम सब देवताओं का मिथ्या दर्प हरण करने के लिए ही यहां प्रकट हुए थे।" उमा के वचन सुनकर इन्द्र की आंखे खुल गयीं और ब्रह्म की वास्तविक शक्ति का उन्हें ज्ञान हो गया।

जितनी ज्ञानेन्द्रियां हैं, वे ही अग्नि आदि देव है। आत्मा है इन्द्रियों (देवों) का राजा। आत्मा ही इन्द्र है। इन्द्र का साधन=इन्द्रियां। जितनी भी इन्द्रियां है, वे सब देवराज इन्द्र अर्थात् आत्मा की ही तो अनुचरी हैं। इन्हीं इन्द्रियों के माध्यम से आत्मा (इन्द्र) समस्त बाह्य संसार का ज्ञान प्राप्त करता है। परन्तु आत्मा भी यक्ष (ब्रह्म) को तभी पहचान सकता है जब उमा=ऋतम्भरा प्रज्ञा उसकी सहायता करे, अन्यथा नहीं। (उ=वितर्क, मा=नहीं, अर्थात् ऐसी प्रज्ञा जिसमें सत्य के प्रति दृढ़ आस्था हो और जो वितर्क-शून्य हो।)

इस अख्यायिका का सार यही है कि परमात्मा केवल आत्मगम्य है, इन्द्रियगम्य नहीं। फिर इन्द्रियगामी जन यदि परमात्मा की सत्ता से ही इन्कार कर बैठें, तो क्या आश्चर्य ! आधुनिक युग में नास्तिकता का जो दिन-दूना और रात चौगुना प्रसार होता जा रहा है, उसका अधिकांश दोष उन आस्तिकम्मन्यों पर है जिन्होंने परमात्मा के सम्बन्ध में सर्वथा बुद्धि-विरुद्ध मान्यताएं अपना रखी हैं। उदाहरणार्थ, एक ओर परमात्मा को सर्व व्यापक कहा जाता है, साथ ही उसे वैकुण्ठ लोक में, कैलाश पर्वत पर, या क्षीर सागर में, या चौथे और सातवें आसमान पर विराजमान बताया जाता है। जो किसी स्थान-विशेष पर विराजमान है, वह तो एक देशी हो गया, वह सर्वव्यापक नहीं हो सकता। आस्तिक लोग परमात्मा को निराकार, निर्विकार और अजन्मा मानते हैं, पर साथ ही उसके नाना अवतारों की घोषणा करते हैं। निराकार है, तो साकार कैसे हो जाएगा ? फिर जो किसी विशेष युग में जन्म लेगा, वह अजन्मा और सार्वकालिक भी नहीं रहा। जो जन्म लेगा, वह मृत्यु को भी अवश्य प्राप्त होगा। फिर परमात्मा अजर, अमर और अविनाशी भी नहीं रहा। जो एक मां के गर्भ में आ गया, वह सर्वान्तर्यामी भी नहीं रहा। जिसे रावण या कंस को मारने के लिए धराधाम पर मनुष्य जन्म लेकर आना पड़े, उसे सर्वशक्तिमान् कौन कहेगा ?

इसी प्रकार नाना देवी-देवताओं को परमात्मा के स्थान पर पूजने वाले भी प्रकारान्तर से परमात्मा का अपमान ही करते हैं। फिर जो लोग अपने आपको भगवान् कहते हैं और अपने शिष्यों के समक्ष अपने आपको ईश्वर का अवतार बताने का कुत्सित प्रयत्न करते हैं, उनके अनुयायियों की बुद्धि पर तो तरस आता है। ऐसे भगवान् तो सिवाय अज्ञान-शिरोमणियों के और कुछ हो ही नहीं सकते। आजकल ऐसे भगवानों की भरमार है। एक ही युग में इतने भगवान् और कब हुए ? कलियुग भी कितना सौभाग्यशाली है कि उसमें एक साथ इतने भगवान् विराजमान् हैं ! ऐसे भगवानों से और उनके अनुयायियों से नास्तिक कहीं अच्छे है, क्योंकि वे मिथ्या दम्भ और

पाखण्ड तो नहीं करते। ये तथाकथित आस्तिक तो सिवाय पाखण्ड के और कुछ भी नहीं करते।

वैज्ञानिक लोग द्रव्य की परिभाषा करते हैं—जिसमें भार हो और जो स्थान को घेरे। प्रत्येक सांसारिक द्रव्य पर यह लक्षण घटित होगा। पर परमात्मा में न कोई भार है, और न ही वह स्थान को घेरता है, क्योंकि वह सांसारिक द्रव्य की कोटि में ही नहीं आता। जब भी कोई द्रव्य जन्म लेगा—वह किसी न किसी काल (टाइम) में होगा, और किसी न किसी देश (स्पेस) में होगा। एक प्रकार से देश और काल ऐसी दो उपाधियां है जिनसे संसार का प्रत्येक पदार्थ घिरा हुआ है। पर परमात्मा देश और काल के बन्धन में नहीं आता। वेद ने कहा है—

यो भूतं च भव्यं च सर्वं यश्चाधितिष्ठति।
स्वर्यस्य च केवलं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः॥

—जो भूत और भविष्य का तथा संसार में पैदा होने वाले प्रत्येक पदार्थ का अधिष्ठाता है, और केवल आनन्द-स्वरूप है, उस ज्येष्ठ ब्रह्म को नमस्कार है। भूत और भविष्य का अधिष्ठाता ही सर्वज्ञ हो सकता है। इसका सीधा अभिप्राय यह है कि सर्वज्ञ होने के लिए कालातीत होना आवश्यक है। इसी प्रकार सर्वव्यापक होने के लिए देशातीत होना आवश्यक है।

महाकवि भर्तृहरि ने 'नीति शतक' का मंगलाचरण करते हुए परमात्मा की बहुत सुन्दर वैज्ञानिक व्याख्या की है :

दिक्कालाद्यनवच्छिन्नानन्त चिन्मात्रमूर्तये।
स्वानुभूत्येकमानाय नमः शान्ताय तेजसे॥

—जो दिशा और काल के बन्धन से रहित है, जो अनन्त है ('इनफिनिट' है, अर्थात् जिसमें सब विरोधों का परिहार हो जाता है; जैसे—गणित का नियम है कि दो समानान्तर रेखाएं परस्पर कभी नहीं मिलतीं, पर 'इनफिनिट' में जाकर मिल जाती हैं।), जिसकी मूर्ति केवल चेतनता-मात्र है, अर्थात् जो केवल चित्स्वरूप है, और अपनी अन्तरात्मा की अनुभूति ही जिसकी सत्ता का एकमात्र सबल प्रमाण है, उस शान्त तेज को (जो शान्त होगा, वह तेज नहीं होगा और जो तेज होगा वह शान्त नहीं होगा, पर परमात्मा शान्तस्वरूप और तेजस्वरूप दोनों है), नमस्कार है।

ईश्वर के सम्बन्ध में ऋषि दयानन्द की मान्यता क्या है, यह 'स्वमन्तव्यामन्तव्य प्रकाश' के पहले ही मन्तव्य से स्पष्ट है—

प्रथम 'ईश्वर' (कि जिसके ब्रह्म, परमात्मा आदि नाम हैं), जो सच्चिदानन्द आदि लक्षणयुक्त है, जिसके गुण, कर्म, स्वभाव पवित्र हैं, जो सर्वज्ञ, निराकार, सर्वव्यापक, अजन्मा, अनन्त, सर्वशक्तिमान्, दयाल, न्यायकारी, सब सृष्टि का कर्ता,

धर्त्ता, हर्त्ता, सब जीवों के कर्मानुसार सत्य न्याय से फलदाता आदि लक्षण युक्त है, उसी को परमेश्वर मानता हूं।

ऋषि दयानन्द ने आर्यसमाज के दस नियमों की रचना करते हुए जो प्रथम दो नियम रखे हैं, यहां उनका भी उल्लेख कर देना समीचीन रहेगा।

पहला नियय है—सब सत्यविद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं, उन सबका आदि मूल परमेश्वर है।

दूसरा नियम है—ईश्वर सच्चिदानन्द-स्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान्, न्याय-कारी, दयालु, अजन्मा अनन्त निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्ता है। उसी की उपासना करनी योग्य है।

इतनी तर्क-शुद्ध, अव्याप्ति और अतिव्याप्ति दोष से रहित, सर्वांगपूर्ण, परि-भाषा के बाद शायद ईश्वर के विषय में और कुछ कहने को नहीं बचता।

आस्तिकता के साथ और सैंकड़ों अवान्तर प्रश्न जुड़े हुए हैं। उन सबके विस्तार में जाने से यह भूमिका न रह कर एक अलग पुस्तक ही बन जाएगी—इसलिए यहां उस मोह को छोड़ देना ही श्रेयस्कर है। परन्तु प्रस्तुत पुस्तक के सम्बन्ध में कुछ चर्चा कर देना अप्रासांगिक नहीं होगा।

अब से कुछ अर्सा पहले एक अंग्रेजी की पुस्तक मेरे हाथ लगी थी जिसका नाम था—The Evidence of God In Expanding Universe—इस लगातार फैलते विश्व में ईश्वर सम्बन्धी साक्ष्य)। उस पुस्तक में चालीस वैज्ञानिकों ने ईश्वर के सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट किए थे। ईश्वर और वैज्ञानिक? प्राय: दोनों को एक दूसरे के विरुद्ध माना जाता है। बड़ी उसुत्कता से उस पुस्तक को पढ़ना शुरू किया, तो पुस्तक ने मन को बांध लिया। इन वैज्ञानिकों ने बड़ी साफ-गोई से काम लिया था और सब ने अपने अपने अध्ययन के विशिष्ट क्षेत्र के अपने अनुभवों को बिना किसी पूर्वाग्रह के लिपिबद्ध किया था। साथ ही उनका प्रयत्न यह रहा कि इन लेखों में ऐसी वैज्ञानिक परिभाषाओं से बचा जाए जो विज्ञान से अनभिज्ञ सामान्य पाठक के लिए दुरूह हो सकती हैं। फिर भी ईश्वर जैसा आध्यात्मिक और दार्शनिक विषय और उस पर वैज्ञानिक की लेखनी। यह कोई कहानी और उपन्यास तो है नहीं कि सोने से पहले थोड़ी देर मन-बहलाव के लिए उसे पढ़ लिया जावे। फिर विज्ञान मेरे भी विशिष्ट अध्ययन का क्षेत्र कभी नहीं रहा। फिर भी मैं इन लेखों को हृदयंगम कर सका, केवल इतना ही नहीं, प्रत्युत इनमें इतना आनन्द ले सका कि मन में इनका अनुवाद करने की धुन समा गई, ताकि गैर अंग्रेजी भाषी अन्य पाठकों तक भी इनका कथ्य पहुंच सके। इन वैज्ञानिकों में भौतिकीविद् हैं, रसायनविद् है, प्राणिविद् हैं, भूगर्भविद् है, मृदाविद् हैं, कृषि और वृक्ष-वनस्पतिविद् है, कीट और जन्तुविद् हैं,

ज्योतिर्विद् हैं, और भी विज्ञान की अन्य अनेक शाखाओं के अध्येता और विशेषज्ञ हैं। सबका मूल स्वर प्राय: यही है कि उन्होंने विज्ञान की जिस-जिस शाखा का अध्ययन किया है उसमें सर्वत्र उन्हें क्रम, व्यवस्था और इतनी सुघड़ नियमबद्धता दिखाई देती है कि वे यह मान ही नहीं सकते कि यह संसार बिना किसी नियामक के, बिना किसी कर्ता के, बिना किसी व्यवस्थापक के, स्वयमेव और अकस्मात् पैदा हो गया। वह नियामक, व्यवस्थापक और रचयिता ही परमात्मा हैं। इन सब वैज्ञानिकों का सर्व-सम्मत निष्कर्ष यही है।

एक बात ध्यान देने की है। ये सब पाश्चात्य विद्वान् मसीही धर्म के मानने वाले हैं, ईसाई हैं, इसलिए बाइबिल के प्रति इनका लगाव भी स्वाभाविक है। कई वैज्ञानिकों ने इसीलिए बाइबिल में वर्णित सृष्टि के क्रम को, और खास तौर से उत्पत्ति खण्ड को, विज्ञान-सम्मत सिद्ध करने का प्रयत्न किया है। उनसे यह बात तो सीखी ही जा सकती है कि अपने मान्य धर्मग्रन्थ के एक-एक शब्द को सही सिद्ध करने के लिए वे कितना बौद्धिक श्रम करते हैं। कुछ वैज्ञानिकों ने ईश्वर की सत्ता को तो स्वीकार किया है, पर स्पष्ट रूप से यह भी कहा है कि बाइबिल में वर्णित ईश्वर मानने योग्य नहीं है। इस सन्दर्भ में कुछ वैज्ञानिकों ने भारतीय शास्त्रों की ओर भी दबे स्वर से संकेत किया है। अनेक स्थानों पर वेद और उपनिषद् आदि के उद्धरण मैंने पाद-टिप्पणी में दिए हैं, जिससे तुलनात्मक विवेचना करने में आसानी हो, पर अपनी ओर से उन लेखकों के मन्तव्य को बदलने का प्रयत्न नहीं किया है। वैसा करना बेईमानी होती। इसलिए यह कहना भी आवश्यक है कि वैज्ञानिकों के इन विचारों से सर्वांश में हमें सहमत न समझा जाए, पर पाश्चात्य वैज्ञानिक ईश्वर के सम्बन्ध में क्या कहते हैं और उनकी विचार-प्रक्रिया क्या है—यह इन लेखों से स्पष्ट हो जाएगा। विज्ञान से सर्वथा अपरिचित पाठकों को कुछ असुविधा हो सकती है, पर अपनी ओर से भाषा को सरल रखने का प्रयत्न किया है। फिर भी विषय की गम्भीरता और अनुवाद की बाधा के कारण कहीं कहीं 'बहता पानी निर्मल' जैसा न लगे तो पाठकों से क्षमा चाहूंगा।

अन्त में दयानन्द संस्थान के संचालकों का बहुत-बहुत धन्यवाद, जिनके उत्साह के कारण यह पुस्तक इस रूप में पाठकों के सामने आ रही है।

शिवरात्रि — क्षितीश वेदालंकार

७ मार्च, '७८

विज्ञान और परमात्मा

डा० स्वामी सत्यप्रकाश 'सरस्वती'

× × ×

हम सब एक वृहद् सृष्टि के परिवार हैं। जब से हमने आंखें खोलीं, हमने अपने शारीरिक तन्त्र को रचा हुआ पाया, और जिस, वातावरण में हमने अपने पहले श्वास लिये, उसे भी पहले से विद्यमान पाया। हमारे अवतरण से पूर्व हमारे ही ऐसे अनेक सदस्य इस संसार में थे—हम अकेले न थे। जिस सृष्टि में हम आये वह भी बदलती हुई एक सत्ता थी, और हमारे शरीर का समस्त तन्त्र भी बदलता हुआ एक यथार्थ, भावपूर्ण, तथ्य था। हमारा समस्त परिवार एक दूसरे के साथ ग्रथित था। यदि हमारे शरीर पर दो छोटी सी आंखें थीं, तो उन आंखों को सार्थकता प्रदान करने वाला लाखों मील दूर हमारा सूर्य था, और उससे भी कहीं दूर टिमटिमाते हुए तारे थे, जिन्हें हमने अपनी छोटी छोटी आँखों से देखा। हमारे शरीर के दायेबायें दो कान थे, जिन्हें सार्थक करने के लिए दूर दूर से आती हुई हमें ध्वनि सुनाई पड़ने लगी—मानों जिसने हमारे कानों को रचा है, उसी ने ध्वनि-उत्पादक स्रोतों में ध्वनि के आविर्भाव की क्षमता भी दी हो। हमारे पास एक जिह्वा थी, जिसकी चमत्कारी रचना उन स्वादों से सम्बद्ध थी, जो वृक्षों के फलों में विद्यमान थे। ऐसा लगता है कि जिस सत्ता के कारण स्वादों का निर्माण हुआ, उसी सत्ता ने इन स्वादों की स्पष्ट अनुभूति के लिए यह रसनेन्द्रिय बनायी हो। यही अवस्था हमारे घ्राणेन्द्रिय की थी। इस इन्द्रिय की सार्थकता के लिए गुलाबादि में सुगन्ध और अनेक पदार्थों में दुर्गन्ध अभिव्यक्त हुई। माता के जिस गर्भ में अन्धकार ही अन्धकार था, उसमें बैठा हुआ कोई कुशल तत्त्वदर्शी इन इन्द्रियों का निर्माण कर रहा था, और स्पष्ट है कि उस कलाकार को बाहर के जगत् का पूर्ण या पर्याप्त परिचय प्राप्त था। क्यों न हम यह कहें, कि जिसने बाहर के जगत् में हमारे अवतरण से पूर्व विविध संवेदनाओं को झंकृत करने की सामर्थ्य रखने वाली भावपूर्ण सृष्टि का निर्माण किया हो, उसी कुशली ने इन संवेदनाओं को अभिव्यक्त करने वाली हमारी इन्द्रियों को भी जन्म दिया।

विज्ञान का मूलबिन्दु हम स्वयं हैं। न जाने किसके अनुग्रह से हम ज्ञाता बन गए, और समस्त सृष्टि ज्ञेय बन गयी। जिसके ज्ञानेन्द्रियां हैं, वह पशु है—जो देखे सो पशु है—पशुः पश्यते : (निरुक्त, ३।१६); यदपश्यत् तस्मादेते पशवस्तेष्वेतमपश्यत् तस्माद्धेवैते पशवः (शत० ६।२।१।४); पश् धातु का अर्थ देखना है, अतः जो देखे सो पशु। समस्त ज्ञानेन्द्रियां हमें दिखाती हैं अर्थात् बताती हैं कि कौन चीज कैसी है और कहां है। समस्त इन्द्रियों के सन्निकर्ष से उत्पन्न ज्ञान का नाम प्रत्यक्ष है। आंख तो इन इन्द्रियों में सबसे प्रधान है। अतः सभी पशु अपनी ज्ञानेन्द्रियों से काम लेते है, इस अर्थ में वे सब ज्ञाता हैं, और उनके लिए भी यह जगत् कुछ अर्थों में ज्ञेय है।

किन्तु यह स्मरण रखना चाहिए कि मनुष्य को ही—केवल मनुष्य को—यह गौरव प्राप्त है कि उसका ज्ञान "ज्ञान, तत्वज्ञान या विज्ञान" कहलावे, और एकमात्र मनुष्य ही "ज्ञानी, तत्त्वदर्शी और वैज्ञानिक" कहला सकता है। मनुष्य जाति के सभी मनुष्य ज्ञानेन्द्रियों का सम्यक् प्रयोग करते हुए भी ज्ञानी या वैज्ञानिक नहीं हैं—लाखों में दो-चार ही व्यक्ति कठिनता से ऐसे निकलेंगे जिन्हें हम यथार्थता से वैज्ञानिक कह सकते हैं। ज्ञानेन्द्रियों की सहायता से कुछ अनुभूतियों या संवेदनाओं को प्राप्त कर लेना ही ज्ञान नहीं है, ज्ञान में एक सम्यक् दृष्टि होती है, समन्वयात्मक, ऊहापोह से परिपुष्ट, कृति के भीतर छिपी हुई कला को कलाकार तक प्रेरित करने वाली। ऐसी ही दृष्टि मनुष्य को वास्तविक अर्थ में द्रष्टा या तत्त्वदर्शी बनाती है। कला की जो विवेचना विवेचक को कलाकार तक न पहुंचा सके, वह अधूरी या एकांगी है। इसी प्रकार सृष्टि का जो विवेचन या अध्ययन सृष्टिकर्त्ता तक हमको न पहुंचा सके वह भी एकांगी है। ऋषि, दार्शनिक, वैज्ञानिक या तत्त्ववेत्ता वस्तुतः वही है जो सृष्टि के सौन्दर्य से, उसके भीतर छिपी गम्भीर कला से परिचित होने का प्रयास करे और कला के निमित्त-कारण,—परम-कलाकार या सृष्टि-रचयिता—से हमारा परिचय करावे। जिस सृष्टि में हम रहते हैं वह प्रत्येक विमा या आयाम (dimension) में महीयसी है, सृष्टि से भी महीयसी वह कला है जो सृष्टि की नियामिका है, और इस कला से भी अधिक महान् वह कलाकार है जिसने प्रकृति के उपादानत्व पर इस महायसी रचना की अभिव्यक्ति की है। वैज्ञानिक की आस्था ऐसी ही आस्तिकता में है। पूर्व के समस्त ऋषि और आज के भी वैज्ञानिक इसी आस्था का सहारा लेकर नये-नये रहस्यों का उद्घाटन करते आ रहे हैं।

वैज्ञानिक आस्तिकता ही आस्तिकता है, शेष आस्तिकतायें अन्धविश्वास हैं।—हमने अभी कहा कि प्रकृति की उपादानता पर सृष्टि-रचयिता की कला का अध्ययन करने वाला व्यक्ति वैज्ञानिक है। सीमित क्षेत्र में यह वैज्ञानिक साधारण जिज्ञासु की संज्ञा प्राप्त करता है। उसके लिए सृष्टि ज्ञेय है ; यह सत् है। इसी भावना से प्रेरित होकर वह जिज्ञासा के क्षेत्र में अवतरित होता है। उसकी परम आस्था है कि सृष्टि

में क्रम है, सम्बद्धता है, सृष्टि रचना में अभिप्राय भी है और प्रयोजन भी। सृष्टि उन नियमों से सञ्चालित होती है, जिनमें देश और काल का बाध नहीं है। वैज्ञानिक अपनी समस्त सीमाओं, और निर्बलताओं को लेकर सृष्टि का अध्ययन आरम्भ करता है, सृष्टि भी वैज्ञानिक की तपस्या और आस्था पर विभोर होकर धीरे-धीरे अपने समस्त गुह्य रहस्य वैज्ञानिक के समक्ष अभिव्यक्त करने लग जाती है, हिरण्यमय पात्र से ढका हुआ सत्य नग्न रूप में वैज्ञानिक के प्रति अनावृत होने लगता है। ऋषियों ने भी तपस्या, सत्य, श्रद्धा और दीक्षा द्वारा इन रहस्यों का साक्षात्कार किया। वे आदि वैज्ञानिक थे और उनकी परम्परा में आज के वैज्ञानिक भी सृष्टि सम्बन्धी जिज्ञासाओं के समाधान में लगे हुए हैं। इस शृंखला का अन्तिम छोर कभी नहीं मिलेगा—सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म। ब्रह्म सत्यस्वरूप है, जो सत्य है वही ज्ञान है, वही विज्ञान है, और यह ज्ञान अनन्त है, असीम है, और सृष्टि का आदि कारण प्रभु इसी अर्थ में अनन्त है, और ब्रह्म है। जो सृष्टि है, वही ब्रह्माण्ड है, और ब्रह्माण्ड से कहीं बड़ा ब्रह्म है। प्रभु के असीम, अनन्त और ब्रह्म (या वृहत्) होने का अनुमान करना हो, तो विज्ञान की उपलब्धियों को देखिए। विज्ञान ने ज्ञानोपार्जन के अनेक युगों में जो कुछ थोड़ी सी उपलब्धियां प्राप्त की हैं (अणु और महान् दोनों की दिशाओं में), वे प्रभु-रचना के विराट् भाव का कुछ ही आभास कराती हैं। कितनी दूर तक हमने आंखों से देखा, आंखों से भी अधिक दूर हमने दूरबीनों से देखा, दूरबीनों की विमाओं से भी अधिक दूर हमने अपने अत्याधुनिक यन्त्रों से देखा, सब जगह एक से ही नियमों पर आधारित प्रभु की कला को पाया, और प्रभु के असीम और अनन्त होने की छोटी सी झांकी हमने ली। वैज्ञानिक जिन जिन क्षेत्रों में आगे बढ़ता गया, वहां उसने प्रभु के सत्य-समीचीन नियमों और प्रयोजनों को पहले से ही विद्यमान पाया। सूक्ष्मता के क्षेत्र में भी कपिल और कणाद से लेकर आज तक के वैज्ञानिक ने जो कुछ पता लगाया है, वह भी उतना ही विस्मयकारक है, जितना कि बृहद् परिमाण के जगत् के संबंध में। किसी युग में कहा जाता था कि "जहां न जाय रवि. वहां जाय कवि," पर कवि की कल्पनाओं के भी पार आज का क्रान्तदर्शी तत्वदर्शी वैज्ञानिक पहुंच गया है।

विज्ञान की ये उपलब्धियां यदि किसी को प्रभु का साक्षात् नहीं करा सकतीं, तो ऐसे नादान व्यक्तियों को मनुष्य की रची मूर्तियों और चित्रकारों के चित्र कैसे दर्शन करायेंगे, और न उनकी किसी तर्क से संतुष्टि होगी।

अंकुरण, विकास, उत्सर्ग और लय इन चार की शृंखलाओं का नाम ही तो सृष्टि है। इसी अर्थ में सृष्टि गतिशील या परिवर्तनशील है—पैदा हुई, बढ़ी, और फिर नष्ट हुई (initiation, growth and decay), यह प्रतिक्षण की घटना है, और चेतन जगत् में प्रतिकण की, अर्थात् सृष्टि का प्रत्येक कण प्रतिक्षण परिवर्तनशील; अस्थिर या गतिमान है। सृष्टि के प्रवाह में ये तीन चरण हैं, तीनों का परस्पर संबंध है। बीज बोया गया, कुछ उसमें से नष्ट हुआ, कुछ उसमें से निकला और बढ़ा, और यही बीजांकुरण

से लेकर विशाल वृक्ष तक के जीवन का इतिहास है। अन्त में यह विशाल वृक्ष भी कारणभाव में आकर विलुप्त हो गया।

संसार परिवर्तनशील है, इसकी उत्पत्ति होती है, फिर विकास और फिर विनाश, और इसीलिए यह ज्ञेय है, यह वैज्ञानिक की आस्था है। वैज्ञानिक इन परिवर्तनों का ही अध्ययन करता है, चाहे वह रसायनज्ञ हो, या भौतिकी-विद्, चाहे वह प्राणिशास्त्री हो, और चाहे ज्योतिर्विद। वह ऐसी नियामक सत्ता में विश्वास करता है, जो समस्त परिवर्तनों को एक सूत्र में बांधती है—"सूत्रं सूत्रस्य यो विद्यात् स विद्यात् ब्राह्मणं महत्" (अथर्व० १०।८।३७)। वह सृष्टिरचना को भी प्यार करता है और उसका यह प्यार आकस्मिक नहीं है, भावुकता से भी उत्पन्न नहीं। यह प्यार उसके निरन्तर अध्ययन का परिणाम है। यही उसकी आस्तिकता है।

संसार परिवर्तनशील है, इसीलिए उसकी अनुभूति हो सकती है। जिसमें किसी प्रकार का परिवर्तन न हो, वह इन्द्रियों की अनुभूति से परे है। हम देखते या सुनते ही तब है, जब अणु या कण में से ऊर्जा का विसर्जन होता है, और यह विर्सजन तब ही होगा, जब परिवर्तन होगा।

वैज्ञानिक की आस्था इन्द्र में भी है, इन्द्रिय में भी, और इन्द्रियजन्य ज्ञान में भी। इन्द्रियजन्य ज्ञान का आधार परिवर्तन है। वैज्ञानिक के लिए परिवर्तनों की परम्पराओं से सम्बद्ध जगत् भी एक परम-सत्य है, ये परिवर्तन परमात्मा की परम चेतना से ही अनुप्राणित होते हैं। इस प्रेरणा की ओर ही छोटा सा संकेत 'केन उपनिषद्" में प्रश्नों की सुन्दर शृंखला में घोषित किया गया है—'केनेषितं पंतति प्रेषितं मनः केन प्राणः प्रथमः प्रैति युक्तः" पुराने ऋषियों की आस्तिकता भी "जगत्यां जगत्" के अध्ययन पर अवलम्बित थी।

अद्वैतवादियों या नवीन वेदान्तियों का यह तर्क है कि जो परिवर्तनशील है, वह मिथ्या है, तुच्छ है, हेय है। वैदिक तत्त्वज्ञान की यह आस्था नहीं है। यह सृष्टिरचना अध्यास, या स्वप्न नहीं है, यह यथार्थ सत्य है, इसका प्रयोजन है, प्रभु द्वारा प्रदत्त ये इन्द्रियां भ्रमोन्मूलक नहीं हैं, इनके द्वारा भी तत्त्वज्ञान प्राप्त करना है, और यह तत्त्वज्ञान आस्तिकता से परिपुष्ट होने पर हमें बन्धन से मुक्ति दिलाने में सहायक और श्रेष्ठ कारण बनेगा। वेद का समस्त ज्ञान "इहलोक" में रहने वाले बुद्धि प्राणि के लिए ही है, और अन्ततोगत्वा मानव-शरीर का यह बन्धन ही परम पद का प्राप्ति और मुक्ति में सहायक बनेगा। वैज्ञानिक भी अपने-अपने क्षेत्र में प्रभु के इस रहस्यमय ज्ञान को समझने का छोटा सा प्रयास कर रहा है।

वैज्ञानिक इस सृष्टि को व्यवहारलोक और परमार्थलोक—इन दो वर्गों में विभाजित नहीं करता है। ज्ञान-विज्ञान का कितना भी विकास क्यों न हो, वह ज्ञाता और ज्ञेय के सापेक्ष्य से ऊपर नहीं उठ सकता। यह सापेक्षता "ज्ञेय" के अभाव को सिद्ध नहीं करती—यह ज्ञाता, ज्ञेय और एक तीसरी सत्ता जिसने ज्ञाता को ज्ञान के परिमित

साधन दिए हैं—इन तीनों के सत्य अस्तित्व पर निर्भर है। समस्त वैज्ञानिक और इसी प्रकार प्राचीन-अर्वाचीन सभी ऋषि कितने बड़े ज्ञानी क्यों न हों, पूर्णता के सापेक्ष में छोटा सा ही (अपूर्ण और परिमित) व्यक्तित्व रखते हैं – इन्हीं की शास्त्र में आत्मा या जीव संज्ञा है। प्रकृति के उपादानत्व पर परमस्रष्टा प्रभु की अभिव्यक्त अनन्त एवं अपरिमित कला का नाम ही सृष्टि है, और प्रभु ही वह परम सत्ता है, जिसने जीव ऐसी लघु चेतनता को ज्ञान के इन्द्रियादि साधन (इन्द्रियों पर निर्भर प्रत्यक्षादि प्रमाण और अन्त.करण की परिमित अनुभूतियां) प्रदान किये हैं। जीव अपनी अल्प चेतना और परिमित साधनों से देश और काल की परिमित सीमाओं के भीतर ब्रह्म के अपरिमित ज्ञान का अति अल्पांश ही प्राप्त कर सकता है। प्रभु (परमात्म तत्त्व) के तारतभ्य में जीव की पूर्णता का कोई भी अर्थ नहीं है चाहे वह समाधि अवस्था में हो अथवा चाहे शरीर के बन्धन से मुक्त होकर वह अल्पकालीन मोक्ष या मुक्ति ही क्यों न प्राप्त कर लें। न तो पुराने ऋषियों को पूर्ण-पुरुष होने का अभिमान था, और न आज के वैज्ञानिक को।

आज के वैज्ञानिक और तत्त्वदर्शी पूर्व-ऋषियों में बड़ी समानता है – (१) दोनों का सदा यह विश्वास रहा है, कि संसार में जिस तत्त्व की मीमांसा करनी है या जिज्ञासा करनी है, वह तत्त्व "सत्य" है। (२) सत्य और केवल सत्य की उपलब्धि ही ज्ञान का ध्येय है। (३) सत्य सर्वकालीन और सर्वदेशीय तत्त्व है। (४) सत्य की जिज्ञासा और इसके सम्बन्ध में ऊहापोह की शृंखला मनुष्य की कोटि के व्यक्तियों के लिए एक परम वरदान है (मनुष्येतर पशुओं के लिए ऐसा हम नहीं कह सकते)। (५) मनुष्य को ऐसे साधन प्राप्त हैं, जिनसे अपनी कुछ सीमाओं के भीतर वे इस सत्य की उपलब्धि कर सकते हैं। (६) समस्त सृष्टि ऋत या सतत सत्य के द्वारा आबद्ध है, सत्य द्वारा ही यह प्रतिभासित है, इस सत्य में देश-काल, ज्ञाता और ज्ञान साधनों की अपेक्षा से एकरूपता है, अतः ज्ञान में अपवाद नहीं हैं। जो अपवाद प्रतीत होते हैं, वे हमारे अपर्याप्त और परिमित प्रयासों के कारण हैं, (७) सत्य का अनुशीलन आत्म-सन्तोष के लिए परम आवश्यक है, और जीवन का लक्ष्य ही इस आत्म-संतुष्टि की प्राप्ति है—ज्ञानोपार्जन के प्रयासों का अन्तिम लक्ष्य ज्ञान की उपलब्धि ही है, इस उपलब्धि में ही परम सन्तुष्टि है, अथवा दूसरे शब्दों में ज्ञानान् मुक्ति :, यह ज्ञानोपलब्धि ही मुक्ति या मोक्ष का साधन है। ज्ञान, ज्ञान के निमित्त, (Knowledge for the sake of knowledge)। ऋषि या वैज्ञानिक के हाथ में छोटा सा भी तथ्य प्राप्त हो गया, तो वह प्रसन्न हो उठता है। (८) सत्य की प्राप्ति ही ज्ञान का परमप्रयोजन है। किन्तु इतना ही नहीं। यह तत्व-ज्ञान व्यक्ति और समाज दोनों के लिए समान हितकर है यदि विवेकपूर्वक इस ज्ञान का उपयोग किया जाय।

इन्हीं आस्तिक आस्थाओं से प्रेरित होकर पुराने ऋषियों ने वेदांगों और

उपांगों का विकास किया और इन्हीं आस्थाओं से प्रेरित होकर आजकल के वैज्ञानिक पिछली चार शतियों से ज्ञानोपलब्धि के नित्यनूतन प्रयासों में लगे हुए हैं।

विज्ञान क्या है ?—उपनिषदों में विज्ञान शब्द का प्रयोग अध्यात्म क्षेत्र के ज्ञान के संबंध में सीमित था। पराविद्या ही विज्ञान है, जिससे अक्षर और अविनाशी ब्रह्म का ज्ञान हो। यूनान के तत्त्वदर्शी भी फिज़िक्स और मेटाफिज़िक्स में भेद जानते थे—इन्द्रिय-अनुभूत ज्ञान फिज़िक्स (भौतिकी) है, इन्द्रियातीत क्षेत्रों का ज्ञान परामौतिकी या मेटाफिज़िक्स है। इहलोक का ज्ञान निम्नक्षेत्र का और परलोक का ज्ञान उच्च कोटि का माना जाता रहा है। इतिहास के इस परिप्रेक्ष्य में ही आधुनिक विज्ञान का अविर्भाव हुआ। विज्ञान के मनीषियों ने स्थूल जगत् के अध्ययन में रुचि दिखायी। धीरे धीरे स्थूलजगत् के तथ्यों से ज्यों ज्यों वे परिचित होते गए, उन्हें उस की पृष्ठभूमि में सूक्ष्मतत्त्वों से भी थोड़ा सा परिचय प्राप्त होने लगा—वैज्ञानिकों के चरण स्थूलजगत् से अल्पस्थूलता की ओर, और फिर अल्पस्थूलता से सूक्ष्मता की ओर बढ़ते गए। आज तो वैज्ञानिकों का क्षेत्र सूक्ष्मता की ओर इतना बढ़ गया है, जिसकी कल्पना पुराने समय के सूक्ष्मतत्त्वदर्शियों को भी न थी। एक उदाहरण लीजिए—प्रारम्भिक वैज्ञानिक का आंखों से दीखने वाला प्रत्यक्ष लाल और कासनी (या बैंगनी) रंगों की तरंगों के बीच में ही सीमित था। हमारी आंख आज भी वही है। नेत्रेन्द्रिय आज भी उतना ही देखती है, जितना पहले के ऋषियों की नेत्रेन्द्रियां देखती थीं। किन्तु हमारी दृष्टि का स्पेक्ट्रम लाल से भी कहीं ऊपर और बैंगनी रंगों की तरंगों से भी कहीं नीचे पहुँच गया है। एक्स किरणों से लेकर बेतार के तार की दीर्घ तरंगों तक, और वहां से भी आगे की तरंगों का हम प्रतिदिन के क्रियाकलापों में व्यवहार करते हैं। यही अवस्था श्रोत्रेन्द्रिय के ध्वनि-प्रत्यक्ष की है। आज हमें ऐसी ध्वनियों से परिचय है, जिन्हें हम अपने कानों से नहीं सुन सकते। आज हम इन ध्वनियों का उपयोग अपने प्रयोगों में उतनी ही यथार्थता से कर रहे हैं, जितनी यथार्थता से वीणा या सितार के स्वरों का प्रयोग। आज मनुष्य अपने ज्ञान की सीमा को प्रत्येक आयाम या विमा में दूर दूर तक प्रशस्त करने में समर्थ हो गया है। आंखों से दीखना, कानों से सुनना, और जिह्वा से चखना—यह तो इन्द्रियों की स्थूलता है। आधुनिक वैज्ञानिक के उपकरण अतिसूक्ष्म यथार्थता तक विस्तृत जगत् से हमें परिचय करा रहे हैं।

समय के परिमाप में भी हमारी सूक्ष्मता बहुत आगे बढ़ गयी है। अब हम एक सेकंड के समय को तो बहुत स्थूलमाप मानते हैं। वैज्ञानिकों ने एक सैकंड के करोड़वें भाग जैसे अल्पकाल को भी यथार्थता से नापना सीख लिया है और उन्होंने द्रव्य के ऐसे लघुकणों का भी पता लगाया है जिनका जीवन काल $१०^{-२०}$ से $१०^{-३०}$ सैकंड की माप के बीच का है (अर्थात् एक सैकंड का भागांश जिस पर १० के अंक पर २० से ३० बिन्दु तक होवें। दूसरे शब्दों में एक बटे १०००००००००...००० इस प्रकार के बीस या तीस शून्य)।

ये परिमापें वृहद् परिमाण की दिशा में भीं इसी प्रकार फैली हुई हैं, धरती पर बैठे हुए आधुनिक ज्योतिषी ने इतने दूर पर स्थित नक्षत्रों और ज्योतिर्पिण्डों का परिचय प्राप्त किया है, जिनसे चला हुआ प्रकाश हमारे पास बीसियों वर्षों में आ पाता है। हिसाब तो लगाइये कि ये पिण्ड कितनी दूर होंगे—एक सैकंड में प्रकाश १ लाख ८६ हजार मील चलता है, तो बीस वर्ष में कितनी दूर चल पावेगा। इतने मीलों की दूरी की गणना करना कौतूहल की हो तो बात है। हम अपनी धरती की आयु दो-चार अरब वर्ष मानते हैं, पर सृष्टि के अनेक पिण्डों की आयु के सामने यह आयु बहुत छोटी सी है। इतना है विस्तार प्रभु की इस सृष्टि का—ब्रह्माण्ड का। इस विस्तार का प्रत्यक्ष आज के वैज्ञानिक ने अपने इन्द्रिय-गम्य साधनों द्वारा कर डाला है। वस्तुतः जो लोक आज इन्द्रियातीत है, वह तो इससे भी अधिक विशाल और इससे भी अधिक सूक्ष्म है। अणु और महान् के इस विस्तार के अध्ययन के अनन्तर आज के वैज्ञानिक में एक अद्भुत विनम्रता का प्रादुर्भाव हुआ है। उसे आज यह अनुभव हो गया है कि सृष्टि का विस्तार प्रत्येक विमाओं में इतना असीम, अज्ञेय, और अपार है, कि मनुष्य उस सीमा को कभी पार न कर पावेगा। जो कुछ हम जान सकेंगे वह, जो जान लेने के लिए शेष रहा जायगा, उसकी अपेक्षा, अति-अल्प होगा। कितना सूक्ष्म हम जान सकते हैं, उसकी ही कोई सीमा नहीं, और फिर भी कितना जानने को बच रहेगा उसकी तो कल्पना करना ही कठिन है।

विज्ञान के चरण दोनों लोकों में तीव्रता से आगे बढ़ रहे हैं—अणु की ओर (अति-सूक्ष्मता की ओर) भी, और महान् की ओर (अति स्थूलता की ओर, भी अनन्त की ओर भी और शून्य की ओर भी (micro-world and macro-world, the world of infinitesimality and the world of infinity)—वैज्ञानिक के लिए इस अनन्त और शून्यता का आभास ही प्रभु का प्रत्यक्षीकरण है। ज्ञान के इन दोनों छोरों पर वैज्ञानिक ने ऋत और सत्य के दर्शन किए हैं, और यह सृष्टि रहस्य-मयी तो है ही, यह कभी कहीं भी प्रयोजन-हीन नहीं है, और न असम्बद्ध। ऋत, सत्य, प्रयोजन-परायणता और दिक्-काल दोनों विमाओं में सम्बद्धता—यह वैज्ञानिक की परम-आस्तिकता है। जो सत्ता इन चारों को एक सूत्र में ग्रथित करती है, उसी का नाम हमारे मनीषियों ने ब्रह्म रक्खा है। इसी सत्ता के वैदिक नाम इन्द्र, मित्र, वरुण, बृहस्पति, प्रजापति आदि हैं, और यही सत्ता उप[illegible]
और वेदान्त के युगों में ब्रह्म के नाम से प्रख्यात हुई। वैज्ञानिकों की दृष्टि में य[illegible]वती
जिसका आधार सत्य, ऋत, प्रयोजन और सम्बन्ध-समवाय है, रहस्यमयी [illegible] है—
के योग्य है, किन्तु अस्तित्वहीन, मिथ्या, अध्यास या स्वप्न नहीं है, [illegible]स्था सदा
इन चारों ऋत, सत्य, प्रयोजन और समवाय पर शासन करती है, वह और पाठ को
न कि कल्पना या केवलमात्र निर्बलता की द्योतक आस्था।

गोचर जगत् और इन्द्रियातीत जगत् का सम्बन्ध—प्रभु के अस्तित्व को

सृष्टि का वह अंश जिसकी प्रतीति इन्द्रियों से होती है) [illegible]

पृष्ठभूमि में इन्द्रियातीत जगत् का बृहत् विस्तार है। ये दोनों जगत् असम्बद्ध नहीं हैं। गोचर जगत् के साथ इन्द्रियातीत जगत् की प्रतिक्रिया होती है, और यह प्रतिक्रिया ही इन्द्रियातीत जगत् की प्रतीति कराती हैं। उदाहरण के लिए एक्स-किरणें आंखों से नहीं दिखलायी देतीं (परावैंगनी या अल्ट्रावायलेट किरणें भी आंखों से नहीं दिखायी पड़तीं), किन्तु जब यह फ्लोरेसेण्ट-पर्दों पर पड़ती हैं, तो जो प्रतिदीप्ति या फ्लोरेसन्स उत्पन्न होती है, वह इन्द्रिय-गम्य या गोचर है। इस फ्लोरेसेन्स को देख कर ही हम इन्द्रियातीत एक्स किरण की प्रतीति करते हैं। इसी प्रकार बिजली की धारा स्वतः इन्द्रियातीत हैं, पर जब इससे प्रेरित होकर बिजली की घंटी बजती या बिजली का बल्ब जलने लगता है, तो हमको बिजली की धारा की प्रतीति हो जाती है। हवा स्वयं दिखायी नहीं पड़ती, किन्तु इसकी प्रेरणा से पेड़ की जब पत्तियां हिलती हैं, तो इससे हवा की गति की प्रतीति होती है।

साधारण भाषा में मनोमय कोश और प्राणमय कोश दोनों इन्द्रियातीत हैं, पर मनोमय कोश की प्रेरणा पर प्राणमय कोश में गति उत्पन्न होने लगती है, और उससे झंकृत होकर होठों में स्पन्दन होता और कण्ठ से स्वर निकलने लगता है, आंख की पुतली चलने लगती है, अथवा आदमी टाइप की मशीन पर टाइप करने लगता है, तो कौन कह सकता है कि मनोमय कोश और प्राणमय कोश कोरी कल्पना है—इन प्रतिक्रियायों, प्रतिस्पन्दनों, और प्रतिभासों के द्वारा हम इन्द्रियातीत जगत् का मानो 'प्रत्यक्ष" ही करने लगते हैं। इन प्रतिक्रियायों के पूर्व जो परोक्ष था वह अब यथार्थतः प्रत्यक्ष होने लगता है। विज्ञान इसी प्रकार के प्रतिभासित प्रत्यक्ष प्रयोगों द्वारा परोक्ष जगत् के रहस्यों का उद्‌घाटन करता है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि विज्ञान का क्षेत्र परोक्ष और प्रत्यक्ष दोनों जगतों के रहस्यों का अध्ययन करना है। किन्तु यह स्मरण रखना चाहिए कि परोक्ष जगत् असीम और अनन्त है, अतः इसके संबंध में कितना भी ज्ञान क्यों न उपलब्ध हो, वह सदा अपूर्ण रहेगा। यह भी स्मरण रखना चाहिए कि परोक्षजगत् की कुछ प्रतिक्रियायें इतनी सूक्ष्म भी होंगी, जिनको हमारे यन्त्र पकड़ न पावेंगे, और इस कारण भी हमारा ज्ञान अधूरा रहेगा।

और यह भी स्मरण रखना चाहिए कि प्रत्यक्षजगत् से अधिक मूल्यवान् परोक्ष-[illegible]गत का अध्ययन है। वैज्ञानिक की यह परम आस्था है, कि ज्यों ज्यों हमारा परिचय [illegible]गत् से बढ़ता जायगा, नये-नये चमत्कार हमारे हाथ में आते जावेंगें, और [illegible]य से मानव समुदाय का हित ही होगा, अहित नहीं, यदि आस्तिक भावना [illegible] किया जाय। आसुरी भावना से किए गए प्रयोग व्यक्ति और समाज [illegible]क हो सकते हैं : प्रथम यूरोपीय महायुद्ध में मनुष्य ने रासायनिक [illegible]याक्त रोगाणुओं का परिचय प्राप्त किया। उस समय भी वैज्ञा-[illegible] रही थी। पिछले महायुद्ध की समाप्ति तक जब परमाणु [illegible] तब भी वैज्ञानिक-समुदाय को इसी प्रकार की आशंका

हुई और मूर्धन्य वैज्ञानिकों के एक बड़े समुदाय ने अपने को संघटित किया, और इस बात की सावधानी रखने का आग्रह किया कि इस नवीनतम ज्ञान का उपयोग विवेक-पूर्वक शान्तिमय उपलब्धियों के लिए ही किया जाय।

ऐसा ही एक अतीत जगत् है जिसका सम्बन्ध जीवन से है। जीवन का मूल क्या है, एवं किन जीवरासायनिक शृंखलाओं में होकर चेतनता की अभिव्यक्ति होती है, यह जानना भी आज के अनुशीलनों का महत्वपूर्ण क्षेत्र बन गया है। क्रोमोसोम (chromosome), जीन्स (genes), डी० एन० ए० (DNA), आर० एन० ए० (R.N.A), प्रोटीनों के संघटन, बैक्टीरिया और सूक्ष्म चेतनताओं की रचनाओं की ओर अध्ययन तीव्रता से बढ़ रहा है। इस क्षेत्रों में जो उपलब्धियां हमें प्राप्त होंगी, उनका महत्व पूर्व-वर्णित उपलब्धियों से भी अधिक होगा। ज्ञान के इस विस्तार से मनुष्य का कल्याण भी होगा, और हो सकता है कि कुछ भयंकर दुष्परिणाम भी हमें प्राप्त हों, यदि हम इन उपलब्धियों का शुभ, भद्र और शिवतर क्षेत्रों में उपयोग न कर सकें। देवताओं और दानवों के बीच में थोड़ा सा ही अन्तर मूलतः होता है, जरा सी भूल या अज्ञानता एवं असावधानी से हम देवता के स्थान में दानव को जन्म दे सकते हैं। ज्ञान स्वतः में तो ज्ञान ही है—उसका परिणाम तो उस विवेक पर निर्भर रहेगा, जो मनुष्य को आस्तिक परमसत्ता से ही प्राप्त हुआ है। विवेक से मशीनें (जैसे भीमकाय कम्प्यूटर) तैयार की जा सकती हैं, पर मशीनों (या कम्प्यूटरों) से विवेक तैयार नहीं किया जा सकेगा। कम्प्यूटर बड़े बड़े काम कर सकेगा, पर इन कम्प्यूटरों का निर्माता तो सदा ही ऐसा विवेकवान् मस्तिष्क रहेगा, जो परम-सत्ता द्वारा ही प्राप्त हो सकेगा। इस परम-सत्ता में वैज्ञानिक की परम आस्था है। मस्तिष्क से सभी वैज्ञानिक काम लेते हैं, किन्तु ये मस्तिष्क किसने इतनी सरलता से बना कर मनुष्य को दिए हैं, यह एक बड़ा प्रश्न चिह्न है। जिसने हमें दिये हैं, उसकी परम सत्ता को हम किस प्रकार अस्वीकार कर सकते हैं? मानव के इस मस्तिष्क की वैज्ञानिक कभी उपेक्षा न कर सकेगा। जो भी काम लेगा, इसी मस्तिष्क से, और इस मस्तिष्क के मूल निर्माता के प्रति उसकी विनम्रता के भाव सदा रहेंगे। हमारे सभी कृत्रिम कम्प्यूटर इन मस्तिष्कों से ही निर्मित होंगे, और इन्हीं के आदेश से काम करेंगे।

इन मस्तिष्कों के भीतर जहां ज्ञान के संग्रह के सम्भाव्य साधन हैं, वहीं उसके साथ एक छोटी सी क्षमता और है, जिसे हम "बुद्धि" कहते हैं—सद्-असद्-विवेकवती बुद्धि। यह दिव्य क्षमता है, जिसमें ज्ञान के साथ साथ शिव-संकल्प की भावना है—इसके प्रति वैज्ञानिकों और ऋषि-मनीषियों की सात्त्विक और आस्तिक आस्था सदा से रही है। आश्चर्य नहीं कि इसीलिए "धियो यो नः प्रचोदयात्" के जप और पाठ को भारतीय मानव ने इतना महत्व प्रदान किया।

नास्तिकता के पक्ष में तर्क—सृष्टिकर्त्ता जगन्नियन्ता प्रभु के अस्तित्व को अस्वीकार करने के लिए हमारे पास कतिपय तर्क हैं—

(१) इन्द्रियातीत जो है, उसके अस्तित्व में विश्वास करना तर्क-हीन है।

(२) सर्वज्ञ सर्वव्यापक सर्व शक्तिमान् प्रभु मनुष्य की कल्पना मात्र है, इन गुणों से सम्पन्न सच्चिदानन्द सत्ता के अस्तित्व में प्रमाण का अभाव होने से इस प्रकार के व्यक्तित्व का कोई पुरुष नहीं है ?

(३) जो कुछ है सो क्षणभंगुर है, परिवर्तन शील है, अतः असत् है, ऐसे ब्रह्माण्ड में अविनाशी, अक्षर, परिवर्तनों से मुक्त व्यक्तित्व के होने का प्रमाण ही क्या !

(४) ब्रह्माण्ड या इस समस्त सृष्टि में जो कुछ भी हो रहा है, वह स्वभाव से स्वयं हो रहा है, उसके संबंध में रचना, विकास और विनाश तीनों के लिए किसी अलग चेतन सत्ता के निमित्त कारण होने की आवश्यकता नहीं। जड़ प्रकृति में ही उत्पत्ति और सृष्टि की क्षमता व्याप्त है।

(५) जड़ का ही रूपान्तर चेतनता है—जड़ से भिन्न चेतनता का न तो अस्तित्व है और न उसकी आवश्यकता।

(६) यह हमारी कल्पना है कि सृष्टि रचना में कोई प्रयोजनशीलता है, और सृष्टि का अभीष्ट कल्याण है ("संहत् परार्थत्वात्")। गम्भीरता से देखा जाए तो सृष्टि में प्रयोजन हीन मूर्खतायें अधिक हैं, असम्बद्ध घटनायें भी प्रचुर हैं और यह रचना सुव्यवस्था का केवल भोंडा प्रतीक है। अगर इसका कोई रचयिता हो भी, तो वह अज्ञ और नौसिखिये कारीगर के समान है जो नये नये प्रयोग करता जा रहा हो।

(७) विकास की शृंखलाओं से जड़ और चेतन दोनों प्रकार के जगतों की उत्पत्ति का क्रम समझा जा सकता है—ऐसा होने पर ईश्वर की कल्पना करना सर्वथा अनावश्यक है।

(८) यह संसार दुःख, रोग, जरा, मृत्यु और भयंकर पीड़ाओं का स्थान है, तो कैसे विश्वास हो कि इसका नियन्ता आनन्द-स्वरूप और सुखों का देने वाला है।

लगभग इसी प्रकार के प्रश्न आज से नहीं, मानव-चेतना के समस्त इतिहास में बराबर उठाये जाते रहे हैं, और सम्भवतया आगे भी उठते रहेंगे। कदाचित् इन प्रश्नों का कभी पूर्ण समाधान (जिससे सब सन्तुष्ट हो जाएं) हो भी न पावेगा। सृष्टि रचयिता पुरुष के अस्तित्व में आस्तिक आस्था रखने वालों के जितने वर्ग हैं उससे अधिक वर्ग उन विचारकों के हैं, जो ईश्वर के अस्तित्व में विश्वास नहीं रखते, और सृष्टि की समस्त सम्भवनीय प्रहेलिकाओं का उत्तर ईश्वर को निमित्त कारण माने बिना करने का प्रयास करते हैं। नास्तिकों के विभिन्न प्रयासों के फलस्वरूप भी आज तक दृश्यमान् जगत् की प्रहेलिकाओं का सन्तोषप्रद कोई समाधान नहीं दिया जा सका है, आगे भी कोई सम्भावना ऐसे समाधान मिलने की प्रतीत नहीं होती है, जिससे सभी नास्तिकों को परम सन्तोष हो जाए। यह स्मरण रखना चाहिए कि आस्तिकों के दिए गए उत्तरों से भी अधिक भ्रान्तिपूर्ण, क्लिष्ट और असम्भवनीय

उत्तर उनके हैं, जो नास्तिकता के आधार पर गुह्य प्रश्नों की व्याख्या करने का प्रयास करते रहे हैं। बहुधा वे ऐसी अटकलें हैं, जो अपने को भी सन्तोष नहीं देती हैं। जड़ चेतन के बीच में भेदक रेखा खींचना सदा सरल नहीं होता; यह स्थिति तब और विकट हो जाती है जब यह जड़ पदार्थ अपने से अधिक चेतन पदार्थ से उद्दीप्त या प्रेरित होता है। लेखक के हाथ में आते ही लेखनी चेतन के समान अनुप्राणित होने लगती है। लेखनी ने हाथ से चेतना पायी, हाथ ने यह चेतना मांसलपेशियों से पायी, मांसलपेशियों का हाथ से जिस चेतना द्वारा सम्बन्ध हुआ वह मस्तिष्क में थी, और मस्तिष्क को चेतना मिली हमारे चेतन मन से, पर मन को कहां से प्रेरणा मिली ? प्रश्नों की इस प्रकार की श्रृंखला का कहीं तो अन्त होना ही चाहिए ? आस्तिकता का उत्तर यह है, कि इस चेतना-स्रोत का नाम ही आत्मा है जो बाहर की संवेदनाओं को अभ्यन्तर में प्रवेश कराता है, और उनके प्रत्युत्तर में (अथवा उनकी प्रतिक्रिया में) बाहर को प्रेरणा देता है, जिससे अंगुलियां काम करने लगतीं हैं, पैर चलने लगते हैं, वाणी बोलने लगती है, और शरीर का समस्त यन्त्र गतिमान होने लगता है। नास्तिकता का उत्तर यान्त्रिक,—एक मात्र यान्त्रिक—हैं, जो स्वतः सञ्चालित होता है। मनुष्य ने भी स्वचालित यन्त्र बनाये हैं। मनुष्य न हो तो ये यन्त्र न तो बन सकते हैं, न सुधर सकते हैं, और न कार्य कर सकते हैं। सृष्टि की अणु और विराट् चेतना को प्रेरणा देने वाला आदि स्रोत तो होना ही चाहिए, और वह भी ऐसा जो एक बार प्रेरणा देकर पृथक् न हो जाए, लुप्त या विनष्ट न हो जाए। इस सृष्टि के भीतर असंख्य सृष्टियां हैं, जो अनादि काल से अज्ञात चेतना के कारण कार्य करती आ रही है, और हम ऐसे काल की कल्पना भी नहीं कर सकते, जब यह सृष्टि सर्वथा विलुप्त हो जायेगी, जब सर्वथा शून्य होगा, और वह शून्य भी अस्तित्व से हीन होगा। अनादि अनन्त दो छोरों के बीच में स्थित विकास-शील सृष्टि (परिवर्तनों से ओत-प्रोत, जगत्यां जगत्) अपनी चेतना के लिए जिस तत्त्व के सदा आश्रित रहेगा, वह तो महा-मानव ही हो सकता है, वही परमात्म तत्व है, वही परतत्त्व है, और ऐसे पर-तत्त्व की वैज्ञानिक उपेक्षा करना चाहे, तब भी नहीं कर सकता। महान् वैज्ञानिक या महान्-शिल्पी उस पर-तत्त्व की कल्पना तो कर सकता है, पर वह स्वयं उसका स्थानापन्न नहीं हो सकता। न्यूटन और आइनस्टाइन इस विशाल सृष्टि की हलकी सी झांकी तो ले सकते हैं, पर वे स्वयं सृष्टि की समष्टि को आत्मसात् नहीं कर सकते। आधुनिक शिल्पी सब मिलकर बड़ा कम्प्यूटर तो बना सकते हैं, जो विशाल-काय और भारी भरकम होगा, पर वे अपने जैसा चेतन यन्त्र तो क्या, एक मच्छर और मक्खी भी नहीं बना पायेंगे। तर्क मात्र के लिए दुरूह कल्पनायें की जा सकती हैं,—ये कल्पनायें विनोद का कारण भी हो सकती हैं,—पर वे अणु संसार और विराट् संसार दोनों में से किसी का भी संचालन नहीं कर सकतीं।

यह निश्चय है, कि हमारे-आपके-ऐसे शरीर के भीतर आत्मा ऐसी कोई सत्ता न होती, तो न हमारे रेडियो या टेलीविजन बनते, और न कृत्रिम उपग्रह, और

कोई परमतत्त्व न कम्प्यूटर और इसी प्रकार, इस विशाल सृष्टि के भीतर कोई परमतत्त्व अथवा परमात्मतत्त्व (सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान्, सर्वाधार, सत् चित् और आनन्द का असीम आयाम) न होता तो अणु और विराट् जगत् भी न होता, और नास्तिकता जैसी कल्पना करने वाला व्यक्ति भी न होता।

शून्य और अनन्त को एक में समाविष्ट करने वाली सत्ता का नाम ही भारतीय चिन्तकों ने ब्रह्म रक्खा है, यह गणित के शून्य (Infinitesimality) और गणित की अनन्तराशि (Infinity) से भिन्न है। गणित की ये राशियां संख्या का आयाम हैं। किन्तु ब्रह्म तो अपने में समस्त "अस्ति" आयामों (positive dimensions) को एक में समाविष्ट किए हुए है जो अणु से भी सूक्ष्म और विराट् से भी अधिक विराट् हैं। काल और दिशा के आयाम में ही नहीं, ज्ञान, चेतना, अनुभूति, आनन्द, सात्त्विकता आदि समस्त आयामों में "अणोरणीयान् महतोमहीयान्" है। उससे बड़ा कोई बल नहीं, उससे बड़ा कोई ओज नहीं, उससे बड़ी कोई ऐसी कमनीयता नहीं, जिसके हम मुमुक्षु हों।

वैज्ञानिकों को आस्तिकों ने नास्तिक घोषित किया—भारतवर्ष में नास्तिकता और आस्तिकता के प्रश्न को लेकर कई विचारक-समुदाय उत्पन्न हो गए। नास्तिकों का समुदाय बाद का है, आस्तिकों का आदिकालीन स्वाभाविक है। आस्तिक ही सर्व प्रथम दार्शनिक था, नास्तिकता का प्रचार आगे के क्रमों में हुआ। नास्तिक विचारों का उद्गम स्रोत आस्तिकता ही है, और इसलिए सभी आस्तिकों को सोचना चाहिए कि वे स्वयं नास्तिकता के कारण क्यों बनें। उनकी कौन सी भूल थी कि आस्तिक समुदाय के व्यक्तियों में से कुछ को नास्तिकता का आश्रय लेना पड़ा? मेरा अपना विचार है कि छद्म आस्तिकता (pseudo-theism) ने ही नास्तिकता को जन्म दिया।

अपने देश में आस्तिकों का ही एक वर्ग (जैन, बौद्ध, चार्वाक) नास्तिक हो गया। यूरोप में ईसाइयों का ही एक वर्ग वैज्ञानिक के रूप में नास्तिकता का पर्य्याय बना। वैज्ञानिकों ने अपने को कभी नास्तिक नहीं कहा था, आस्तिक ईसाइयों ने वैज्ञानिकों को नास्तिक की संज्ञा प्रदान की। आस्तिकों ने कतिपय वैज्ञानिकों को अपने वर्ग में से निकाल कर पृथक् किया, और तब जो समुदाय बना, उसे हम नास्तिक कहने लगे। ईसाइयों ने बारबार घोषित किया कि वैज्ञानिक नास्तिक है, और उनके घोष से पीड़ित होकर सत्य में आस्था रखने वाले कतिपय वैज्ञानिकों ने अपने को ईसाइयों की आस्तिकता से मुक्त और पृथक् रखने में ही अपना और संसार का कल्याण समझा।

अपने देश में बौद्ध और जैन, इन नास्तिक दर्शनों के उदय का मूल कारण वैदिक अनुयायियों की छद्म-आस्तिकता थी। शुद्ध वैदिक आचार का जब पतन हो गया, तो संभवतया कोई और मार्ग ही नहीं रह गया,—इस विद्रोह का विकसित और संयमित सुघटित रूप हमारे सामने बौद्ध और जैन सम्प्रदायों के रूप में आया।

पतन-कालीन वैदिक आस्थायें जो नास्तिकता को जन्म देने का कारण बनीं वे यह थीं—

(क) विशुद्ध परमात्म सत्ता के स्थान पर देवी-देवताओं का पूजन।

(ख) वेद के नाम पर यज्ञ में हिंसा का प्रचलन।

(ग) द्विजों (ब्राह्मणों और क्षत्रियों का विशेषतया) का जन-समुदाय पर अत्याचार।

(घ) पुरोहित-वाद और कर्मकाण्डियों के आडम्बर।

(ङ) इह-जीवन की सार्थकता की उपेक्षा और परोक्ष-जगत् के मिथ्या प्रलोभन।

आस्तिक जगत् न केवल अत्याचारी और रूढ़िवादी बन गया, उसने ज्ञान के विकास का द्वार ही बन्द कर दिया। वेद का ईश्वरीय आविर्भाव ज्ञान-विज्ञान को प्रेरणा देने के निमित्त था, पर कर्मकाण्डी आस्तिकों के हाथ में यह वेदज्ञान मंत्र के बाह्य कलेवर में ही परिवेष्टित रह गया। विशुद्ध वैदिक आचार्यों ने वेदांगों, उपांगों और उपवेदों के विकास की प्रेरणा दी, पर आगे के युग में वैदिक कर्मकाण्डियों के हाथ में ये ऋचायें स्वतः में अन्तिम वाक्य मानी जाने लगीं, और अन्धपरम्पराओं की पोषक बन गयीं। मंत्रों की रक्षा तो पण्डितों ने की, किन्तु मंत्रों के अभिप्राय की रक्षा न हो सकी। वेद जो चेतनता के स्रोत थे, अब जनता की जड़ता के प्रतीक बन गए।

स्पष्ट है कि ऐसी स्थिति में विद्रोह होना स्वभाविक था। ऐसे वेद में विश्वास रखने से क्या लाभ जो पुरोहित वाद का प्रतिपादन करता हो, और जो ऐसे यज्ञों को प्रोत्साहन देता हो जिसमें मूक पशुओं की बलि दी जावे। यदि यह पशु-बलि स्वर्ग प्राप्ति का साधन प्रस्तुत करती है तो ऐसे स्वर्ग को भी धिक्कार है! ऐसे ईश्वर में आस्था क्यों रक्खें, जिसने ऐसे वेदों का ज्ञान हमें दिया जिसमें पशुबलि का उल्लेख हो, और इन कुत्सित यज्ञों से स्वर्गप्राप्ति की संकेत और समर्थन हो।

इस छद्म-आस्तिकता ने नास्तिक धर्म का प्रचार भारतवर्ष में किया। इस नास्तिकता के प्रादुर्भाव का समस्त दोष और उत्तरदायित्व उन वैदिक आस्तिकों पर है जिन्होंने कुत्सित आस्थाओं का ईश्वर, वेद और यज्ञ के नाम पर प्रचलन किया। स्पष्ट है कि दोषी कौन? नास्तिक समुदाय नहीं, प्रत्युत वे छद्म आस्तिक समुदाय जिन्होंने वैदिक युग को कलंकित किया। जैन और बौद्धों को नास्तिक किसने घोषित किया? कुत्सित आस्तिकों ने!

ठीक यही अवस्था पन्द्रहवीं शती के बाद यूरोप में ईसाइयों की हुई। ईसाइयों की आस्थायें ही वैज्ञानिकों के विद्रोह का कारण बनीं। प्रभु ईसा मसीह और बाइबिल-इन दो ने वैज्ञानिकों को आस्तिकों के समुदाय से बाहर निकालकर नास्तिकों के दल में फेंकने का प्रयास किया।

ईसा का दिव्य जीवन मानवमात्र के लिए अनुकरणीय है, उसके उदात्त जीवन के प्रति आदर और प्यार की भावना हम सब को होनी चाहिए। उसके व्यक्तित्व की तुलना संसार के परमोत्कृष्ट मानवों से की जा सकती है। किन्तु ? वह ईश्वर का इकलौता बेटा हमारे बीच में आया, सूली पर मरा, और फिर जी उठा, और बाद को उसका स्वर्गारोहण (मृत शव का भी पता न चला)—ये सभी बातें थीं जिनमें किसी भी अच्छे विचारक की आस्था नहीं हो सकती थी।

प्रभु ईसामसीह के जीवन के अति-रञ्जित चमत्कार किसी भी समझदार वैज्ञानिक को मान्य नहीं हो सकते। छूने मात्र से अंधों को आंखें मिल गयीं, कोढ़ियों का कोढ़ दूर हो गया, पानी ईसा के दर्शन मात्र से शराब बन गया, इत्यादि चमत्कारों में कविता तो देखी जा सकती है, तत्वज्ञान नहीं। पादरियों ने भी आशीर्वाद का ढकोसला रचकर गरीबों के साथ छद्म किया। स्वर्ग की झूठी कल्पना प्रस्तुत करके श्रद्धालुओं को ठगा गया—ये सब ऐसी बातें थीं, जिन पर वैज्ञानिक ही क्या, कोई भी समझदार विश्वास नहीं कर सकता। इतिहास का दिव्यमानव ईसा इन चमत्कारों के कारण अन्धश्रद्धालु भक्तों का मसीहा बन गया—वह सूली पर क्या चढ़ा, मानों समस्त मानव के पिछले और आगे के सभी पापों को ही दुनिया से ले गया ! उसके बलिदान का उत्कृष्ट उदाहरण हमारी चेतना का प्रेरणा-स्रोत तो बन सकता है (और ऐसे बलिदान तो प्रत्येकयुग में और प्रत्येक देश में होते ही रहते हैं) किन्तु पैगम्बरवाद और मसीहावाद के तत्वज्ञान में तो किसी वैज्ञानिक को आस्था नहीं हो सकती। यदि कोई वैज्ञानिक ईसा को ऐतिहासिक मानव तो मानता है, किन्तु उसे अलौकिक पैगम्बर और मसीहा (ईश्वर का एकमात्र पुत्र) न माने, तो उसे हम क्यों नास्तिक कहें। नास्तिक तो वह है जो यथार्थ और सत्य में विश्वास न करे।

ईसाइयों ने, और इसी प्रकार कतिपय अन्य समुदायों ने, वैज्ञानिकों को क्यों नास्तिक कहा—इसके भी मनोरंजक उदाहरण इतिहास में हैं। (१) आस्तिक लोग मानते थे कि धरती चटाई के समान चौरस है। वैज्ञानिकों ने यह घोषित करने का साहस किया, कि धरती नारंगी की तरह गोल है। (२) ईसाई-समुदाय यह मानता था (क्योंकि बाइबिल में लिखा है) कि धरती स्थिर है, और सूर्य इस धरती की परिक्रमा करता है। कॉपरनिकस आदि वैज्ञानिकों ने यह कहने का साहस किया कि सूर्य स्थिर है, और उसके चारों ओर पृथ्वी आदि ग्रह परिक्रमा करते हैं—इस मान्यता के लिए ईसाइयों ने वैज्ञानिकों पर अत्याचार किये। (३) रूह केवल आदम में फूंकी गयी, किन्तु हव्वा आदम की पसली से ईश्वर ने बनायी, अतः औरतों में "जान" नहीं होती, जान केवल पुरुषों में है। बाइबिल में कहीं नहीं लिखा कि पशुओं में भी ईश्वर ने अपनी रूह फूंकी, अतः पशुओं में भी जीव जैसी कोई सत्ता नहीं। स्त्री और पुरुषों में इस प्रकार का मौलिक भेद प्रतिपादित किया गया। वैज्ञानिक को यह तथ्य स्वीकार नहीं था। (४) बाइबिल में सृष्टि की रचना ६ दिनों में बताई गई, और इस रचना का जो क्रम बताया गया, वह भी वैज्ञानिकों को मान्य न था। डार्विन ने सृष्टि रचना

का जो विकासवादी सिद्धान्त प्रस्तुत किया, उसने ईसाइयों और वैज्ञानिकों के बीच में कटु विवाद उत्पन्न कर दिया। वैदिक सिद्धान्त के समान ईसाई-सिद्धान्त विकासवाद और आस्तिकता-वाद दोनों का समन्वय करने में असमर्थ रहा (वैदिकवाद दोनों वादों का समन्वय करता है)। (५) बाइबिल में पाप कहां से आया, इसकी एक व्याख्या है। आदम और हव्वा स्वर्ग के बगीचे में आनन्द ले रहे थे। एक पेड़ की ओर हव्वा की दृष्टि गयी, जिस पर पके फल लटक रहे थे। उसने आदम से आग्रह करके (आदम के मना करने पर भी) फल तोड़वाया। फल जैसे ही चखा गया—पाप का उदय हुआ। हव्वा का दोष था कि उसने ही आदम से आग्रह किया था कि फल तोड़: इसलिए पाप का प्रथम कारण हव्वा घोषित की गयी। उसे अभिशाप मिला कि भविष्य में जितनी नारियां पुत्र जनेंगी, पुत्र जनते समय उन्हें प्रसव-पीड़ा भोगनी पड़ेगी। बाइबिल की इस महत्वपूर्ण आख्यायिका का एक ऐतिहासिक पक्ष है, जिसने वैज्ञानिकों को विचलित कर दिया।

वह ऐतिहासिक घटना संवेदनाहारी निश्चेतकों (anaesthetics) के प्रयोग की है। अभी इसी शती के आरम्भ की ही बात है, कि एथिल ईथर आदि रासायनिक निश्चेतकों की खोज की गयी और शल्य-चिकित्सा में उनका उपयोग हुआ। बेचारी नारी की प्रसूति सम्बन्धी वेदनाओं में इनके प्रयोग की आवश्यकता शल्य-चिकित्सक को पड़ी। इतिहास इस बात का साक्षी है कि समस्त ईसाई जगत् इन निश्चेतकों के प्रयोग के विरुद्ध बौखला उठा। प्रसूतिवेदना तो नारी को पुराने पाप के कारण भोगनी ही चाहिए। उसे ईश्वरीय अभिशाप प्राप्त है—वेदना को कम करने का प्रयास नास्तिकता है, ईश्वराज्ञा के विरुद्ध है, बाइबिल के विरुद्ध भी। वैज्ञानिक जगत् इस प्रकार की धार्मिक व्यवस्थाओं पर उद्वेलित और विक्षुब्ध हो उठा।

आस्तिकता के इस प्रकार के दृष्टिकोण के कारण वैज्ञानिकों को नास्तिक कहे जाने पर बाध्य किया गया। पर वैज्ञानिक सत्यनिष्ठ रहे हैं। सत्य के प्रयोग और अनुसंधान होने ही चाहिए, और वैज्ञानिकों की दृढ़ आस्था है कि सत्य की उपलब्धियों में मनुष्य का कल्याण है।

ईसाइयों का ही दोष नहीं, समस्त साम्प्रदायिक धर्मों ने आस्तिकता का जो स्वरूप प्रतिपादित किया है, वह न केवल असत्य, छल-छद्म और अंधविश्वास पर आश्रित है, उसमें घोर स्वार्थ-परायणता भी है। यही कारण है कि १८ वीं शती से लेकर आजतक विज्ञान को रूढ़ियों के प्रति संघर्ष करना पड़ा है। पैगम्बरवाद, अवतारवाद, बाबावाद और न जाने इस कोटि के कितने छद्माचरण जनता को दुरित और असत्य की ओर ले जाने की चेष्टा कर रहे हैं। अभी पिछले एक दशक की ही बात है कि जब दक्षिणी अफ्रीका के प्रोफसर बर्नार्ड ने हृदय-प्रत्यारोपण के सफल प्रयोग किये (एक व्यक्ति का हृदय दूसरे के शरीर में आरोपित करने के), तो फिर यूरोप और अमरीका का धार्मिक आस्तिक जगत् उद्वेलित हो गया। उसकी तो यह आस्था थी कि मनुष्य के व्यक्तित्व का एकमात्र केन्द्र वह हृदय है, जो अब स्थानान्तरित

भी किया जा सकेगा, और एक का हृदय दूसरे के हृदय से बदला भी जा सकेगा। वास्तविक रहस्य और तथ्य को ठीक से न समझने के कारण ऐसी भ्रांतियां सम्प्रदायवादियों के दृष्टिकोण को सदा कुत्सित ही बनाती रहेंगी।

वैज्ञानिक सच्चे अर्थ में आस्तिक है, उसके आविष्कार मनुष्य कल्याण के लिए हैं, यदि उनका उपयोग विवेक पूर्वक किया जाय। व्यापारिक और राजनीतिक स्वार्थपरायणताओं ने वैज्ञानिक उपलब्धियों का अपने स्वार्थ के लिए दोहन किया। १९१४ के महायुद्ध में भी, द्वितीय महायुद्ध और इसके अनन्तर परमाणु-ऊर्जा का आविष्कार होने पर भी। स्वार्थ, लिप्सा, ईर्ष्या, द्वेष, मिथ्याभिमान और प्रतिस्पर्धा की भावना ने वैज्ञानिक उपलब्धियों को कलंकित कर दिया। राजनीति और अर्थनीति की कुण्ठाओं ने वैज्ञानिक आस्थाओं को अपमानित किया। धार्मिक सम्प्रदायों को फिर कहने का अवसर मिल गया कि वैज्ञानिक नास्तिक हैं, शैतान के पुजारी हैं, और मानव का हित वैज्ञानिकों के प्रभाव से उन्मुक्ति प्राप्त करने में ही है। यह संघर्ष कितना भ्रामक है, यह कहने की आवश्यकता नहीं।

विज्ञान कोई संप्रदाय नहीं हैं, यह सत्य तक पहुंचने को एक विवेकपूर्णशैली है, और वैज्ञानिक इस शैली का कुशल शिल्पी है, वह इस शैली के द्वारा सूक्ष्म और स्थूल दोनों जगतों की यथाशक्य विवेचना करने का प्रयास करता है। उसका कार्यक्षेत्र (विवेचना और अनुशीलन का) पिछली तीन-चार शतियों से बराबर प्रशस्त ही होता आ रहा है। यह कहना कठिन है कि विज्ञान हमको कितनी दूर तक ले जायगा। मनुष्य की भी सीमायें हैं, उसकी वैयक्तिक और समष्टिगत उपलब्धियां भी सीमित रहेंगी। देश-काल और सीमित साधनों से आबद्ध यह मानव एक ही शपथ और आग्रह में आस्था रखता है—सत्य की खोज और मानवशक्तियों के सद्विकास में समस्त उपलब्धियों का प्रयोग। यही उसकी आस्तिकता है। सत्य के समस्त आयामों पर शासन करने वाली परमसत्ता में उसकी निश्चल आस्था है।

—o—

फ्रेंक ऐलन

संसार का उद्‌भव —अकस्मात् या सप्रयोजन

जीवभौतिकीविद् कौर्नेल विश्वविद्‌यालय से एम० ए० और पी-एच० डी०, मानिटोबा (कनाडा) विश्वविद्‌यालय में १९०४-१९४४ तक जीवभौतिकी (बायोफिजिक्स) के प्रोफेसर, वर्ण-विज्ञान और तरल वायु के उत्पादन के तथा फिजियोलौजिकल ओप्टिक्स और ग्लैण्डुलर म्यूटेशन के विशेषज्ञ, कनाडा की रायल सोसायटी का स्वर्ण पदक प्राप्त करने वाले।

× × ×

कभी-कभी यह ख्याल प्रकट किया जाता है कि इस भौतिक विश्व के किसी सिरजनहार की जरूरत नहीं हैं। किन्तु इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि विश्व की सत्ता है। इसके उद्‌भव के लिए चार हल प्रस्तुत किए जा सकते हैं : प्रथम यह कि यह निरा भ्रम है—जो अभी कही गई बात के विपरीत है, द्वितीय, यह कि यह असत् से स्वयं उत्पन्न हो गया, तृतीय, यह कि इसकी उत्पत्ति हुई ही नहीं यह सदा से विद्यमान है, और चतुर्थ, यह कि यह उत्पन्न किया गया है।

जो पहला हल पेश किया गया है यदि उसे माना जाए तो उसका अभिप्राय यह होगा कि मानवीय चेतनता की तत्वमीमांसीय समस्या के अलावा हमारे लिए और कोई समस्या नहीं रहेगी जिसे हल करना हो, और वह चेतनता भी एक भ्रम मात्र ही होगी। भ्रम वाली इस परिकल्पना का भौतिक विज्ञान में पुनरुद्धार हाल में ही सर जेम्स जीन्स ने ('दी मिस्टीरियस यूनिवर्स' नामक पुस्तक का पृष्ठ १६९ देखिये) किया है, जिसका कहना है कि आधुनिक भौतिकी के विचार के अनुसार 'विश्व भौतिक पदार्थों का बना नहीं हो सकता, और मैं सोचता हूँ कि उसका कारण यह है कि अब विश्व केवल मानसिक विचार मात्र बन गया है।' इसके अनुसार, कोई कह सकता है कि काल्पनिक मुसाफिरों से भरी भ्रमात्मक रेलगाड़ियां मानसिक विचारों से बने अभौतिक पुलों पर से अवास्तविक नदियों को पार करती हैं।

दूसरा यह विचार भी कि पदार्थ और ऊर्जा के मेल से बना यह संसार अभाव में से पैदा हो गया, इतना वाहियात है कि वह विचार करने योग्य ही नहीं है।

तीसरा जो यह विचार है कि संसार सदा से है, इसकी भी एक बात सृष्टि की सकर्तृकता के सिद्धान्त से मिलती है, या जो शक्ति-गर्भित जड़ पदार्थ सदा से है, या कोई बनाने वाला सृष्टि का कर्त्ता सदा से है। जितनी बड़ी बौद्धिक कठिनाई एक विचार में है उससे कम दूसरे विचार में नहीं है। किन्तु ऊष्मागतिकीय (थर्मोडायनेमिक्स) के नियमों से पता लगता है कि संसार ऐसी अवस्था को प्राप्त होता जा रहा है जबकि सभी पिण्डों का एक जैसा अत्यन्त कम तापमान रह जाएगा और उनमें शक्ति भी शेष नहीं रहेगी। तब प्राणियों का जीवन धारण करना असम्भव हो जायेगा। अनन्त काल में शक्ति समाप्ति की यह अवस्था कभी न कभी तो आएगी ही। यह इतनी गर्मी देने वाला सूरज और तारे, असंख्य जीवधारियों को अपनी गोद में लपेटे यह पृथ्वी, इस बात के पक्के सबूत हैं कि सृष्टि का उद्भव किसी न किसी काल में, काल की किसी निश्चित अवधि में, घटित हुआ है, और इसलिए इस विश्व का कोई न कोई रचयिता होना चाहिए। एक महान् प्रथम कारण, एक शाश्वत, सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान् स्रष्टा अवश्य होना चाहिए, और यह सारा विश्व उसी की कारीगरी है।

जीवन धारण करने के योग्य बनने के लिए पृथ्वी ने जितने रूप बदले हैं वे इतने अधिक हैं कि उन्हें आकस्मिक नहीं माना जा सकता। सबसे पहले, पृथ्वी एक ऐसा गोला है जो आकाश में मुक्त रूप से लटका हुआ है, जो अपने ध्रुवीय अक्षों पर रोज घूमता है, जिससे एक के बाद एक दिन और रात बनते हैं, और पृथ्वी का यह गोला सूर्य के चारों ओर प्रतिवर्ष परिक्रमा करता है। (गैलीलियो या ब्रूनो से बहुत पहले, पृथ्वी की इन दोनों गतियों का वर्णन भारत के आर्यभट नामक ज्योतिषी ने किया है। यजुर्वेद में भी 'आयं गौः पृश्निरक्रमीदसदन्मातरं पुरः' मन्त्र में पृथ्वी की इन दोनों गतियों का स्पष्ट वर्णन है।—अनु०)। इन दोनों गतियों से आकाश में पृथ्वी के परिभ्रमण में स्थिरता आती है, और अपने ध्रुवीय अक्षों पर घूमते हुए वह जो २३ अंश पर झुकी हुई है, उसके कारण ऋतुओं में नियमितता आती है। एक स्थान पर स्थित पृथ्वी पर उतने विविध प्रकार के वृक्ष-वनस्पति नहीं हो सकते थे जितने अब परिभ्रमणशील पृथ्वी पर हो सकते हैं। पृथ्वी के घूमते रहने के कारण ही उसका बसने योग्य क्षेत्रफल भी एक स्थान पर स्थित पृथ्वी के बजाय दुगना हो गया है।

दूसरे, जीवन धारण करने में सहायक गैसों का वायुमण्डल काफी ऊंचा (लगभग ५०० मील) और इतना घना है कि वह तीस मील प्रति सेकण्ड के हिसाब से प्रतिदिन गिरने वाली दो करोड़ उल्काओं के घातक प्रभाव से पृथ्वी को बचा लेता है। वायुमण्डल और जो कई सारे काम करता है उनमें ये भी शामिल हैं—वह ताप-

मान को ऐसी सीमाओं में कायम रखता है जिनमें प्राणी जीवित रह सके, और धरती की सिंचाई के लिए समुद्रों से ताजा जल-वाष्प की महत्वपूर्ण रसद दूरस्थ प्रदेशों तक पहुंचाता है, जिसके विना वे प्रदेश जीवनशून्य रेगिस्तान मात्र बनकर रह जाते। इस प्रकार वायुमण्डल के साथ मिलकर महासागर भी प्रकृति के सन्तुलन-चक्र का काम करते हैं।

पानी के भी चार विशिष्ट गुण हैं। कम तापमान पर भी आक्सीजन की भारी मात्रा जज़्ब करने की पानी में ताकत है। जमने से पहले पानी की अधिकतम घनता ४ अंश सेंटीग्रेड पर होती है जिसके कारण झीलें और नदियां तरल बनी रहती हैं, और पानी की अपेक्षा कम घनता वाली होने के कारण बर्फ पानी की सतह पर ही तैरती रहती है। और जब पानी जमने लगता है नव ताप की भारी मात्रा छोड़ता है जिसके कारण भर सर्दियों में समुद्रों, झीलों और नदियों में जीवधारियों का जीवन सुरक्षित रहता है।

अधिक पार्थिव जीवन के लिए सूखी ज़मीन एक स्थायी मंच है। मिट्टी ऐसे खनिज पदार्थ देती है जिन्हें पेड़-पौधे अपने अन्दर पचाकर प्राणियों के लिए आवश्यक भोजन के रूप में बदल देते हैं। धरातल के निकट ही धातुओं की उपस्थिति से सभ्यता की समस्त कलाएं सम्भव हुई हैं। यह ठीक ही कहा गया है: 'परमात्मा ने पृथ्वी को व्यर्थ और अस्त-व्यस्त नहीं बनाया, उसने इसे लोगों के रहने के लिए बनाया है।'

कभी कभी आकाश की विशालता की तुलना में पृथ्वी के छोटे आकार की चर्चा करके असमानता का उल्लेख किया जाता है। किन्तु यदि पृथ्वी का आकार भी उतना ही छोटा होता, जितना चन्द्रमा का है, अर्थात् वर्तमान व्यास से उसका व्यास केवल एक चौथाई होता, तो गुरुत्वाकर्षण की शक्ति (पृथ्वी की गुरुत्वाकर्षण शक्ति से चन्द्रमा की गुरुत्वाकर्षण शक्ति ६ गुणा कम है) न वायुमण्डल को सम्भाल सकती, न ही पानी को, और तापमान भी इतना सीमातीत होता कि जीवन धारण करना कठिन हो जाता। यदि पृथ्वी का व्यास वर्तमान व्यास से दुगना कर दिया जाए तो बढ़ी हुई पृथ्वी का धरातल वर्तमान धरातल से चौगुना होगा और गुरुत्वाकर्षण शक्ति दुगनी हो जाएगी—जिसका परिणाम यह होगा कि वायुमण्डल की ऊंचाई खतरनाक रूप से घट जाएंगी और उसका दबाव भी १५ से ३० पौण्ड प्रति वर्ग इंच तक बढ़ जाएगा, जिसका जीवन पर गम्भीर घातक असर पड़ेगा। सर्दी वाले क्षेत्र खूब बढ़ जाएंगे और प्राणियों के बसने योग्य क्षेत्र में भारी कमी हो जाएगी। मानव समुदाय के विभिन्न वर्ग अलग-थलग पड़ जाएंगे और यात्रा करना या संचार-साधनों का प्रयोग करना सर्वथा कठिन और लगभग असम्भव ही हो जाएगा।

यदि हमारी पृथ्वी का आकार सूरज जितना बड़ा हो जाए, किन्तु उसकी घनता ज्यों की त्यों कायम रहे, तो उसकी गुरुता १५० गुनी बढ़ जाएगी, वायु मण्डल की ऊंचाई घटकर केवल चार मील रह जाएगी, पानी का भाप बन कर उड़ना

असम्भव हो जाएगा और वायु का दवाव प्रति इंच एक टन से अधिक वढ़ जाएगा। एक पौण्ड के प्राणी का वज़न तब होगा १५० पौण्ड, और मानवों का आकार घट कर इतना छोटा हो जाएगा जैसे गिलहरी। इस प्रकार के प्राणियों में किसी भी प्रकार के वौद्धिक जीवन की तो कल्पना भी नहीं की.जा सकती।

सूर्य से पृथ्वी की अब जितनी दूरी है यदि उस दूरी को दुगना कर दिया जाए, तो जितनी गर्मी अब मिलती है वह घटकर चौथाई रह जाएगी, अयन में घूमने का उसका वेग केवल आधा रह जाएगा, सर्दियों का मौसम लम्बाई में दुगना हो जाएगा और सब प्राणी ठण्ड के मारे जम जाएंगे। यदि सूर्य से पृथ्वी की वर्तमान दूरी आधी कर दी जाए, तो सूर्य से मिलने वाली गर्मी चौगुनी हो जाएगी, अयन में घूमने का वेग दुगना हो जाएगा, ऋतुओं की लम्बाई आधी रह जाएगी और हमारा यह ग्रह इतना तप्त हो जाएगा कि सब प्राणा जल-भुन जाएंगे। इस समय पृथ्वी का जितना आकार है और सूर्य से जितनी दूरी है, तथा अयन में घूमन का उसका जो वर्तमान वेग है, उसी के कारण पृथ्वी पर जीवधारियों का रहना सम्भव है, और तभी मानव-जाति शारीरिक, वौद्धिक और आत्मिक जीवन के वर्तमान आनन्दों का उपभोग कर सकती है।

यदि जीवन के उद्भव में कोई प्रयोजन न हो तो समस्त जीवित पदार्थों को अकस्मात् उद्भूत मानना होगा और यह अकस्मात् (चांस), या जिसे सम्भाव्यता की परिभाषा दी जाती है, एक ऐसा उच्च गणितात्मक सिद्धान्त (थ्योरी) है जो उन सभी ज्ञेय पदार्थों पर लागू होता है जो एकदम निश्चयात्मक स्थिति से परे हैं। इस मत के कारण कुछ ऐसे सिद्धान्त और नियम हमारे हाथ में आ जाते हैं जिनसे हम सच को झूठ से अलग करके पहचान सकते हैं और किसी खास घटना के घटित होने की सदृशता की जांच कर सकते हैं।

जितने भी जीवित कोष हैं उन सब में प्रोटीन अवश्य होते हैं और वे प्रोटीन इन पांच तत्वों से बने होते हैं: कार्बन, हाइड्रोजन, नाइट्रोजन, ऑक्सीजन और गन्धक। एक भारी अणु (मौलिक्यूल—Molecule) में इनके लगभग ४०,००० परमाणु (एटम—Atom) तक होते हैं। प्रकृति में ९२ रासायनिक तत्व हैं, वे सब बेतरतीब बिखरे पड़े हैं, कभी अकस्मात् ये पांचों तत्व अणु के निर्माण के लिए परस्पर मिल जाएं, तो द्रव्य का कितना अंश लगातार स्पन्दित होगा और इस काम के पूरा होने में कितना समय लगेगा, इस सबकी गणना की जा सकती है। चार्ल्स यूजीन गुई नामक एक स्विस गणितज्ञ ने इसकी गणना की है और वह इस परिणाम पर पहुँचा है कि इस प्रकार की घटना घटित होने के लिए 10^{160} में १ की सम्भावना है अर्थात् 10^{160} (१० की १६० घात) में केवल १ का 'चांस' है अर्थात् यदि १० को १० से १६० बार गुणा किया जाए तो उतनी संख्या में केवल एक बार ऐसा सम्भव है। १० को १० से १६० बार गुणा करने पर वह संख्या जितनी बनेगी, उसे शब्दों में लिख कर बताना भी कठिन है। प्रोटीन का एक अणु बनाने के लिए

पदार्थ के जितने भाग को स्पन्दित करना होगा वह इस समस्त विश्व से भी लाखों गुणा बड़ा होगा और उस एक अणु को इस पृथ्वी पर घटित होने के लिए 10^{243} (१० की २४३ घात) वर्ष अर्थात् लगभग अनन्त समय लग जाएगा।

प्रोटीन ऐमिनो अम्लों की लम्बी शृंखला से बनते हैं। जिस ढंग से वे अम्ल एक साथ रखे जाते हैं, उसका भी भारी महत्व है। यदि गलत ढंग से उन्हें एक साथ रख दिया जाए तो जीवन धारण करने में समर्थ होने के बजाय वे जीवन-नाशक विष बन जाते हैं। इंग्लैंड के प्रोफेसर जे० बी० लीथेज़ ने गणना की है कि सादे प्रोटीन की शृंखला में भी उसकी कड़ियां लाखों (10^{48} = १० की ४८ घात) ढंगों से जोड़ी जा सकती है। यह असम्भव है कि ये सब 'अकस्मात्' एक साथ इस ढंग से मिल सकें कि उनसे प्रोटीन का एक अणु बन जाए।

किन्तु रासायनिक द्रव्यों के समान प्रोटीन भी जीवन-शून्य हैं। रहस्यपूर्ण जीवनी-शक्ति जब उनमें प्रवेश करती है तभी वे जीवन धारण करते हैं। कोई अनन्त चेतन शक्ति ही यह समझ सकती है कि इस प्रकार का अणु जीवन का आधार बन सकता है। उसी शक्ति ने इस अणु का निर्माण किया है और उसी ने इसे जीवन धारण के योग्य बनाया है। उस शक्ति का नाम ही परमात्मा है।

राबर्ट मौरिस पेंज

निर्णायक परीक्षा

भौतिकीशास्त्रविद्

वी० एस० सी०, हेमलिन विश्वविद्यालय, एम० एस० सी०, जार्ज वाशिंगटन विश्वविद्यालय, डी० एस० सी०, हेमलिन विश्वविद्यालय। १९२७ से वाशिंगटन की नौसेना सम्बन्धी प्रयोगशाला के साथ। १९३४ में विमानों का पता लगाने के लिए संसार में प्रथम स्पन्द (पतस) रेडार पूरा किया, अमेरिकन नौसेना की विशिष्ट सिविलियन सर्विस के पुरस्कार विजेता। राष्ट्रपति द्वारा योग्यता का प्रमाण पत्र, अपर फेलोशिप, हेरी डायमण्ड मेमोरियल पुरस्कार, फ्रेंकलिन इंस्टीट्यूट का स्टुअर्ट वैलेंटाइन पदक। रेडार सम्बन्धी ३७ पेटेण्टों के स्वामी। अनेक टैकनिकल लेखों और भाषणों के रचयिता। फिलहाल अमेरिकन नौसेना की इलेक्ट्रोनिक्स की अनुसंधान सम्बन्धी प्रयोगशाला के सह-निर्देशक। अनुसंधान की व्यवस्था और इलेक्ट्रोनिक्स सम्बन्धी सूक्ष्म उपकरणों के विशेषज्ञ।

× × ×

किसी प्राक् कल्पना (हाइपोथेसिस) की परीक्षा में यह बात शामिल होती है कि यदि यह मान लिया जाए कि वह कल्पना सत्य है तो उस कल्पना के द्वारा जिन परिणामों की भविष्यवाणी की गई है उन्हें प्राप्त करने के लिए उस कल्पना से संगत अवस्थाएं प्रस्थापित की जाएं। इस प्रकार किसी भी प्राक् कल्पना की परीक्षा के लिए तीन बातें जरूरी हैं : (१) कल्पना को सत्य मानकर, (२) कथित परिणाम निकालने के लिए, (३) विशिष्ट अवस्थाएं पैदा करना। पिछली दो शर्तें तो आम तौर पर बिना किसी तर्क-वितर्क के स्वीकार कर ली जाती हैं, किन्तु पहली शर्त ऐसी है कि किसी भी कल्पना की परीक्षा करने में उसे प्रायः नजरन्दाज़ कर दिया जाता है।

जब पानी के जहाज़ लकड़ी के बनाए जाते थे, क्योंकि सामान्यतया यह विश्वास किया जाता था कि जहाजों को पानी पर तैराने के लिए यह आवश्यक है कि वे ऐसे पदार्थ से बनाए जाएं जो पानी से हलका हो, तब यह कल्पना पेश की गई

कि जहाज लोहे के बनाए जा सकते हैं और वे फ़िर भी तैर सकते हैं। किसी लुहार ने कहा कि लोहे के बने जहाज़ पानी पर नहीं तैर सकते क्योंकि लोहा नहीं तैर सकता, और घोड़े की नाल पानी के हौज में उछाल कर उसने अपनी बात साबित कर दी। उसके मन में जो यह धारणा बैठी हुई थी कि उक्त कल्पना असत्य है इसके कारण उस कल्पना से संगत परीक्षण करने की बात उसके दिमाग़ में नहीं आई, नहीं तो सम्भव था कि कल्पना से जिन परिणामों के निकलने की बात कही गई थी वह सही बैठती। यदि पहले उस कल्पना को सत्य मान कर वह चला होता तो लोहे की नाल के बजाय उसने पानी के हौज में लोहे की चिलमची उछालकर फेंकी होती।

कभी कभी किसी प्राक् कल्पना की पूर्ण परीक्षा के लिए ऐसे पर्यवेक्षण की जरूरत होती है जो किसी खास पर्यवेक्षक को सुलभ नहीं होता। उदाहरण के लिए, कल्पना करिए कि कोई एक ऐसा पर्यवेक्षक है जिसका पर्यवेक्षण केवल समुद्र की सतह तक ही सीमित है। सतह से ऊपर या नीचे यह पर्यवेक्षक कुछ नहीं देख सकता, और वह किसी ऐसी चीज़ की ही उपस्थिति से अवगत है जिसका सम्पर्क पानी की सतह से ही हो। पानी पर तैरती हुई किसी भी चीज़ से वह अवगत हो सकता है। इस प्रकार सब तरह की नावें, चाहे वे कितनी भी छोटी हों या कितनी भी बड़ी, या पानी पर उतराता कूड़ा या सतह पर तैरते पक्षी उसे पर्यवेक्षण के लिए सुलभ हैं। जहां तक इस पर्यवेक्षक का सम्बन्ध है, उसकी दृष्टि में हवा में उड़ते हुए पक्षियों या विमानों का, और सतह के नीचे मछलियों या पनडुब्बियों का, कोई अस्तित्व नहीं है। यदि कोई जलमग्न पदार्थ अचानक सतह पर आ जाए, या आकाश में उड़ता-उड़ता कोई पक्षी पानी पर उतर आये, तो उस पर्यवेक्षक को यही प्रतीत होगा जैसे कि अभाव में से भाव की सृष्टि हो गई। इससे उल्टी बात वह सोच ही नहीं सकता। इस पर्यवेक्षक को बहुत-सी घटनाएं प्रत्यक्ष होंगी, बहुतों को थोड़ा-बहुत वह अच्छी तरह समझता भी होगा, परन्तु वे सब उन्हीं पदार्थों के सम्बन्ध में होंगी जो पानी पर तैरती हों। किन्तु अचानक आकाश से उड़ता हुआ कोई पक्षी पानी की सतह पर प्रकट हो जाए या पानी की सतह से उड़कर आकाश में गायब हो जाए तो इस प्रकार की आकस्मिक या अप्रत्याशित कतिपय घटनाओं की व्याख्या उसके बस की बात नहीं।

मान लीजिए कि किसी दिन इस पर्यवेक्षक को एक ऐसा व्यक्ति मिलता है जो पक्षियों या विमानों को आकाश में उड़ता देख सकता है और पानी के नीचे भी मछलियों और पनडुब्बियों को झांक सकता है। अब यदि इन दोनों व्यक्तियों में वार्तालाप हो, तो बहुत सी घटनाओं की जो पहले देखी थीं किन्तु उनकी व्याख्या नहीं की जा सकी थी, अब उनकी व्याख्या की जा सकेगी और वे समझ में आ सकेंगी। तथापि हमारे मूल पर्यवेक्षक को पानी की सतह के नीचे तैरने वाली या पानी की सतह से ऊपर उड़ने वाली चीजों की सत्ता के विचार को स्वीकार करना बहुत कठिन होगा। वह इस दूसरे व्यक्ति की बात पर सहसा तब तक विश्वास करने को तैयार

नहीं होगा जब तक कि उसकी सचाई किसी अन्य ढंग से प्रमाणित न हो जाए। यह काम थोड़ा टेढ़ा है। किन्तु अपनी प्रामाणिकता सिद्ध करने के लिए दूसरा व्यक्ति एक बात कर सकता है, वह यह कि वह उन घटनाओं का पहले से ही वर्णन कर सकता है जिन्हें वह अनेक बार प्रत्यक्ष कर चुका है और जिन्हें वही देख सका है, एवं जिन्हें हमारा पहला पर्यवेक्षक बाद में देखेगा, भले ही वह उनकी व्याख्या न कर सके। उदाहरण के लिए, दूसरा व्यक्ति एक ऐसे पक्षी को देखे जो मछली को पकड़ने के लिए पानी में डुबकी मारने वाला हो। तब वह हमारे पर्यवेक्षक से कहेगा कि तुम पानी की सतह में आकस्मिक अलगाव देखने वाले हो जब एक पक्षी सतह में से गुजरेगा। यह सतह का अलगाव उस पक्षी के अचानक उदय होने से ही होगा जो मछली को लेकर फिर हवा में उड़ जाने वाला है। जब यह भविष्यवाणी पूरी हो जाएगी तब हमारे प्रथम पर्यवेक्षक को कुछ तसल्ली होगी कि दूसरा व्यक्ति जो कुछ कह रहा है वह गलत नहीं कह रहा, वह उस बात को अच्छी तरह जानता है।

इस संक्षिप्त भूमिका के साथ, अब हम परमात्मा की सत्ता की बात पर विचार करें, और इस बात को भी प्राक्कल्पना की कोटि में ही रखें जैसा कि कुछ लोग रखना चाहते हैं। इस कल्पना की परीक्षा के लिए जब हम प्रवृत्त होते हैं तब हमें ये बातें नज़र आती हैं :

प्रथम, सही परीक्षा के लिए हमें यह मान कर चलना चाहिए, कम से कम कुछ समय के लिए, कि यह कल्पना सत्य है। चाहे हम इस पर विश्वास करें, या न करें, किन्तु परीक्षा के लिए हमें ऐसा मानना तो चाहिए ही, अन्यथा हम ठीक-ठीक परीक्षा नहीं कर सकेंगे।

दूसरे, हमें अनेक व्यक्तियों की यह साक्षी भी स्वीकार करने को तैयार रहना चाहिए कि हमारी पर्यवेक्षण की शक्ति सीमित है और हम वस्तुजगत् का अपेक्षाकृत बहुत कम भाग ही देख सकते हैं। 'परमात्मा है' इस कल्पना के साथ परमात्मा की सत्ता से सम्बद्ध कुछ ऐसी शर्तें शामिल हैं जो विज्ञान के क्षेत्र से परे हैं और विज्ञान जिनकी परीक्षा नहीं कर सकता। अनेक लोगों की साक्षी यह है कि ईश्वर एक आत्मा है, और ऐसी वास्तविकता के राज्य में उसकी सत्ता है जो भौतिक जगत् के घेरे में पूरी तरह नहीं आती, जो देश (स्पेस) के तीनों आयामों में सीमित नहीं, और जो काल के नियमों में भी नहीं आती। हमें यह स्वीकार करने को तैयार रहना चाहिए कि हमारा समस्त भौतिक जगत्, जो देश और काल की कुछ सीमाओं में बंधा हुआ है, कुल वस्तु-जगत् का केवल छोटा-सा ही हिस्सा हो सकता है, ठीक वैसे ही जैसे कि समुद्र की सतह हमारे ज्ञात विश्व का बहुत छोटा-सा भाग है।

तीसरे, ईश्वर नाम की कोई चीज़ है, यदि यह हम मान लेते हैं, तो हमें गम्भीरतापूर्वक इस विचार का सामना करने को भी तैयार रहना चाहिए कि ईश्वर हमारे भौतिक जगत् से परे ही वास्तविकता के सम्बन्ध में हमें ज्ञान प्रदान कर सकता है।

ऊपर जिन परीक्षाओं का उल्लेख किया गया है वे अनेक अनुसन्धानकर्ताओं द्वारा की गई हैं, जिनमें लेखक भी शामिल है। आध्यात्मिक जगत् के सम्बन्ध में लेखक को धर्मग्रन्थों में (खास कर हिन्दुओं के वेदों और उपनिषदों में) काफी जानकारी मिली है। उन धर्मग्रन्थों में यह जानकारी उन मानवों के माध्यम से आई है जिन्होंने उनमें वे बातें लिखी हैं जिन पर वे विश्वास करते थे और जिन्हें वे सच समझते थे। इन लोगों के, भले ही ये मानव प्राणी ही थे, लेखों की प्रामाणिकता सुदूर भविष्य में होने वाली महत्वपूर्ण घटनाओं के पूर्व कथन से सिद्ध होती है। ऐसी भविष्यवाणियां काल के नियमों से स्वतंत्र साम्राज्य के ज्ञान से ही सम्भव है। सृष्टिविद्या के रहस्यों का पूर्वकथन ही एक मात्र प्रमाण नहीं है, किन्तु यह तो उस प्रकार के प्रमाणों का एक नमूना मात्र है जिनसे उन लेखों को लिखने वालों की प्रामाणिकता और आप्तता स्थापित होती है।

हमारी बुनियादी कल्पना की सचाई को सिद्ध करने के लिए जोरदार तर्क है निजी अनुभूति, और जिसको एक बार यह अनुभूति हो गई है उसे अन्य कोई भी तर्क विचलित नहीं कर सकता।

जब कोई ऐसे परीक्षणों में भाग लेता है जिनमें जानकारी देने वालों से प्राप्त कल्पना के फलितार्थों को भी शामिल किया जाता है, तब हर कोई देख सकता है कि जिन परिणामों के बारे में आशा की गई थी वे प्राप्त हुए या नहीं।

जब कोई उस सम्बन्ध का अध्ययन करता है जो मनुष्य और ईश्वर के बीच विद्यमान है या होना चाहिए, जब कोई मनुष्य उन शर्तों का अध्ययन करता है जो इन सम्बन्धों की स्थापना के लिए पूरी की जानी चाहिएं, और जब कोई गम्भीरता से और पूरी तन्मयता के साथ उन शर्तों को पूरा करने के लिए तैयार होता है, तब व्यक्ति के जीवन में उन सम्बन्धों की उपलब्धि इतने व्यापक रूप में प्रकट होती है कि उसके मन में कहीं सन्देह को स्थान नहीं रहता। तब परमात्मा उसके लिए इतने निकट की और इतनी बड़ी निजी अनुभूति बन जाती है कि उसका विश्वास ही विकसित होकर ज्ञान का रूप धारण कर लेता है।

——

मैरिट स्टेनली कौंगडन

गुलाब के पौधे की सीख

प्रकृति विज्ञानी और दार्शनिक

पी-एच० डी०, एस-सी० डी०, वेस्टर विश्वविद्यालय ; एस० टी० डी०, बर्टन विश्वविद्यालय, वेसिक साइंस के भूतपूर्व प्रोफेसर, ट्रिनिटी कालेज, फ्लोरिडा। अमेरिकन फिजिकल सोसायटी, मिडीवल एकेदमी आव अमेरिका के तथा अन्य अनेक वैज्ञानिक संगठनों के सदस्य। मनोविज्ञान, भौतिकी, फिलासफी आफ साइंस और बाइबिल सम्बन्धी गवेषणा के विशेषज्ञ।

× × ×

कई साल पहले की बात है। पैन्सिलवानिया में, एक एकान्त सड़क के किनारे मैंने फूलों से लदी एक गुलाब की झाड़ी देखी। जब बाद में मैं उस स्थान से गुजरा, तब मैंने उस झाड़ी के पास एक तहखाने की ढहती दीवार देखी जो कांटेदार झाड़ियों और जंगली घास से अंटी पड़ी थी। कम से कम आधा मील तक वहां कोई इमारत नहीं थी। गुलाब की यह झाड़ी किसी बीज से, या हवा, पानी, चिड़िया या किसी जानवर द्वारा लाई गई किसी दूरस्थल गुलाब की किसी कलम से अचानक ही पैदा हो गई और फूलों से लदकर हंसने लगी, इस बात को सर्वथा असम्भाव्य समझकर मैं सहज ही अन्त स्फूर्ति से यह जान गया कि किसी परिपक्व मानवीय हाथ ने अपने घर के पास सावधानी से इसे लगाया है। मैंने उस पौधे को लगाए जाते नहीं देखा, न ही परामर्श के लिए मेरे पास कोई ऐतिहासिक स्रोत था, किन्तु मैं यह अनिवार्य निष्कर्ष निकालने को बाध्य हो गया कि यह पौधा इस स्थान पर और इस दशा में किसी मानवीय माध्यम से और मानवीय हस्तक्षेप से ही पहुंचा है।

शुरू-शुरू में, विज्ञान के क्षेत्र में इस प्रकार के अनुमान के प्रयोग की हम शायद भर्त्सना करें, किन्तु यह तथ्य जानकर हम शीघ्र घपले में पड़ जायेंगे कि यह बिलकुल उसी ढंग की साक्षी है जिस पर हमारा सबसे पुराना प्राकृतिक विज्ञान, ज्योतिष, टिका हुआ है। परीक्षणात्मक खोज के लिए हम आकाश-गंगा को या ग्रह और नक्षत्रों के पुंज को उनके अयनवृत्तों से खींच कर नहीं ला सकते। हम ब्रह्माण्ड किरणों (cosmic rays) को घटनास्थल से हटा नहीं सकते। डोपलर

इफेक्ट (दूरी के आधार पर शब्द की संख्या और प्रकाश की तरंगों में परिवर्तन) सम्भवत : बहुत बड़ी दूरी से मूलतः प्रभावित होता हो और विशाल दूरी पर स्थित नीहारिका की लगातार बढ़ती तीव्र गति सम्भवतः 'ब्रह्माण्ड के पर्दे' के परे प्रकाश को भी इतना पीछे छोड़ जाए कि तारापुंज की और अधिक झांकी भी न पाई जा सके। परन्तु इन बातों को न हम बदल सकते हैं, न उनमें सुधार कर सकते हैं। हम उनको दूर से देख ही सकते हैं, किन्तु उन पर परीक्षण नहीं कर सकते।

इसलिए, तारापुंजों में इस प्रकार की प्रक्रियाओं में हमें सम्भाव्यता पर ही निर्भर रहना होगा, जैसे कि परमाणुओं के प्रारम्भिक अवयवों में स्थूल पिण्ड और ऊर्जा (mass and energy) का नियमन करने वाले नियमों के सम्बन्ध में हमें सम्भाव्यता पर ही निर्भर रहना पड़ता है। यद्यपि हम तारों को और निहारिकाओं को देख सकते हैं और उनकी प्रतीयमान तथा वास्तविक गतियों में भेद कर सकते हैं, किन्तु अब तक हम परमाणु के किसी भी भाग का प्रत्यक्ष दर्शन तक नहीं कर सके हैं। और फिर भी, जो प्रथम अणुबम विस्फोट हुआ था उसने अदृश्य परमाणु के कार्यकलाप और उसकी रचना के सम्बन्ध में हमारी सैद्धान्तिक व्याख्याओं की पूरी तरह पुष्टि कर दी। तारापुंज और परमाणु—इन दोनों प्रकार के गुटों की व्याख्या उनके कार्य-कलाप से ही की जा सकती है, और उन पर परीक्षण करने के बजाय उनके सम्बन्ध में तर्कसंगत परिणाम ही निकाले जा सकते हैं'

निस्सन्देह, ब्रह्माण्ड का यह जितना बाह्य प्रपञ्च है उसमें वही शक्तियां होनी चाहिएं जो हमारे आन्तरिक जगत् में हैं। इसका अर्थ यह है कि विश्व की रचना में कहीं न कहीं वह तत्व होना चाहिए जिसे हम 'पुरुष' कहते हैं। इस प्रकार की व्यवस्था में ऐसी चीज की सहायता की आवश्यकता होगी जो स्वयं भौतिक नहीं है, या प्रकृति की सीमा से परे हैं, तभी विविध सत्ता की पुष्टि के लिए युक्तियुक्त आधार बन सकता है, क्योंकि व्यवहारवादी मनोविज्ञान स्वयं उसके लिए कोई आधार नहीं प्रदान कर सकता।

मैंने बहुत बार अपने विद्यार्थियों से कहा है कि मुझे 'विचार' का सही रासायनिक फार्मूला बताओ, वह ठीक-ठीक कितने सेंटिमीटर लम्बा है, वह ठीक-ठीक कितने ग्राम वजन का है, उसका रंग कैसा है, शक्ल-सूरत कैसी है, उसके कार्यक्षम दबाव और आन्तरिक तनाव कितने हैं, उसका 'क्षेत्र' क्या है, उसका निवास स्थान कौन सा है, उसकी दिशा क्या है और उसके स्पन्दन की गति क्या है। किसी भी भौतिक परिभाषा, फार्मूले या अनुपात में वे उसका बयान नहीं कर सके। एक नई शब्दावलि का प्रयोग किया गया जिसमें भौतिकी या रसायन शास्त्र द्वारा स्वीकृत 'लक्षणों' का अभाव था और जिसका अर्थ भी भौतिक विज्ञान की शब्दावलि के परम्परागत अर्थ से भिन्न था।

इस समस्या को हंस कर नहीं टाला जा सकता, क्योंकि यह विश्व-प्रपंच यदि दो तत्वों से न बना होता तो मानवीय 'विचार' पर कभी गम्भीरता से विचार करने की आवश्यकता ही न पड़ती। और विचार में जो विशुद्ध भौतिक तत्व है यदि उसे

भी 'एक' ही तत्व से बना मानने का आग्रह किया जाए तो हमें उसका भी भौतिक परिभाषाओं में पूरा वर्णन करना होगा। ऐसा आज तक कभी नहीं किया गया। डेमोक्रिटप्स, हौब्स, या आधुनिक व्यवहारवादियों के जितने भी जड़वादी गृहीत सिद्धान्त माने जाते हैं, या लीवनिज, बर्कले या हेगल के जितने भी प्रत्ययवादी पूर्व-कल्पित सिद्धांत हैं, उन सब का जहां तक परीक्षात्मक सच्चाई से सम्बन्ध है, वे सब केवल आनुमानिक प्राक् कल्पनाएं हैं बल्कि उनका कोई पर्यवेक्षणात्मक आधार भी नहीं है। प्रकृति सम्बन्धी किसी भी तत्व चिन्तन की सचाई को तब तक चुनौती दी जाती रहेगी, और दी जानी चाहिए, जब तक वह तत्व दर्शन पर्याप्त युक्तियुक्त ऐसी उपपत्ति प्रस्तुत नहीं करता जो प्राकृतिक जगत् के सभी तत्वों और तथ्यों के सभी प्रकारों का समाधान कर सके।

विज्ञान यद्यपि परीक्षित ज्ञान का नाम है, परन्तु अब भी उसमें लोगों के मानसिक चापल्य, भ्रमों और यथार्थताओं का स्थान है। वह केवल अपने क्षेत्रों की सीमाओं में ही बद्ध है। वर्णन करने या पूर्व-कथन करने के लिए केवल प्रभूत मात्रा में सामग्री जुटाने तक ही वह सीमित है। वह सम्भाव्यता से ही प्रारम्भ होता और सम्भाव्यता में ही समाप्त होता है, निश्चयात्मकता में नहीं। उसके परिणाम केवल शुद्धि की समीपता के ही द्योतक होते हैं इसलिए उनमें 'सम्भावित भूल' की गुंजायश हो सकती है, खास कर नाप-जोख और पैमाइश के कामों में। उसके निष्कर्ष अस्थायी होते हैं और प्रायः नई उपलब्धियों से उनमें संशोधन होता रहता है। वैज्ञानिक अनुमानों में 'अन्तिमता' नहीं होती। वैज्ञानिक तो कहता ही यह है : 'अब तक प्राप्त तथ्यों का निष्कर्ष यह है, सिर्फ अब तक, और बस।'

विज्ञान ऐसे स्वयंसिद्ध विचारों से प्रारम्भ होता है जिनसे इन्कार नहीं किया जा सकता और जो खास तौर से भौतिक सत्यों पर अवलम्बित नहीं होते। इस प्रकार विज्ञान के क्रमबद्ध ज्ञान का प्रासाद दार्शनिक आधार पर ही खड़ा होता है। धर्म और दर्शन के समान, विज्ञान में भी निजी अनुभव सच्चाई की अन्तिम कसौटी है और वही अन्तिम निर्णायक सिद्ध होता है। यदि कोई वैज्ञानिक कोई एक अनुमान स्थापित करता है तो वह सभी वैज्ञानिकों के लिए सच होता है और सब उसको वैसा ही मानते हैं। फिर भी प्राकृतिक जगत् की घटनाओं और क्रियाओं के सम्बन्ध में व्यक्ति का ज्ञान अत्यन्त सीमित और सापेक्ष ही होता है।

परन्तु इन सीमाओं से भी वैज्ञानिक प्रयत्नों की सचाई और उनका रचनात्मक मूल्य नष्ट नहीं होता और वे प्रयत्न परिणामों पर पहुंचने में सहायक ही होते हैं। कहने का सार यह है कि प्राकृतिक विज्ञान सीधे तौर से उन समस्याओं पर विचार नहीं कर सकता जिनमें पदार्थ की सत्ता के सम्बन्ध में संश्लेषणात्मक या विश्लेषणात्मक सामग्री का ही अभाव हो। 'क्या परमात्मा है?'—यह प्रश्न भी आपाततः वैसी ही समस्या है। किन्तु यदि भौतिक वास्तविकताओं से आत्मिक वास्तविकताओं की निश्चित टक्कर होती

है तो इस तथ्य पर प्राकृतिक विज्ञान को विचार करना होगा और इस पर प्रभावपूर्ण ढंग से विचार करने के लिए कोई भी वैध उपाय स्वीकार करना पड़ेगा।

इस बात के अनेक संकेत हैं कि प्रकृति और विज्ञान की प्रक्रियाएं, भले ही वे अभौतिक सत्ताओं के कार्यकलाप के सम्बन्ध में न पूरी तरह पुष्टि करें और न पूरी तरह खण्डन करें, उन सत्ताओं की सम्भाव्यता से इन्कार नहीं करतीं जो विशुद्ध भौतिक संसार से परे की हैं। जैसे युक्तियुक्त मूल्यों से निर्मित इस संसार में हमें अपनी बुद्धि पर अविश्वास नहीं होता, वैसे ही, इलेक्ट्रोन के अयन में घण्टी के आकार के मोड़ में भी कोई बुद्धिपूर्वक नियन्त्रण है या वह भी वैसी ही युक्तियुक्त कार्रवाई है, इस पर हमें क्यों अविश्वास करना चाहिए। इसी प्रकार यह क्यों न माना जाए कि 'समुद्री जलधाराओं के चक्र' में, 'कार्बन डाई ओक्साइड के चक्र' में, प्राणियों की आश्चर्यजनक प्रजनन-प्रक्रिया में, और पृथ्वी पर के जीवित प्राणियों के लिए सौर-शक्ति-संग्रह आदि की अनन्त क्रियाओं में भी वैसा ही बौद्धिक नियन्त्रण है। बिना किसी बुद्धि-प्रधान माध्यम के इस प्रकार की प्रक्रियाओं की हम दैवाधीन या स्वेच्छाचारिता-पूर्ण शुरूआत कैसे मान सकते हैं? इस गतिशील विश्व-प्रपंच के लिए जो कार्यकारणता, परस्पर-सम्बद्धता, सन्तुलन, संकोचन, संरक्षण, प्रसारण, घात-प्रतिघात और क्रिया-प्रतिक्रिया अपेक्षित है और जो युग युगान्तर तक चलती रहती है, वह बिना किसी बुद्धि के कैसे सम्भव है? यदि कोई बुद्धिमान स्रष्टा न हो जो अपनी सृष्टि के माध्यम से और उसके अन्दर कार्य करे, तो ये सब क्रियाएं समस्त प्रकृति के अन्दर कैसे जारी रह सकती हैं?

इस विचित्र, गतिशील, बुद्धि को चकित करने वाले विश्व-प्रपंच के रहस्यों में अभी किसी ऐसे तथ्य का आविष्कार नहीं हो पाया है जो किसी भी तरह से एक बन्धन-रहित पूर्ण पुरुष परमात्मा के बुद्धिपूर्ण कृत्यों का या उसकी सत्ता का खण्डन करता हो। इसके विपरीत, जब सावधान वैज्ञानिकों के रूप में हम प्राकृतिक संसार की उपलब्ध तत्व सामग्री का संश्लेषण और विश्लेषण करते हैं, तब पाते हैं कि हम केवल उस अदृश्य सत्ता के लीला-विलास का ही अवलोकन कर रहे हैं, जो केवल वैज्ञानिक खोज से प्राप्त नहीं की जा सकती, किन्तु जो मानव के रूप में अपने आपको प्रकट करती है*

क्योंकि विज्ञान वस्तुतः ईश्वर की कृति का अवलोकन' ही है।

---

* इस प्रसंग में उपनिषद् का यह मन्त्र स्मरणीय है : 'नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन। यमेवैष वृणुते तेनैव लभ्य :....।'—इस आत्मा का साक्षात्कार न प्रवचन से होता है, न मेधा से, न बहुत पठन-पाठन से। इसका साक्षात्कार तो उसी को होता है जिस पर यह स्वयं कृपा करता है।—अनुवादक।

जान क्लीवलैण्ड कोथरान

जिस निष्कर्ष से बचा नहीं जा सकता

गणितज्ञ और रसायनशास्त्री

पी० एच० डी०, कौनैंल विश्वविद्यालय। कोंनैंल विश्वविद्यालय के भूतपूर्व प्राध्यापक और डुलुथ स्टेट टीचर्स कालेज में भौतिक विज्ञान विभाग के अध्यक्ष। उसके बाद मिनेसोटा विश्वविद्यालय में रसायन शास्त्र के प्रोफेसर और विज्ञान तथा गणित विभाग के अध्यक्ष, कैन्सास स्टेट टीचर्स कालेज में रसायन शास्त्र के प्राध्यापक। अमोनियम ट्रिनिट्राइड टेटराजोल को तैयार करने के विशेषज्ञ।

× × ×

संसार के महानतम वैज्ञानिकों में से एक, लॉर्ड कैल्विन, ने यह महत्वपूर्ण बात कही है: 'यदि तुम काफी गम्भीरता से विचार करो, तो विज्ञान तुम्हें ईश्वर में विश्वास करने को बाध्य कर देगा।' मैं भी इस वक्तव्य से अपनी पूरी सहमति घोषित करता हूँ।

इस समय संसार के बारे में जो भी कुछ बुद्धिग्राह्य और जानकारी-पूर्ण ढंग ज्ञात है वह कुल मिलाकर यह प्रकट करता है कि कम से कम वास्तविकता के तीन साम्राज्य हैं। इनमें से एक है भौतिक (पदार्थ), दूसरा है बौद्धिक (दिमाग़) और तीसरा हैरूहानी (आत्मा)।

इस विचार में रसायनशास्त्र के क्षेत्र का जो योग है वह जरूरी तौर से सीमित होगा, क्योंकि उसका सम्बन्ध तीनों में से केवल एक के ही साथ है।

रसायनशास्त्र का सम्बन्ध क्योंकि पदार्थ की रचना और उस रचना में परिवर्तन से है, साथ में ऊर्जा द्वारा रचना में होने वाला परिवर्तन और द्रव्य तथा ऊर्जा का पारस्परिक अन्त.परिवर्तन भी उसमें शामिल है, इसलिए यह शास्त्र स्पष्टतः भौतिक है और एक तरह से सर्वथा आत्माविहीन विज्ञान है। तब इससे यह कैसे आशा की जा सकती है कि यह किसी सर्वोच्च आत्मिक सत्ता, ईश्वर, के सृष्टिकर्ता और सृष्टि-नियामक के रूप में कोई प्रमाण दे सकेगा? इस प्रकार का विज्ञान इस

विचार में भी कैसे सहायक हो सकता है कि जगत् केवल अकस्मात् ही अस्तित्व में आ गया, या अकस्मात् द्वारा ही उसका शासन होता है और उसमें जो भी कुछ घटित होता है वह विना किसी नियम के अकस्मात् के ही कारण होता है ?

गत सौ वर्षों में, रसायनशास्त्र समेत समस्त भौतिक विज्ञानों में जो भारी उन्नति हुई है वह द्रव्य और ऊर्जा के अध्ययन में मुख्यत: 'वैज्ञानिक विधि' के प्रयोग से ही हुई है। इस अध्ययन का जितना परीक्षणात्मक भाग है उसमें प्रत्येक प्रयत्न किया जाता है कि इस बात की समस्त सम्भावनाएँ समाप्त कर दी जाएं कि प्राप्त परिणाम किसी भी तरह अकस्मात् के कारण हैं। इस अध्ययन से अतीत में सतत रूप से यह विदित हुआ है, और अभी तक यह पता लगता है कि, अतीन्द्रिय द्रव्य भी अनियमित बिल्कुल नहीं है, प्रत्युत इसके विपरीत वह निश्चित 'प्राकृतिक नियमों' का 'आज्ञा पालन' करता है। उसकी सत्ता के या उसकी कार्यविधि के किसी भी कारण की खोज से पहले इस नियम की सत्यता सिद्ध हो चुकी है। किन्तु एक वार जब वे अवस्थाएं पता लग गईं जिनमें उस नियम की सत्यता सिद्ध हुई, तब रसायनशास्त्रियों को यह पूरा विश्वास हो गया कि उसी प्रकार की अवस्थाओं में वही परिणाम पैदा करने के लिए नियम अपना काम जारी रखेगा। यदि द्रव्य और ऊर्जा का व्यवहार अस्तव्यस्त और अनियमित होता या अकस्मात् द्वारा शासित होता, तो वैज्ञानिकों को यह विश्वास कदापि न होता। और जब अन्त में वह कारण पता लग गया कि क्यों अमुक नियम विद्यमान है और कार्य करता है, तो अनियमितता की सुदूरस्थ सम्भावना भी समाप्त हो गई।

एक सदी पहले, महान् रूसी रसायनशास्त्री मेण्डलेजेफ ने आणविक भार बढ़ाने के क्रम में रासायनिक तत्वों की जो व्यवस्था बताई थी, क्या वैसे ही गुण धारण करने वाले तत्वों के घटन की कालावर्तिता को केवल अकस्मात् कह कर बयान किया जा सकता है ? यदि ऐसा था, तो जिन तत्वों की उपस्थिति की उसने भविष्य-वाणी की थी और यह भी पहले ही बता दिया था कि उन तत्वों में ऐसे-ऐसे गुण होंगे, उससे ऐसी सम्भावना और भी समाप्त हो गई। उसके उस महान् सिद्धान्त को (यद्यपि बाद में उसमें कुछ संशोधन और परिवर्धन हुआ) कभी 'कालावर्ती अकस्मात्' नहीं कहा गया। बल्कि इसके स्थान पर वह बाकायदा 'कालावर्ती नियम' है।

और फिर, तब के वैज्ञानिकों ने क्या कभी इस तथ्य को भी अकस्मात् का परिणाम बताया कि किसी 'क' नामक तत्व के परमाणु 'ख' नामक तत्व के परमाणुओं के साथ तो तुरन्त प्रतिक्रिया करते हैं, किन्तु 'ग' नामक तत्व के परमाणुओं के साथ बिल्कुल नहीं करते ? नहीं। इसके बजाय उन्होंने यह कहा कि ऐसी कोई शक्ति या 'सजातीय स्निग्धता' है जो 'क' तत्व के सभी परमाणुओं और 'ख' तत्व के सभी परमाणुओं में जोर से कार्य करती है, किन्तु 'क' तत्व के परमाणुओं और 'ग' तत्व के परमाणुओं के मध्य उस स्निग्धता का सर्वथा अभाव है।

फिर, वे जानते थे कि क्षार (ऐल्कली) धातुओं के परमाणुओं की रासायनिक प्रतिक्रिया की दर क्या है, अर्थात् समाक्षारीय धातुओं का आणविक भार बढ़ने के साथ ही पानी के साथ उनकी रासायनिक प्रक्रिया बढ़ जाती है, जबकि हैलोजन परिवार की विभिन्न धातुओं के परमाणुओं के साथ इससे उल्टी बात होती है। इसका कारण कोई नहीं जानता, किन्तु इस प्रतीयमान परस्पर विरोधी व्यवहार को कमी किसी ने अकस्मात् का परिणाम नहीं बताया और न ही कभी किसी ने यह तर्क किया कि शायद अगले महीने ये विभिन्न किस्मों के परमाणु उसी गति से प्रक्रिया करेंगे, या बिल्कुल नहीं करेंगे, या विपरीत क्रिया करेंगे, या किसी पूर्णतः अनियमित ढंग से क्रिया करेंगे।

परमाणु की बनावट के ढांचे की खोज से अब यह बात प्रकट हो गई है कि रासायनिक व्यवहार के इन सब उदाहरणों में निश्चित नियम काम करते हैं, न कि अस्तव्यस्तता, नियमशून्यता या आकस्मिकता।

जो १०२ ज्ञात रसायनिक तत्व हैं ज़रा उनके बारे में और उनकी आश्चर्य-कारक समानताओं और भिन्नताओं के बारे में सोचिये। कुछ रंगीन हैं, कुछ रंगहीन हैं, कुछ ऐसी गैसें हैं जिन्हें द्रव बनाना या ठोस बनाना अत्यन्त कठिन है, अन्य पहले से ही द्रव हैं, जबकि अन्य कुछ ऐसे ठोस तत्व हैं जिन्हें द्रव बनाना या उन्हें वाष्प बनाना अत्यन्त कठिन है, कुछ अत्यन्त कठोर हैं, कुछ अत्यन्त हल्के हैं, कुछ अत्यन्त भारी हैं, कुछ ताप के उत्तम सुवाहक हैं कुछ सुवाहक नहीं हैं, कुछ चुम्बकीय है, कुछ चुम्बकीय नहीं हैं, कुछ अत्यन्त प्रतिक्रियाशील हैं, कुछ सर्वथा प्रतिक्रियाशून्य हैं, कुछ तेजाब बनातेहैं, कुछ समाक्षार (बेस base) बनाते हैं, कुछ की आयु बहुत लम्बी होती है, और कुछ एक सेकण्ड के भी लघु खण्ड तक ही विद्यमान रहते हैं। किन्तु ये सब उस नियम की पुष्टि करते हैं, जिसे हमने अभी पहले 'नियत कालिकता का नियम' या 'कालावर्तिता का नियम' कहा है।

फिर भी, इस सब उलझन के बावजूद, १०२ तत्वों में से प्रत्येक तत्व के परमाणू में वही तीनों वैद्युतिक अंश होते हैं। प्रोटीन (घनात्मक), इलेक्ट्रोन (ऋणात्मक), और न्यूट्रोन (जिसमें किसी तरह से एक प्रोटोन और एक इलेक्ट्रोन का मेल होता है), किसी खास परमाणु के सब प्रोटोन और न्यूट्रोन उसकी केन्द्रीय 'नाभि' (न्यूक्लियस) में स्थित होते हैं, सब इलेक्ट्रोन, जिनकी संख्या प्रोटोनों की संख्या के बराबर ही होती है, अपने अक्ष पर घूमते हैं और नाभि के चारों ओर उससे अपेक्षाकृत काफी दूरी पर विभिन्न 'अयनों' पर चक्कर लगाते हैं—जैसे कि यह एक छोटा-सा सौर मण्डल ही हो—और परमाणु का अधिकांश आयतन केवल 'रिक्त स्थान' मात्र रहता है जैसे कि सौर मण्डल में होता है। और शायद यह बात अविश्वसनीय रूप से सरलीकृत प्रतीत हो, कि किसी एक तरह के तत्व के एक परमाणु में और किसी दूसरी तरह के तत्व के एक परमाणु में अन्तर केवल नाभि में प्रोटोनों (और न्यूट्रोनों) की संख्या में और नाभि के बाहर के इलेक्ट्रोनों की संख्या

में अन्तर के कारण होता है ! लाखों प्रकार के जितने पदार्थ हैं, भले ही वे तत्व हों चाहें समास, उन सबमें यही तीनों वैद्युतिक अंश अवश्य मिलेंगे, जो असल में एक ही मुख्य सत्ता, विद्युत्, के विभिन्न रूपान्तर हैं, और जो अन्त में एक ही चीज़ के विभिन्न रूप या गुण या विशेषताएं हैं : वह चीज है ऊर्जा।

अब, अणुओं और परमाणुओं के संघात के रूप में द्रव्य, स्वयं अणु और परमाणु, उनके प्रोटोन, इलेक्ट्रोन और न्यूट्रोन नामक भाग, विद्युत्, और स्वयं ऊर्जा—ये सब कुछ निश्चित नियमों का पालन करते हैं, न कि अकस्मात् के आदेशों का। यह सिद्धान्त इतना सत्य है कि १०१ वें तत्व के १७ परमाणु उसकी पहचान के लिए काफी हैं। निर्विवाद रूप से यह भौतिक विश्व एक व्यवस्था और क्रम का विश्व है, अव्यवस्था का नहीं, नियमों का विश्व है, अकस्मात् और अनियमितता का नहीं।

क्या कोई ज्ञानवान् और विचारशील व्यक्ति इस बात पर विश्वास कर सकता है कि अतीन्द्रिय और चेतनतारहित द्रव्य अकस्मात् से ही स्वयं उद्भूत हो गया, और एक के बाद एक यह क्रमबद्धता भी अकस्मात् ही हो गई ? निश्चय ही इसका उत्तर है—'नहीं।' जब ऊर्जा 'नए' द्रव्य के रूप में बदलती है, तब यह रूपान्तर 'नियम के अनुसार' होता है और नव-निर्मित द्रव्य भी उन्हीं नियमों का पालन करता है जो पहले से विद्यमान द्रव्य पर लागू होते हैं।

रसायनशास्त्र यह रहस्योद्घाटन करता है कि द्रव्य का अस्तित्व समाप्त होता जा रहा है, कुछ प्रकार के द्रव्यों का बहुत तेजी से और कुछ का बहुत धीमे-धीमे। इसलिए द्रव्य का अस्तित्व शाश्वत नहीं है। इसका अर्थ यह हुआ कि उसका अन्त है। तो कभी-न-कभी उसका आदि भी होना चाहिए। रसायनशास्त्र तथा अन्य विज्ञानों की साक्षी का संकेत यह है कि यह शुरूआत धीरे-धीरे या क्रमशः नहीं हुई, बल्कि इसके विपरीत, एकदम हुई, और इस साक्षी से उस निकटतम काल का भी संकेत मिलता है जब यह शुरूआत हुई। इस प्रकार निष्कर्ष यह निकला कि किसी निश्चित समय में भौतिक जगत् की सृष्टि हुई और तभी से ये सब पदार्थ उन नियमों का पालन कर रहे हैं, किसी अकस्मात् के आदेशों का नहीं।

यह भौतिक प्रपंच अपनी रचना या अपने नियमों की रचना अपने आप नहीं कर सकता, इसलिए सृष्टि-रचना का यह कार्य किसी अभौतिक माध्यम द्वारा होना चाहिए। इस कार्य में जो विशाल चमत्कार दृष्टिगोचर होते हैं उनसे यह पता लगता है कि उस माध्यम में सर्वोत्कृष्ट बुद्धि होनी चाहिए, जो केवल चेतन का ही गुण है। और चेतन को भौतिक प्रपंच में कार्यरत करने के लिए वैसे ही इच्छा के प्रयोग की आवश्यकता है जैसे कि चिकित्सा या परामनोविज्ञान के क्षेत्र में, और ऐसी इच्छा का प्रयोग कोई पुरुष ही कर सकता है। इसलिए हमारा तर्कसंगत और जिससे बचा नहीं जा सकता वह निष्कर्ष यह है कि न केवल सृष्टि की रचना हुई, प्रत्युत किसी ऐसे

पुरुष की इच्छा और योजना के अनुसार सृष्टि की रचना हुई जिसमें बुद्धि और ज्ञान की पराकाष्ठा थी (सर्वज्ञ), जिसमें अपनी योजना के अनुसार इसके रचने और इसे जारी रखने का सामर्थ्य था (सर्वशक्तिमान्), और जो सर्वत्र और समस्त विश्व भर में उसे लागू कर सकता था (सर्व व्यापक)। इसका अर्थ यह है कि बिना किसी संकोच के हम 'सर्वोच्च आत्मतत्व, ईश्वर, विश्व के रचयिता और नियामक' के अस्तित्व के तथ्य को स्वीकार करते हैं, जैसा कि इस अध्याय के शुरू में वर्णन किया गया है।

लार्ड कैल्विन के युग से लेकर अब तक विज्ञान में जो और प्रगति हुई है उसके आधार पर वह और जोर से कह सकता था : 'यदि तुम काफी गम्भीरता से विचार करो, तो तुम विज्ञान के द्वारा ईश्वर में विश्वास करने को बाध्य होगे।'

——

डोनाल्ड हेनरी पोरटर

लाजवाब सवालों का जवाब

गणितज्ञ एवं भौतिकीविद्

वी० एस० सी०, मैरियन कालेज। पी-एच० डी०, इंडियाना विश्वविद्यालय। इंडियाना विश्वविद्यालय के भूतपूर्व फैलो। मैरियन कालेज में गणित और भौतिकशास्त्र के प्रोफेसर। कांटेक्ट ट्रान्सफारमेशन के विशेषज्ञ।

× × ×

जैसे कोई व्यक्ति ज्यामिती में पाइथागोरस के साव्य (थ्योरम) को सिद्धकर देता है, वैसे ही यदि कोई व्यक्ति परमात्मा की सत्ता को सिद्ध कर दे, तब परमात्मा में विश्वास करना ही पड़ेगा। उस प्रकार की कोई सिद्धि (इल) नहीं है, ऐसा मैं विश्वास करता हूं। दूसरी ओर, विज्ञान मुख्यतया असिद्ध नियमों और सिद्धान्तों पर आधारित है। सिद्धि का यह अभाव किसी को भी इन नियमों का प्रयोग करने से नहीं रोकता क्योंकि वे नियम विभिन्न स्थितियों पर लागू हो सकते हैं। अतिप्राकृत जगत् में प्रमाण की अपेक्षा रखना युक्तियुक्त नहीं है, जबकि प्राकृतिक जगत् में ही प्रमाणों का अभाव है।

भौतिकी शास्त्र में जिन प्रश्नों के सबसे अच्छे उत्तर दिये जा सकते हैं वे 'कैसे' शब्द सें आरम्भ होते हैं। भौतिकी शास्त्र में उपलब्धियों का वर्तमान स्तर बहुत से उन प्रश्नों का, जो 'क्यों' शब्द से आरम्भ होते हैं, उत्तर नहीं देता। 'कैसे' वाले प्रश्नों के उत्तर शायद सत्य के केवल आस पास होते हैं। कैसे दो पिण्ड एक दूसरे को आकर्षित करते है—यह न्यूटन के गुरुत्वाकर्षण के सार्वत्रिक नियम में अच्छी तरह वर्णन किया गया है। लेकिन दो पिण्ड क्यों एक दूसरे को आकर्षित करते हैं, इसका कोई उत्तर नहीं है। गुरुत्वाकर्षण की शक्ति हमें पृथ्वी पर और हमारी पृथ्वी को सूर्य के चारों ओर अपने अयन पर बनाए रखती है। लेकिन तभी अनुमान का काम शुरू हो जाता है। यदि दो पिण्डों के बीच की दूरी बहुत अधिक हो, तो गुरुत्वाकर्षण का नियम भी बदल जाता है और तब वहां आकर्षण के बजाय विकर्षण की शक्ति काम करने लगती है।

विद्युत् से आविष्ट पिण्डों में काम करने वाली शक्तियों को नियन्त्रित करने के सम्बन्ध में एक स्वीकृत नियम है। इस प्रकार के विद्युत् के आवेश धनात्मक या ऋणात्मक आवेश के रूप में जाने जाते हैं। नियम यह है कि यदि ये आवेश विरोधी चिन्ह के हैं तो वहां आकर्षण की शक्ति काम करती है, और यदि वे समान चिन्ह के हैं तो विकर्षण की शक्ति काम करती है। किसी भी हालत में वह शक्ति उन आवेशों के गुणनफल के सीधे समान अनुपात में, और उन आवेशों की दूरी के वर्ग के विपरीत अनुपात में ही होगी। हमारा विश्वास है कि एक परमाणु के केन्द्र (न्युक्लियस) में धनात्मक विद्युत् से आविष्ट कण ही होंगे जो प्रोटीन कहलाते हैं। किन्तु जब हम किसी परमाणु केन्द्र की छोटी सीमाओं में पहुंच जाते हैं तब नियम विफल हो जाता है। और हमें शक्ति का एक नया नियम मानना पड़ता है। यह नियम 'नाभिक शक्ति' (न्यूक्लियर फोर्स) कहलाता है। इस प्रकार मनुष्य द्वारा प्रकृति को वर्णित करने का प्रयत्न भी पूरा नहीं पड़ता जब वह किसी खूब बड़ी या खूब छोटी चीज़ का वर्णन करने लगता है।

ऐसा प्रतीत होता है कि अधिकांश वैज्ञानिक भौतिक प्रपंच का और उसके उद्गम का ईश्वर को तस्वीर में कहीं लाए बिना ही वर्णन करने में स्वयं को बाधित अनुभव करते हैं। प्रसिद्ध ब्रिटिश गणितज्ञ एवं दार्शनिक बर्ट्रेण्ड रसेल ने निश्चयपूर्वक कहा था कि परमात्मा नाम की कोई चीज़ नहीं है, क्योंकि मैं 'परमात्मा को किसने बनाया ?' इस प्रश्न का उत्तर नहीं दे सकता। इसमें कोई संशय नहीं कि रसेल की विचार-प्रक्रिया बहुत गहराई तक और दूर तक गई, परन्तु इस प्रश्न के उत्तर की मांग करना क्या उचित है—जबकि लगभग प्रत्येक वैज्ञानिक प्रक्रिया अनुत्तरित प्रश्नों की ओर ही ले जाती है ? जहाँ तक मेरा सम्बन्ध है, मैं ईश्वर को तस्वीर में रखता हूँ, क्योंकि युक्ति और तर्क का यही तकाजा है।

जहाँ तक अनुत्तरित प्रश्नों का सम्बन्ध है, विश्व के सम्बन्ध में दो सिद्धान्त हैं जो वर्तमान समय में व्यापक रूप से मान्य हैं। लेकिन उन पर दृष्टिपात करने से पहले कुछ प्रारम्भिक टिप्पणी करना आवश्यक है।

हमारे इस संसार की आम बातों का देश में उसके विस्तार और काल में उसके फैलाव का अध्ययन करना सृष्टि-विज्ञान है। माउण्ट पालोमार स्थित २०० इंच की विशाल दूरबीन से मनुष्य आकाश में दस अरब से भी अधिक प्रकाश-वर्ष तक और लगभग दस अरब तारा पुंजों तक को देखने में समर्थ हुआ है। दूरी नापने की इकाई के रूप में प्रकाश-वर्ष का अर्थ है वह दूरी जितनी एक सेकण्ड में १,८६,००० मील प्रति सेकण्ड की गति से प्रकाश एक वर्ष में पूरी करता है। आकाश की यदि आज कोई फोटो ली जाए तो उसमें तारों की वैसी स्थिति दिखाई देगी जैसी तब थी जब प्रकाश उनसे रवाना हुआ था, कदाचित् आज से लाखों वर्ष पहले की स्थिति।

जिस विचार की दृढ़ स्थापना हो चुकी है, वह यह है, कि संसार फैल रहा है। किसी शीशे के परशुक या प्रिज़्म में से जब कोई इन्द्रधनुष के रंगों को देखता है तब यदि रंगों का लगातार फैलाव करने के लिए वे रंग परस्पर विलीन हो जाएं तो वे सतत वर्णक्रम या कण्टिन्युअस स्पैक्ट्रम कहलाते हैं। वर्ण-क्रमिकी या स्पैक्ट्रोस्कोपी का विज्ञान इसी तथ्य पर आधारित है कि तत्व अपने विशिष्ट वर्णक्रम के द्वारा पहचाने जाते हैं। किसी तत्व का स्पेक्ट्रम तत्व से सम्बद्ध प्रकाश के अलग-अलग रंगों में, जिनका वितरण और सघनता तत्व की निशानी बन जाते हैं, वर्तन या रिफ्रेक्शन से बनता है। हरेक तत्व के अलग-अलग स्पेक्ट्रम की व्यवस्था के कारण ही एक तत्व की खोज पृथ्वी पर होने से पहले सूर्य पर हो गई और उसका नाम हीलियम रखा गया। हीलियम नाम ग्रीक भाषा के हीलियोस शब्द के आधार पर रखा गया है, जिसका अर्थ सूर्य होता है। स्पैक्ट्रम का उसके लाल सिरे की ओर वर्तन रेड-शिफ्ट (red shift) कहलाता है और वह यह बताता है कि प्रकाश का स्रोत पर्यवेक्षक से दूर जा रहा है। दूरवर्ती तारापुंजों के पर्यवेक्षण से यह थ्योरी निकली है कि विश्व फैल रहा है और आकाशगंगाएं बाहर की ओर सरक रही हैं।

अभी ऊपर दो प्रमुख मतों की चर्चा की गई है। इनमें से एक मत है आल्फर और गैमो का, जिसके अनुसार विश्व विकसित होता है, और दूसरा मत है होइल का, जिसके अनुसार विश्व स्थिर-अवस्था में रहता है अर्थात् ज्यों का त्यों रहता है, उसका विकास नहीं होता।

पहली थ्योरी के अनुसार यह विश्व सघनता और तापमान की उच्च अवस्था से विस्फोट होने के कारण बना है। इसके अनुसार यह विश्व मूलभूत, अत्यन्त संपीड़ित (Compressed) तारों और आकाश गंगाओं की निकटवर्ती अत्यन्त गरम गैसों से तथा पृष्ठभूमि में विद्यमान सामग्री से बना है। आकाश-गंगाओं की इस समय जो बाहर की ओर गति है वह उसी विस्फोट का परिणाम है।

यह आल्फर और गैमो थ्योरी यह मानकर चलती है कि हमारी दुनिया को बने जब पाँच ही मिनट हुए थे तब इसका तापमान दस अरब डिग्री सेंटीग्रेड था। इससे पूर्व द्रव्य केवल प्रोटोन, न्यूट्रोन और इलेक्ट्रोन से ही बना हुआ था जो उच्च-तापमान और दबाव के कारण अलग-अलग हो गए। विस्फोट के बाद, जो हमारे इस विश्व की शुरूआत की निशानी था, सब रासायनिक तत्व तीस मिनट के अन्दर-अन्दर बन गए। इस थ्योरी में यह मानना होगा कि जो भारी तत्व हैं वे अपेक्षाकृत हलके तत्वों के क्रमिक चरणों में हुए मेल से बने हैं। एक खास समय था जब ये आकाश-गंगाएं बनी थीं, शायद उस विस्फोट के बाद, वह समय दस लाख वर्ष या उसके आस पास रहा होगा। गुरुत्वाकर्षण की शक्तियां आकाश गंगाओं के निर्माण में कारणीभूत थीं।

सृष्टि के सर्वथा प्रथम श्रीगणेश के पूर्व क्या हालत थी ? सुझाव यह दिया गया है कि हम इस पर यों विचार करें : कि हमारा विश्व किसी पूर्ववर्ती विश्व के, जो अनन्त विरलता (सूक्ष्मता या सछिद्रता, सघनता के विपरीत) की अवस्था से सदा के लिए ध्वस्त हो रहा था, अधिकतम आकुंचन से निकला है।

यदि मैं यह थ्योरी मानता हूँ कि हमारी दुनिया अत्यन्त संपीड़ित, अत्यन्त तापयुक्त आगाज़ से शुरू से हुई है तो मूल कणों के कर्ता के रूप में और उस शक्ति के स्रोत के रूप में परमात्मा को स्थान देना होगा, जिसने वह दबाव और ताप पैदा किया। परमात्मा तस्वीर में आ ही जाएगा।

बौंडी-गोल्ड-होइल थ्योरी स्थिर अवस्था की थ्योरी या निरन्तर सृजन की थ्योरी कहलाती है। यह इस मान्यता पर आधारित है कि विश्व देश और काल दोनों में समरूप तो है, किन्तु स्थैतिक या गतिशून्य नही है। इस सिद्धान्त के निर्माता इस बात पर सहमत हैं कि विश्व फैल रहा है और आकाशगंगाएं बाहर की ओर सरक रही हैं। इन आकाश गंगाओं के बिखरते जाने की क्षतिपूर्ति के लिए और विश्व की शक्लसूरत फिर भी ज्यों की त्यों कायम रखने के लिए, वे यह मानते हैं कि द्रव्य का सृजन लगातार हो रहा है और उसने नए तारापुंज बन रहे है ताकि हमारे दूरवीक्षण यन्त्र की दृष्टि-सीमा से बाहर और परे सरकती हुई आकाशगंगाओं की स्थानपूर्ति हो सके। हम प्रकाश के द्वारा ही देखते हैं, और यदि कोई पिण्ड प्रकाश के वेग से भी अधिक तीव्र वेग से हमसे परे भाग रहा हो, तो प्रकाश हमारी ओर नहीं आएगा और किसी पूर्ण से पूर्ण दूरवीक्षण यन्त्र से भी हम उस पिण्ड को नहीं देख सकेंगे। यह अन्दाज लगाया गया है कि हमसे बीस अरब प्रकाश वर्ष की दूरी पर स्थित आकाश-गंगा में वह तीव्र वेग होगा और वह हमारे दृष्टि-क्षेत्र में नहीं आएगी। माउन्ट पालोमार के विशाल दूरवीक्षण यन्त्र से जितनी दूर तक देखने की आशा की जाती है, उक्त दूरी उससे भी दुगनी है। सूर्य का जितना जीवन-काल अनुमान किया जाता है यदि उसके पांचवें हिस्से के आस पास की गति से भी विश्व फैलता जाए तो वह इतना रिक्त हो जाएगा कि हम उसमें कुछ भी नहीं देख सकेंगे।

निरन्तर सृजन का यह सिद्धान्त उस संसार की पृष्ठभूमि सामग्री की लगातार स्थानपूर्ति करता रहेगा जो ठोस बनकर तारापुंज बना है। इस प्रकार विश्व के सामान्य रूप में कोई परिवर्तन नहीं आएगा। नव-निर्मित सामग्री बाहर की ओर दबाव बढ़ा देगी जिससे लगातार विस्तार होता रहेगा। सृजन के सम्बन्ध में, होइल का कहना है कि सामग्री कहीं से आती नहीं है, वह केवल प्रकट होती है।

जहां तक मेरा सम्बन्ध है, यदि मैं निरन्तर सृजन वाले मत का पक्ष लूं तो मैं परमात्मा को सृष्टिकर्ता के रूप में अवश्य मानूंगा। तब फिर तस्वीर में ईश्वर आ घुसेगा।

प्रकृति की चाहे किसी भी प्रक्रिया पर विचार किया जाए, और सृजन के किसी भी प्रश्न का अध्ययन किया जाए, वैज्ञानिक के तौर पर मुझे सन्तोष तभी होता है जब उसमें परमात्मा को मुख्य स्थान देता हूँ। हरेक तस्वीर की केन्द्रभूत आकृति परमात्मा ही है। जितने भी ऐसे सवाल हैं जिनका अभी तक जवाब नहीं दिया जा सकता, उन सबका ईश्वर ही एक जवाब है।

——

एडवर्ड लूथर कैसल

तथ्यों को बिना पक्षपात के देखिए

जीवविद् और कीटविद्

एम० एस० सी०, पी-एच० डी०, कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय। सनफ्रांसिस्को विश्वविद्यालय में जीवविज्ञान के प्रोफेसर और विभागाध्यक्ष। कैलिफोर्निया विज्ञान अकादमी के सदस्य। टैकनिकल प्रकाशनों के जिनमें 'वासमैन जरनल आफ वायौलोजी' शामिल है—सम्पादक। कीट-भ्रूण-विज्ञान, हरपेटोलौजी, सैलामैण्डर्स, डिप्टरोलौजी आफ क्लायिडे के विशेषज्ञ।

× × ×

हाल के वर्षों में जो वैज्ञानिक अनुसन्धान हुए हैं या हो रहे हैं, वे परमात्मा की सत्ता के परम्परागत दार्शनिक प्रमाणों के समर्थन में और नई साक्षी जोड़ रहे हैं। यह नई साक्षी ज़रूरी ही हो यह बात नहीं, क्योंकि जो पुराने प्रमाण हैं वे ही इतने काफी हैं कि जिनका मन पक्षपात की नली में बन्द नहीं है, उनको निश्चय करा सकते हैं। पहले से ही परमात्मा की सत्ता में विश्वास करने वाला होने के कारण साक्षी में इन नए परिवर्तनों का मैं दो कारणों से स्वागत करता हूँ : (१) वे ईश्वर के कुछ गुणों को और अधिक स्पष्ट कर देते हैं, (२) और मुझे विश्वास है कि परमात्मा की सत्ता में ईमानदारी से सन्देह करने वाले बुद्धिवादियों की आंखें वे खोल देंगे ताकि वे भी यह जान सकें कि ईश्वर है।

गत कुछ वर्षों से हमारे राष्ट्र में एक धार्मिक पुनरुत्थान हो रहा है। यह धार्मिक अभ्युत्थान न केवल हमारे कालेजों को दरगुजर कर गया है किन्तु हमारे उच्चतर विद्यापीठों के बुद्धिवादियों के जीवन को भी इसने बहुत सी शाखाओं में विभक्त कर दिया है। और यह निश्चित है कि नूतन वैज्ञानिक गवेषणाएं जो सृष्टिकर्ता की आवश्यकता की ओर संकेत करती हैं, परमात्मा की ओर लोगों की प्रवृत्ति को मोड़ने में महत्वपूर्ण भाग अदा कर रही हैं।

निस्सन्देह इस प्रकार की साक्षी प्रस्तुत करने वाली यह वैज्ञानिक गवेषणा ईश्वर की सत्ता सिद्ध करने के लिए आयोजित नहीं की गई थी। विज्ञान का उद्देश्य है प्रकृति के तथ्यों वा अन्वेषण, किसी चीज़ के मूल तक पहुंचने की वह विशेष चिन्ता नहीं करता। विज्ञान केवल प्रकृति के क्रिया-कलाप पर विचार करता है और वह

इस बुनियादी प्रश्न की उपेक्षा कर देता है कि यह क्रिया कहाँ से आई। परन्तु प्रत्येक मानव में, यहाँ तक कि वैज्ञानिक में भी, एक प्रकार का तत्वचिन्तक कहीं छिपा होता है, यद्यपि दुर्भाग्यवश अच्छे वैज्ञानिक सदा अच्छे दार्शनिक नहीं होते। मूल उत्पत्ति सम्बन्धी मामलों पर कईयों के विचार अत्यन्त अस्पष्ट होते हैं। बहुतों की यह सर्वथा तर्क-विरुद्ध धारणा होती है कि संसार अपने आप बन गया। कुछ अन्य लोग ऐसे हैं जो यह कहते हैं कि संसार की सत्ता सदा रही है—हमारे लिए यह मान लेना उतना ही आसान है जितना यह विश्वास करना कि परमात्मा सदा रहा है।

किन्तु ऊष्मागतिकी (थर्मोडायेनेमिक्स=ताप) का दूसरा नियम, या जिसे 'एण्ट्रोपी का नियम' कहा जाता है, अन्तिम वर्गीकरण को अर्थात् संसार के सदा से रहने की बात को गलत सिद्ध करता है। विज्ञान यह स्पष्ट रूप से बताता है कि विश्व सदा से विद्यमान नहीं रह सकता। एण्ट्रोपी के नियम से पता लगता है कि अपेक्षाकृत गरम पिण्डों से ठण्डे पिण्डों की ओर ताप लगातार प्रवाहित होता रहता है और इस प्रवाह को उलटकर स्वतः विरुद्ध दिशा में प्रवाहित नहीं किया जा सकता। अनुपलब्ध ऊर्जा का उपलब्ध ऊर्जा के साथ अनुपात ही एण्ट्रोपी होता है, इसलिए यह कहा जा सकता है कि विश्व की एण्ट्रोपी लगातार बढ़ रही है। अतएव विश्व ऐसे समय की ओर बढ़ रहा है जब तापमान सर्वत्र एक समान होगा और उपयोगी ऊर्जा शेष नहीं रहेगी। परिणामस्वरूप रासायनिक या भौतिक प्रक्रिया भी नहीं होगी और जीवन का अस्तित्व भी स्वयं समाप्त हो जाएगा। किन्तु क्योंकि जीवन अभी तक चल रहा है, और रासायनिक और भौतिक प्रक्रियाएं अभी तक जारी हैं, इसलिए यह स्पष्ट है कि हमारा यह विश्व सदा से विद्यमान नहीं रह सकता, अन्यथा इसमें उपयोगी ऊर्जा कभी की समाप्त हो चुकी होती और यह विश्व गतिशून्य हो गया होता। इसलिए, सर्वथा बिना चाहे, विज्ञान यह सिद्ध करता है कि हमारे इस विश्व की शुरूआत है और ऐसा करने में यह परमात्मा की सत्ता को सिद्ध करता है, क्योंकि जिसका भी आदि है वह स्वयं शुरू नहीं हुआ, किन्तु उसे शुरू करने वाला कोई न कोई महान् संचालक, कोई न कोई रचयिता, कोई न कोई परमात्मा है।

यह विश्व सदा से विद्यमान नहीं रहा, इसके सम्बन्ध में हमारे पास मात्र वैज्ञानिक प्रमाण ही नहीं है, किन्तु अब विज्ञान ने यह भी सिद्ध कर दिया है कि ऐसे महान् सृजनशील विस्फोट से यह विश्व अस्तित्व में आया जो अब से कोई पांच अरब वर्ष पहले हुआ होगा। तथ्य तो यह है कि यह विश्व अपने उद्गम के केन्द्र से अब भी प्रसृत होता जा रहा है। आज, जो लोग विज्ञान की साक्षी पर ध्यान देंगे वे सृजन में अवश्य विश्वास करेंगे, ऐसा सृजन जिसमें प्रकृति के नियम उतर आते हैं, क्योंकि ये नियम भी अपने आप में सृजन का फल ही हैं। और निस्सन्देह बिना स्रष्टा के इस प्रकार का सृजन नहीं हो सकता था, सुतरां उस स्रष्टा को ही परमात्मा के रूप में

समझना होगा। जब उसने एक बार प्रकृति की सामग्री की व्यवस्था कर ली, और इसकी गतिविधियों पर नियन्त्रण रखने के लिए प्रकृति के नियमों की व्यवस्था कर ली, तब उसने इस समग्र क्रिया-कलाप को सृजन जारी रखने के लिए, विकास के द्वारा सृजन के लिए, प्रयुक्त किया।

मैं जानता हूँ कि विकास शब्द ही कई क्षेत्रों में निषिद्ध है। इस शब्द को सुनने मात्र से ही उनकी भौहें चढ़ जाती हैं। शायद यह बात विचित्र लगे, किन्तु अपने उन मित्रों का आशय न केवल मैं समझता हूं किन्तु मैं उनसे सहमत भी हूँ। उनके मन में जो कुछ है वह है भौतिकवादी (यान्त्रिक, या यन्त्रवादी) विकास, किन्तु उसमें और सृजनात्मक विकास में स्पष्ट अन्तर करना होगा।

यहाँ विज्ञान की जिस साक्षी का वर्णन किया गया है, यदि सब वैज्ञानिक उस पर उतनी ही ईमानदारी से विचार करें जिससे वे अपनी गवेषणाओं से प्राप्त परिणामों पर विचार करते हैं और अपने मन का पूर्वाग्रह या पक्षपात छोड़ दें, यदि वे अपनी भावनाओं पर अपनी बुद्धि का अनुशासन स्वीकार करें, तो उन्हें यह स्वीकार करने को बाध्य होना पड़ेगा कि परमात्मा का अस्तित्व है। यही एक निष्कर्ष है जिसकी तथ्यों के साथ संगति बैठती है। विज्ञान का खुले मन से अध्ययन करें तो उससे प्रथम कारण या कारणों के कारण की ओर आना ही पड़ेगा, उसी कारणों के कारण को हम परमात्मा कहते हैं।

परमात्मा हमारी पीढ़ी के प्रति उदार रहा है और प्रकृति के सम्बन्ध में अनेक खोजों की हमारी वैज्ञानिक गवेषणा को उसका आशीर्वाद प्राप्त है। और सभी लोगों की, चाहे वे वैज्ञानिक हों या न हों, यह बौद्धिक जिम्मेदारी है कि वे अपने विश्वासों के निर्धारण में इस वैज्ञानिक ज्ञान को भी ध्यान में रखें। जैसे किसी भी खुले दिमाग़ वाले वैज्ञानिक को विज्ञान की साक्षी पर ध्यान देना चाहिए और यह स्वीकार करना चाहिए कि परमात्मा है, वैसे ही गैर-वैज्ञानिकों को भी इस साक्षी पर ध्यान देना चाहिए और यह स्वीकार करना चाहिए कि सृजनात्मक विकास ही परमात्मा का सृष्टि रचना का तरीका है, जबकि एक बार वह विश्व की सामग्री उत्पन्न कर चुका और उसके नियमों की स्थापना कर चुका। कुदरत की किताब में जितनी भी साक्षी मिलती है उसके साथ सृजनात्मक विकास की ही तुक है। वैज्ञानिक गवेषणा के रूप में जो धर्मग्रन्थों का भाष्य किया गया है वह उस कुदरत की किताब के प्रत्येक अध्ययन से सृजनात्मक विकास को सिद्ध करता है—फिर चाहे वह आकृतिविज्ञान का अध्याय हो, चाहे शरीरविज्ञान का हो, भ्रूणविज्ञान का हो, चाहे जीव-रसायन विज्ञान का, चाहे प्रजनन-विज्ञान का, चाहे पुरा-वस्तु-तत्व-विज्ञान का, चाहे वर्गीकरण-विज्ञान का, चाहे प्राणि-भूगोल विज्ञान का, इत्यादि।

प्राकृतिक चुनाव विकास की मुख्य प्रक्रियाओं में से एक है, जैसे कि विकास सृजन की एक मुख्य प्रक्रिया है। प्रकृति के महान् नियमों में से यह एक है, और

विज्ञान के अन्य सब नियमों की तरह यह केवल एक गौण कारण की तरह ही कार्य करता है, क्योंकि यह भी परमात्मा के सृजन का ही फल है। प्राकृतिक वरण के द्वारा जो जातियाँ पैदा होती हैं वे भी परमात्मा की ही सृष्टि हैं, क्योंकि प्राकृतिक वरण स्वयं कुछ पैदा नहीं कर सकता। वह तो केवल प्रकृति में विविधता के पुनः प्रजनन और उत्तरजीविता (सरवाइवल) का जिम्मेदार है। ये विविधताएं, जिनसे प्राकृतिक वरण चुनाव करता है, उन उत्परिवर्तनों (म्यूटेशन) से निकलती हैं जो आनुवंशिकता (जेनेटिक्स) के नियमों का फल हैं, और ये किसी अन्ध अकस्मात् के अनुसार काम नहीं करतीं जैसा कि भौतिक विकासवादी हमको विश्वास दिलाना चाहते हैं।

ये उत्परिवर्तन बिल्कुल यादृच्छिक या अनियमित या बेतरतीब नहीं हैं जैसा कि अब तक इतने सारे लोग दावा करते आए हैं। उदाहरण के लिए उन उत्परिवर्तनों को ले लो जिनसे अवयवों (organs) का आकार निश्चित होता है। हाल की खोजों ने बताया है कि इन उत्परिवर्तनों से सम्बद्ध अवयवों का आकार घट जाता है। अन्य अकस्मात् के द्वारा यादृच्छिक उत्परिवर्तनों पर काम करने वाला प्राकृतिक वरण केवल हानिकारक अवयवों का आकार ही घटा सकता था, किन्तु सामान्यतया देखा यह जाता है कि तटस्थ अवयव भी घट जाते हैं। इससे पता लगता है कि म्यूटेशन सदा बेतरीब नहीं होते और यह कि विकास की प्राक्रिया अन्ध अकस्मात् पर निर्भर नहीं होती। इसलिए हमें यह स्वीकार करना चाहिए कि इसकी रचना के पीछे और इसके नियमों की स्थापना में किसी बुद्धिमान का हाथ है। हम यह निष्कर्ष निकालने पर बाधित होते हैं कि विकास की यह प्रक्रिया सप्रयोजन थी, और इस सप्रयोजनता के लिए किसी बुद्धिमान् प्रयोजक को मानना पड़ेगा।

स्थानाभाव के कारण प्रकृति में प्रयोजनवत्ता की अन्य साक्षियों को गिनाने की गुंजायश नहीं है, किन्तु कीटभ्रूण विज्ञान और कायान्तरण (मेटामोरफोसिस) के अपने सीमित गवेषणा-क्षेत्र में मैंने अनेक साक्षियों की गणना की है। जितना जितना मैं प्रकृति का अध्ययन करता जाता हूँ उतना उतना मैं इन साक्षियों से प्रभावित होता जाता हूँ। जो प्रक्रियाएं और घटनाएं हम विज्ञान में देखते हैं वे वस्तुतः सर्वोच्च ज्ञानवान् का प्रकटीकरण मात्र हैं और विकास भी सृजन की एक अवस्था का द्योतक मात्र है।

जड़वाद और मूल प्रमेयवाद इन दोनों शिविरों से मतान्ध विस्फोटों, सत्य की ईमानदारी से खोज करने वाले दोनों पक्षों के अनुयायियों को विवेकहीन बना देने वाले विस्फोटों, के बावजूद, जातियां विकास की प्रक्रिया से पैदा की गई हैं—इस निष्कर्ष में अपने आप में कोई निषेधात्मक धार्मिक महत्व नहीं हैं। परन्तु इसके बिलकुल विपरीत बात सत्य है—कोई विकास की वास्तविकता को स्वीकार न करे, यह सर्वथा तर्कविरुद्ध और असंगत है।

चौथी शताब्दी के महान् आगस्टाइन के समय से लेकर वर्तमान समय तक परमात्मा में विश्वास करने वाले ऐसे असंख्य लोग रहे हैं जिन्होंने निर्माण द्वारा सृष्टि रचना के विचार को अस्वीकार किया है और विकास द्वारा सृजन का पक्ष लिया है। वस्तुतः इन सबके लिए (और मैं भी अपने आपको उनमें से एक गिनता हूं) विकास-वाद का निश्चित धार्मिक महत्व है, जो पूर्णतः ईमानदार और निष्पक्ष जिज्ञासु को सीधा परमात्मा तक ले जाता है।

मैं पुनः यह दुहराता हूं कि निष्पक्ष और खुले मन से विज्ञान का अध्ययन मनुष्य को परमात्मा में विश्वास की आवश्यकता की ओर ले जाता है।

———

वाल्टर ओस्कर लुण्डबर्ग

वैज्ञानिक विधि का प्रयोग

शरीरक्रियाविद् और जीवरसायनविद्

पी-एच० डी०, जान्स होपाकन्स विश्वविद्यालय। अमेरिकन स्टील कारपोरेशन में फिजीकल कैमिस्ट, मिनेसोटा विश्वविद्यालय में फिजियोलौजिकल कैमिस्ट्री के प्रोफेसर, कृषि-सम्बन्धी वायो-कैमिस्ट्री के प्रोफेसर। मिनेसोटा विश्वविद्यालय की होर्मल इन्स्टी-ट्यूट के रेजिडेण्ट डायरेक्टर और १९४९ से होर्मल इन्स्टीट्यूट के रेजिडेण्ट डायरेक्टर। अनेक राष्ट्रीय खाद्य और रासायनिक संस्थानों के सदस्य तथा भूतपूर्व अध्यक्ष। 'प्रोग्रेस इन द कैमिस्ट्री आफ फैट्स ऐण्ड अदर लिपिड्स' के प्रथम, द्वितीय और तृतीय ग्रन्थों के सम्पादक तथा अनेकानेक वैज्ञानिक लेखों के लेखक।

× × ×

पेशेवर वैज्ञानिकों को अन्य व्यक्तियों की अपेक्षा एक खास लाभ यह होता है कि वे यदि चाहें तो परमात्मा की वास्तविकता को अधिक अच्छी तरह समझ सकते हैं। जिन बुनियादी सिद्धान्तों पर उनके पेशे का विधि-विधान निर्भर है, वे सब सार रूप से परमात्मा की सत्ता की ही अभिव्यक्ति मात्र हैं। अनेक वैज्ञानिक इस बात को बिना माने भी सफल वैज्ञानिक हैं और यह बात नीति-विरुद्ध नहीं मानी जानी चाहिए। विज्ञान में सफलता मुख्यतः स्वीकृत विधि-विधान के प्रयोग पर निर्भर है, उसमें इस बात की खोज करने की जरूरत नहीं है कि ऐसा करने में बुनियादी सिद्धान्तों का कहाँ तक आदर किया गया।

यदि कुछ वैज्ञानिक निहित सिद्धान्तों की आस्तिकवादी महत्ता को स्वीकार नहीं करते या नहीं समझते, तो उसके अनेक कारण होते हैं। उसमें से केवल दो का यहां जिक्र किया जा रहा है।

प्रथम, परमात्मा की सत्ता से इन्कार करना कभी-कभी किसी प्रभावशाली सामाजिक गुट की, या संगठन की, या राज्य की, स्वेच्छारितापूर्ण निश्चित नीति होती है। जहां नास्तिकता राजधर्म हो, वहाँ सामाजिक परिणामों, या शारीरिक परिणामों के भी, भय के कारण कोई व्यक्ति प्रकृति में परमात्मा की अभिव्यक्ति का सक्रिय समर्थन करने की हिम्मत नहीं करता।

फिर, यदि लोगों के मन में सर्वथा भय का भाव न भी हो, तो भी यह सम्भव है कि वे अपने पूर्वाग्रहों से मुक्त न हो पाए हों। बहुत बार, ईसाई संगठनों के युवक वर्ग में यह भावना व्याप्त होती है कि परमात्मा ने मनुष्य को अपने अनुरूप नहीं बनाया बल्कि मनुष्य ने ही परमात्मा को अपने अनुरूप बना लिया। जब ऐसे विचार वाले लोगों को बाद में विज्ञान पढ़ाया जाता है, तो परमात्मा को मनुष्याकृति वाला मानने का यह सीमित और विपरीत सिद्धान्त बुद्धि तथा विज्ञान की तर्कपूर्ण प्रणाली के सामने टिक नहीं पाता। और जब समाधान के अन्य सब प्रयत्न बेकार हो जाते हैं तो ऐसे लोग परमात्मा के विचार को ही पूर्णतः तिलांजलि दे देते हैं। इसके साथ ही भ्रमजाल से मुक्ति न मिलने तथा अन्य मनोवैज्ञानिक परिणामों के कारण ईश्वर सम्बन्धी किसी नए विचार को अपनाने की भी उनकी हिम्मत नहीं होती।

वह वैज्ञानिक विधि क्या है और वे निहित सिद्धान्त कौन से हैं जो परमात्मा की सत्ता को प्रकट करते हैं ? संक्षेप में और अत्यन्त सरलीकृत परिभाषाओं में इस विचार-विनिमय में ये कदम सहायक होंगे :

प्रथम, वैज्ञानिक केवल चुनी हुई प्राकृतिक घटनाओं का ही निरीक्षण और परीक्षण करता है। वस्तु-प्रपंच पर बिना किसी नियन्त्रण की चेष्टा के यह निरीक्षण और परीक्षण किया जा सकता है, जैसे कि ग्रह-नक्षत्रों के या अन्तर्ग्रहवर्ती आकाश के अध्ययन में होता है। या सीमित नियन्त्रण के द्वारा यह निरीक्षण और परीक्षण हो सकता है जैसा कि प्रयोगशाला के परीक्षणों में होता है।

द्वितीय, वह अपने निरीक्षणों को अन्य वैज्ञानिकों द्वारा किए गए निरीक्षणों से मिलाता है, और निष्कर्ष निकालता है, तथा कुछ काम चलाऊ परिकल्पनाएं करता है। इसमें आगमन (Induction) के बजाय निगमन (Deduction) परक मानसिक प्रक्रिया शामिल होती है, क्योंकि निष्कर्ष या परिकल्पनाएं उससे कहीं अधिक ही होती हैं जितना वस्तुतः निरीक्षण किया गया होता है। सारतः वे एक तरह से पूर्व-कथन ही होते हैं।

अन्ततः, यदि वह अपने निष्कर्षों की सचाई जानना चाहता है, तो वह और नए निरीक्षण करता है, और यदि ये नए निरीक्षण उसके पूर्वकथनों से मेल खा जाएं तो वह निश्चित सिद्धान्त की घोषणा करता है।

संक्षेप में, वैज्ञानिक विधि प्राकृतिक घटनाओं में नियमबद्धता और पूर्व-कथनीयता पर आधारित है। सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाए तो यह नियमबद्धता और पूर्वकथनीयता ही प्रकृति में परमात्मा का प्रकटीकरण है। परमात्मा की सत्ता से शून्य विश्व के ढांचे में व्यवस्था और तरतीब या पूर्वकथनीयता की बात करना बुद्धि के अभाव का द्योतक है और यह एक ऐसा विरोधाभास है जिसका कुछ अर्थ नहीं बनता।

मनुष्य प्रकृति में नियमबद्धता और पूर्वकथनीयता को समझ सकने के योग्य है, इतने मात्र का यह जरूरी निष्कर्ष नहीं है कि परमात्मा की सत्ता है ही। परन्तु यह निष्कर्ष इस बात का द्योतक अवश्य है कि मनुष्य परमात्मा के अनुरूप बनाया गया है। जब मनुष्य परमात्मा को स्वानुरूप कृति समझना छोड़कर अपने आपको परमात्मानुरूप कृति समझना शुरू कर देता है, तब वह उस देहली पर पहुंच जाता हैं जहाँ से वह प्रभु की महिमा को देखना प्रारम्भ कर सकता है।

मनुष्य के ज्ञान का अभी श्रीगणेश ही है। अपनी शारीरिक सीमाओं के कारण, उसे इस बात का कुछ-कुछ तो आभास है कि ग्रह-नक्षत्र और अर्न्तग्रहवर्ती आकाश असाधारण रूप से विशाल है, द्रव्य तथा ऊर्जा की बुनियादी इकाइयाँ इतनी सूक्ष्म हैं कि इन्द्रियातीत हैं, और लगातार आगे बढ़ते हुए विश्व की कालहीनता में मनुष्य का अपना जीवन एक सेकण्ड का भी अनन्तवाँ खण्ड है। ऊर्जा, देश और काल तथा अभी तक सर्वथा अज्ञात वस्तुओं के नए आयामों और नए आकारों की सम्भावना के सम्बन्ध में उसके मन में कुछ अस्पष्ट-सा आभास मात्र है। वह जीवन की सत्ता को स्वीकार करता है किन्तु उसके स्वभाव के सम्बन्ध में उसके पास वैज्ञानिक जानकारी का अभाव है। फिर भी उसका यह सीमित ज्ञान ही उसे यह स्वीकार करने को बाध्य करता है कि उसके सामने ज्ञान के ऐसे विशाल कुंज पड़े हैं जो व्यवस्था और पूर्वकथन की सम्भावनाओं से ओतप्रोत हैं, किन्तु जिनकी अभी तक खोज नहीं हुई है। उसी में उसको प्रभु की महिमा की झांकी मिलती है।

प्राकृतिक घटना-प्रपंच में अभिव्यक्त परमात्मा को समझने की मनुष्य की शक्ति अभी तक क्योंकि अत्यन्त सीमित है, इसलिए यह भी मनुष्य के ही स्वभाव का एक अंग है कि उसकी आस्तिकता का कोई आध्यात्मिक या धार्मिक आधार भी हो। अनेक लोगों के जीवन में व्यक्तिगत प्रसन्नता के लिए धर्म के आधार पर परमात्मा में विश्वास करने की महत्ता है। परन्तु परमात्मा की सत्ता में विश्वास करने वाले वैज्ञानिक को हर नई वैज्ञानिक खोज के साथ इस बात का और अधिक संतोष प्राप्त होता है कि प्रत्येक खोज से परमात्मा के बारे में उसका अपना विचार पुष्ट, सार्थक और महत्वपूर्ण बनता जाता है।

——

पाल क्लेरेंस एबरसोल्ड

ईश्वर की सत्ता के भौतिक प्रमाण

जीवभौतिकोविद् स्टैनफोर्ड विश्वविद्यालय के प्रतिष्ठित स्नातक। कैलिफ़ोर्निया विश्वविद्यालय से एम० ए०, पी-एच० डी०। विकिरण और रेंटगनकिरणविद्या के विशेषज्ञ और फिनेहोवेल गवेषणा संस्थान के साथ कार्य। अमरीकी ब्यूरो आफ स्टैण्डर्ड्स, मैनहटन परियोजना के गवेषणा सम्पर्क अधिकारी। अणुशक्ति आयोग, ओक रिज आपरेशन्स, में आइसोटोप विभाग के संचालक। सिविलियन एप्लिकेशन, ए० ई० सी० के आइसोटोप और रैडिएशन के निदेशक। अणुविज्ञान समिति, राष्ट्रीय गवेषणा परिषद् तथा अन्य अनेक जीव विज्ञान सम्बन्धी और रैडियोलौजी सम्बन्धी संगठनों के सदस्य। आणविक भौतिकी, जीवभौतिकी, न्यूट्रोन रैडिएशन आइसोटोप के विशेषज्ञ।

× × ×

अंग्रेज दार्शनिक और राजनीतिज्ञ फ्रांसिस बेकन ने तीन शती पहले कहा था : 'थोड़ी सी दार्शनिकता आदमी को नास्तिकता की ओर ले जाती है, गम्भीर दार्शनिकता धर्म की ओर ले जाती है।'

बेकन का कहना निस्सन्देह ठीक था।

हजारों और लाखों विचारशील जिज्ञासु व्यक्तियों ने जब से मानव पैदा हुआ है तभी से इन महान् प्रश्नों का सामना किया है : कौनसी उत्कृष्ट बुद्धि, कौनसी महान् शक्ति, मनुष्य पर और विश्व पर नियन्त्रण रखती है ? मानवीय अनुभव और जीवन की तह में क्या है और उसके परे क्या हैं ?

मनुष्यों की भावी पीढ़ियों के अरबों-खरबों लोगों में से हरेक—यदि धरती का वर्तमान जीवन कायम रहा—इन प्रश्नों को दुहराएगा। इन प्रश्नों पर जितने अधिक लोग और जितनी गम्भीरता से विचार करते हैं उसको देखते हुए हमें इस बात के किसी भी पूर्ण उत्तर की आशा किए बिना, उन तक विनयावनत होकर पहुंचना होगा।

एक बात निश्चित है : मनुष्य चाहे कितना भी साधन-सम्पन्न और बुद्धिमान क्यों न हो, उसने अपने आप में कभी सन्तोष की अनुभूति नहीं की। विभिन्न धर्मों, जातियों और महाद्वीपों के लोग व्यक्तिगत रूप से और सार्वभौम रूप से

इतिहास के प्रारम्भ काल से ही यह स्वीकार करते आए हैं कि विशाल ब्रह्माण्ड की व्याख्या करने और उसको समझने में मनुष्य की सीमाए अत्यन्त कठोर हैं, और इस विश्व में जीवन का प्रयोजन क्या है, इस प्रश्न का उत्तर और भी कठिन है।

तथ्य यह है कि, बुद्धि के द्वारा या आत्मिक अनुभूति के द्वारा, मनुष्य ने सार्वभौम रूप से एक अपेक्षाकृत बृहत्तर सर्वग्राही बुद्धि को और विश्व में नियम और क्रम की सत्ता को स्वीकार किया है, और उसने सजीव या निर्जीव द्रव्य में घटनाओं को अकस्मात् या अव्यवस्थित कभी नहीं माना। मनुष्य सार्वत्रिक रूप से जो यह स्वीकार करता है कि ऐसा अगोचर क्षेत्र भी जरूरी है जो मनुष्य की अपनी बुद्धि से परे है, यह बात स्वयं किसी उत्कृष्ट बुद्धि की सत्ता का सबल प्रमाण है।

'निरपेक्ष वैज्ञानिक प्रमाण' के द्वारा परमात्मा की सत्ता असंदिग्ध रूप से सिद्ध नहीं की जा सकती। अन्त में हरेक मनुष्य अपना ही उत्तर—जो उसके अपने जीवन और परमात्मा के मध्य सम्बन्ध का द्योतक होगा—ढूंढना चाहेगा। वह बताएगा कि उसने अपने आधिभौतिक और आध्यात्मिक ज्ञान का मेल कैसे किया है। अनन्त रूप से प्रसृत और उलझन भरे भौतिक जगत् के सम्बन्ध में उसका अपना जो विचार है उसके, और बुद्धि, हृदय और आत्मा के अत्यन्त वैविध्यपूर्ण अनुभवों को उसने अपने अन्दर कैसे ग्रहण किया है, इसके मेल से ही यह बात निकलेगी। संसार भर के लाखों लोगों के समक्ष ईश्वरीय सत्ता का प्रदर्शन करने वाले अनुभवों तथा तर्कों की गणना विविधता की दृष्टि से अनन्त होगी—और कुल मिलाकर वह उसकी पुष्टि के लिए पर्याप्त से भी कहीं अधिक होगी।

अपने वैज्ञानिक अध्ययन के आरम्भ काल में मानवीय तर्कों और वैज्ञानिक प्रणाली की शक्ति से मैं इतना मुग्ध हो गया था कि मुझे यह निश्चय था कि वैज्ञानिक गण विश्व की प्रत्येक घटना की व्याख्या कर सकते हैं—कदाचित् जीवन के मूल की, बुद्धि के उद्गम की ओर प्रत्येक वस्तु के प्रयोजन की। किन्तु मैं ज्यों-ज्यों अधिकाधिक अध्ययन करता गया, और परमाणु से लेकर आकाशगंगा तक, सूक्ष्म जीवों से लेकर मनुष्य तक, हरेक चीज़ का ज्ञान प्राप्त करने का प्रयत्न करता गया, त्यों-त्यों ऐसा क्षेत्र लगातार बढ़ता गया जिसकी व्याख्या नहीं हो सकती थी। विज्ञान परमाणु के हजारों विस्तृत विवरण प्रकाश में ला सकता है, किन्तु कुल ब्रह्माण्ड, जीवन, मानव और मन सदा अज्ञात रहेंगे। विज्ञान को यह शीघ्र ही पता लग जाता है कि चीजों के 'कैसे' की बड़ी से बड़ी व्याख्या करने में विज्ञान की अपनी सीमा है। किन्तु मनुष्य या विज्ञान 'क्यों' की व्याख्या नहीं कर सकते। विज्ञान और केवल मानवीय तर्क यह कभी नहीं बता सकते कि परमाणु, ग्रह-नक्षत्र, आकाशगंगा, जीवन और मानव तथा उनकी चमत्कारपूर्ण क्षमताएं क्यों हैं। यद्यपि विज्ञान इस बारे में बड़ी सम्भाव्य स्थापनाएं कर सकता है कि सृष्टि और प्रलय कैसे होते हैं और कैसे ये तारे और अणुओं का संसार आदि बन जाते हैं, किन्तु वह यह नहीं बता सकता

कि ये द्रव्य और ऊर्जा कहां से आए और विश्व की रचना ऐसी सुव्यवस्थित क्यों है। सीधा विचार करने और स्पष्ट ढंग से तर्क करने पर परमात्मा का विचार कहीं न कहीं से आ ही जाएगा।

क्या परमात्मा कोई 'पुरुष' है, जैसा कि अनेक लोग सोचते हैं ? विज्ञान के दृष्टिकोण से, मैं परमात्मा को किसी ऐसे पुरुष के रूप में नहीं सोचता जो किसी मानवीय राजा की तरह कहीं सिंहासन पर बैठता हो। धर्मग्रन्थों ने परमात्मा का और उसके स्वभाव का वर्णन करने में मानवीय इतिहास और मानवीय जीवन से लिए गए अलंकारों का काफी उपयोग किया है। परमात्मा यद्यपि एक आत्मिक सत्ता है, किन्तु विशुद्ध आध्यात्मिक परिभाषाओं में उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। क्योंकि मनुष्य चैतन्य आत्मा और जड़ शरीर दोनों का मेल है और पृथ्वी से बंधा हुआ है, इसलिए इस प्रकार की परिभाषाओं का न वह प्रयोग कर सकता है, न उन्हें समझ ही सकता है।

दूसरी ओर, परमात्मा में उसके आध्यात्मिक तत्व होने या इन्द्रियातीत होने के कारण नैतिक सद्गुणों का, विचारक्षमता का, अध्यवसाय और अनुभूति का समावेश है, और इस दृष्टि से वह एक पुरुष जैसा ही ज्ञेय पदार्थ है। वस्तुतः परमात्मा एक ऐसा दिव्य मूल सांचा है जिसकी हम मनुष्य प्राणी सीमित और धुंधली नकल-मात्र हैं। मनुष्य परमात्मा के अनुरूप बनाया गया है—इस उक्ति का यही आशय होता है।

किसी भी दृष्टि से परमात्मा भौतिक पदार्थ नहीं है। यही कारण है कि भौतिक ढंग से उसकी व्याख्या या उसका वर्णन मानव की क्षमता से परे है। किन्तु साथ ही उसकी सत्ता को सिद्ध करने वाले भौतिक प्रमाणों की कमी नहीं है। परमात्मा की रचना को देखकर यह पता लगता है कि उसकी शक्ति, ज्ञान और बुद्धिमत्ता अनन्त है। (उपनिषद् के इस वाक्य से तुलना करिए : 'परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते, स्वाभाविकी ज्ञान-बल-क्रिया च।'—अनु०)। क्योंकि परमात्मा की कोई थाह नहीं, इसलिए मनुष्य अपने अन्तिम प्रयोजन की और इस महान् विश्व की—शारीरिक दृष्टि से जिसका वह अत्यन्त सूक्ष्म और क्षुद्र भाग है—थाह नहीं पा सकता।

जो एक बात हम निश्चयपूर्वक जानते है वह यह है कि मानव और यह विश्व सर्वथा 'नास्ति' से सहसा 'अस्ति' में नही आ गए। ये दोनों सादि हैं और इनका एक आदि रचयिता भी है। हम यह भी जानते हैं कि विश्व की जो चमत्कारपूर्ण और रहस्यपूर्ण व्यवस्था है वह मनुष्य द्वारा निर्दिष्ट नियमों का पालन नहीं करती, और यह भी हम जानते हैं कि जीवन रूपी चमत्कार भी अपने आप में उद्गम वाला है और इसका पथ-प्रदर्शन पूर्ण है—और वह उद्गम भी दिव्य है एवं पथ-प्रदर्शन भी दिव्य है।

———

मारलिन बुक्स क्रैडर

आइन्स्टीन की 'सृजनात्मक शक्ति' की पहचान

शरीरक्रियाविद्

एम० एस० सी०, पी० एच० डी०, मैरीलैण्ड विश्वविद्यालय। अमरीकी क्वार्टरमास्टर्स रिसर्च एण्ड डेवलपमेंट सेण्टर के एनवायरनमेंटल प्रोटेक्शन डिवीजन में शरीरक्रियाविद्। ईस्टर्न नैजरीन कालेज में जीवविज्ञान के प्रोफेसर। अमेरिकन सोसायटी आफ प्रोफेशनल बायोलोजिस्ट्स और स्पेलियोलौजिकल सोसायटी आदि संस्थानों के सदस्य। चयापचय (मेटाबोलिज्म) और रक्त-संचार के विशेषज्ञ।

× × ×

एक सामान्य मानव होने के कारण, और अपना जीवन वैज्ञानिक अध्ययन तथा खोज में लगा देने के कारण—इन दोनों कारणों से ही मुझे परमात्मा की सत्ता के सम्बन्ध में कोई सन्देह नहीं है।

मैं निश्चयपूर्वक कह सकता हूँ कि परमात्मा है। किन्तु उसकी सत्ता सिद्ध नहीं की जा सकती, न ही प्रयोगशाला की विधियों से किसी तरह इसका विश्लेषण किया जा सकता है। वह अभौतिक है। वह आध्यात्मिक, बुद्धिमान् सृष्टिकर्ता और सर्वपालक शक्ति है।

यद्यपि उसकी सत्ता को सिद्ध करने के लिए हम सामान्य वैज्ञानिक विधियों का प्रयोग नहीं कर सकते, किन्तु फिर भी प्रकृति में और मानव में हम उसकी सत्ता की अनेकविध साक्षियों का अध्ययन कर सकते हैं। मैं समझता हूँ कि वे साक्षियां एकदम स्पष्ट हैं और निश्चय दिलाने वाली भी हैं।

क्या यहां मैं यह कहने का साहस कर सकता हूं कि विज्ञान के जो तथाकथित सिद्धान्त और तथ्य हैं, जिन्हें लोग सत्य मान लेते हैं, वे भी ऐसे तथ्य नहीं हैं जो सिद्ध किए गए हों। उनमें से अनेक केवल ऐसे संकेतमात्र हैं जो तथ्यों की दिशा में निर्देश भर करते हैं, वे अपने आप में सुस्थापित तथ्य नहीं हैं। यह बहुत कुछ ऐसी ही बात है जैसे आप किसी आदमी को अपने घर के पिछले दरवाजे से बाहर निकल कर भागता देखते हैं और आप अन्दाज करते हैं कि आपके घर में चोरी हुई है। आपके पास इस बात का सबूत नहीं है कि वह अपराधी है, परन्तु साक्ष्य

उस दिशा में अवश्य संकेत करती है। अपराध साबित होने से पहले मजिस्ट्रेट साक्षियों पर ही तो विचार करता है।

इसके अलावा, किसी भी वास्तविकता की सत्ता सिद्ध करने के लिए वैज्ञानिक विधि सर्वथा अपर्याप्त है। उदाहरण के लिए, प्रेम मनुष्यों को प्रभावित करने वाली एक प्रबलतम शक्ति है, इससे कोई इन्कार नहीं करेगा। किन्तु वह वैज्ञानिक प्रमाण या विश्लेषण के बस की नहीं। इसी प्रकार यदि कोई सौन्दर्य को या संगीत को पसन्द न करता हो तो आप उसके सामने इन दोनों की ग्राह्यता और उपयोगिता कैसे सिद्ध कर सकते हैं ? परन्तु इनकी सत्ता से कोई इन्कार नहीं कर सकता। इसी प्रकार परमात्मा की सत्ता के सम्बन्ध में साक्षियां भी उतनी ही प्रबल हैं जितनी प्रबल साक्षियाँ वैज्ञानिक और तर्क के क्षेत्र में प्रायः प्रमाण के रूप में स्वीकार की जाती हैं। फिर भी परमात्मा की सत्ता के पक्ष या विपक्ष में निर्णायक प्रमाण का अभाव है।

हमारी प्रथम साक्षी तो सृष्टि-विद्या में ही मिलती है, प्रकृति की सूक्ष्म शक्तियों और नियमबद्धता से अनुशासित इस विश्व की सत्ता में ही। इसी से पता लगता है कि कोई न कोई नियामक और संघटक है। यह सूक्ष्मता इतनी बड़ी है कि ग्रह-नक्षत्रों का, और हाल में ही जो स्पूतनिक या कृत्रिम उपग्रह तैयार किए गए हैं उनका, पथ पहले से ही बताया जा सकता है। यह सूक्ष्मता और यथार्थता रासायनिक प्रतिक्रिया में शामिल वैद्युतिक आवेशों की अन्तर्वर्ती क्रिया में भी व्याप्त है। इसी कारण अत्यन्त भौतिक घटना और क्रिया को भी हम गणितात्मक नियमों और फार्मूलों में व्यक्त कर सकते हैं। सामान्य मानव के अनुभव के अनुसार इस प्रकार की व्यवस्था किसी नियामक मन की बदौलत ही होती है। जब तक कोई नियामक या व्यवस्थापक शक्ति न हो तब तक नियमबद्धता की बजाय अनियमता और अस्तव्यस्तता ही दिखाई देगी।

दूसरी तरह की साक्षियां जीवन और जीवधारियों की रचना में मिलती हैं। शरीर-क्रिया-विज्ञान का अध्येता होने के नाते लेखक को मनुष्य की तथा अन्य प्राणियों की शरीर रचना में पाई जाने वाली बारीकियों में विशेष रुचि है। शरीर के किसी एक अंग का भी सृजन या निर्माण अत्यन्त प्रतिभाशाली मनुष्य की शक्ति से भी परे की बात है, यद्यपि कृत्रिम साधनों से बहुत सीमित अंश तक हम कतिपय अंगों के कार्यकलाप को पैदा कर सकते हैं। इन कतिपय चीजों में कृत्रिम फेफड़े, कृत्रिम हृदय, कृत्रिम गुर्दे और यान्त्रिक मस्तिष्क शामिल हैं।

मस्तिष्क के सम्बन्ध में कुछ कहना हो तो इतना ही कहा जा सकता है कि उसमें ऐसी अद्भुत क्षमताएं हैं जिन पर विश्वास तक करना कठिन है। परन्तु मस्तिष्क के सम्बन्ध में ज्ञात केवल इतना ही है कि वह विद्युत-सदृश आवेशों को शुरू कर सकता है और उन्हें चालू रख सकता है, एवं कुछ रासायनिक परिवर्तन होते हैं। बस इतना ही, इससे अधिक नहीं। परन्तु उसकी अनेकविध क्रियाओं की व्याख्या

कौन कर सकता है और कौन उनकी गणना कर सकता है ? श्वास-प्रश्वास और हृदय-स्पन्दन जैसी अत्यन्त बुनियादी शारीरिक क्रियाओं को भी नियन्त्रित करने और समस्त मांसपेशियों की क्रियाओं में समन्वय स्थापित करने का काम उसी का है। स्मृति का काम भी मस्तिष्क के ही मरोसे है। मस्तिष्क में ऐसी हजारों मानसिक प्रतिमाएं छिपी रहती हैं जो ध्यान करते ही तुरन्त उपस्थित हो जाती हैं। मस्तिष्क में जो समस्याओं को हल करने की योग्यता है, उसमें जो तर्क करने और समझने की शक्ति है, उसमें जो प्रेरकशक्ति है, इच्छा है, प्रशान्त-प्रसाद गुण है, क्या उन सब की कोई भौतिक व्याख्या की जा सकती है ? सौन्दर्य जैसी किसी भी कलापूर्ण कृति का बोध, प्रेम जैसी आध्यात्मिक वस्तु का विचार, मनुष्य के व्यक्तित्व का विकास—ये सब उसी स्वल्प जीवनरस (प्रोटोप्लाज्म) की ही क्रियाएं है। परन्तु भौतिक आधार पर उनकी व्याख्या—या कैसी भी व्याख्या—कौन कर सकता है ?

शरीर की जो अनेक जटिलताएं हैं, उनमें लगातार होने वाली हजारों रासायनिक प्रतिक्रियाओं का सूक्ष्म नियन्त्रण भी शामिल है। इन रासानिक प्रतिक्रयाओं में से कई तो शरीर के बाहर दुहराई ही नहीं जा सकतीं। पाचनाम्लों की विकृति का निरीक्षण करने वाली प्रतिरोधक प्रणालियां (बफर सिस्टम) ऐसी अनुकूलतम परिस्थितियां पैदा करती हैं जो शरीर को स्वस्थ रखने में सहायक होती हैं। हानिकारक आक्रान्ताओं को लड़कर परे भगाने के लिए रोग-प्रतिकारक (एण्टी बौडी) तत्व निर्मित होते हैं और वे शरीर को निरापदता प्रदान करते हैं। प्रत्येक रोग के निवारण के लिए इन रोग प्रतिकारक तत्वों का निर्माण खास चीज है, ठीक वैसे ही जैसे कि प्रोटोप्लाज्म से भरे रासायनिक द्रव्यों की रचना प्रत्येक व्यक्ति के लिए खास चीज है। इसीलिए प्रत्येक व्यक्ति में एक रासायनिक विशिष्टता होती है। इस विशिष्टता को लाने वाला कौन है ? निश्चय ही वह केवल मनुष्य नहीं है।

अब जरा हृत्पिण्ड के बारे में सोचिए। यह कभी न थकने वाला पिण्ड जीवन भर बेशुमार मांगों को पूरा करता है। फिर भी इसमें कुछ ऐसी रहस्यपूर्ण लयबद्धता है जिसके कारण यह अन्य सब नस-नाड़ियों का सम्बन्ध कट जाने पर भी धड़कता रहता है—कोई दुर्घटना हो जाने पर यह तथ्य अत्यन्त महवत्पूर्ण रूप से सामने आता है। यह सतत शारीरिक चमत्कार हमें कहाँ ले जाएगा ? हम कैसे इसकी व्याख्या करेंगे ?

शारीरिक क्रियाओं के इन चमत्कारों का स्वयं जीवन के रहस्य के साथ बड़ा घनिष्ट सम्बन्ध है। यह एक ऐसा रहस्य है जिसकी खोज में वैज्ञानिक और दार्शनिक चिरकाल से लगे हुए हैं—चिरकाल से लगे तो हुए हैं, किन्तु व्यर्थ। जीवित प्रोटोप्लाज्म की और लगातार घटित होती हुई सूक्ष्म रासायनिक प्रतिक्रियाओं की विशेषताओं के सम्बन्ध में काफी कुछ ज्ञात है, परन्तु उनकी पर्याप्त पूर्ण व्याख्या करने वाली परिभाषाओं का अभाव है। प्राणमूलकतावाद या वाइटैलिज्म के नाम से अभिहित

होने वाला एक सिद्धान्त है जो यह कहता है कि जीवन के लिए आवश्यक भौतिक शक्तियों के अलावा भी एक शक्ति है। परन्तु पहले तो, बहुत से वैज्ञानिकों की दृष्टि में ही इस मत की प्रतिष्ठा नहीं हैं, फिर दूसरे, इससे भी जीवन के वास्तविक रहस्य की व्याख्या नहीं होती हैं। प्रत्येक जीवित प्राणी के विकास और वृद्धि में स्पष्ट दीखने वाली दिशा या सप्रयोजनता की भी इससे व्याख्या नहीं होती। गर्भस्थ भ्रूण ही वृद्धि में वह कौनसी संघटक और संचालक शक्ति है जो कुछ अविशिष्ट कोषों से अन्ततः बड़े टिशू की जटिल व्यवस्था उत्पन्न करवाती है ?

यहां पहुंचकर हमें इस चेतावनी का सामना करना पड़ेगा कि जिस बात को हम नहीं समझते उस हरेक बात को हम परमात्मा की खास दस्तन्दाजी का ही नतीजा न समझें, जैसा कि आदिम काल के वे लोग समझा करते थे जो आंधी-तूफान और बिजली गिरने को भी परमात्मा की अप्रसन्नता की निशानी ही कल्पना किया करते थे। फिर भी, जीवन और शरीर-वृद्धि में जो सप्रयोजनता पाई जाती है वह निश्चित रूप से क्रम और व्यवस्था की ओर संकेत करती है।

विश्वोत्पत्ति विज्ञान के अन्य क्षेत्र की ओर जब हम मुड़ते हैं, तो सृष्टि कैसे उत्पन्न हुई—इस विषय का अध्ययन करते हुए हमें किसी ऐसी अतिरिक्त सृजनशक्ति का आभास मिलता है जो लौकिक नहीं है। यह विचार प्रस्तुत किया गया है कि गरम घूमती हुई गैसों की, जो फैलकर आकार में बड़ी होती गईं और फिर छोटे पिण्डों में विभक्त होती गई, अन्तर्वर्ती क्रिया से प्रथम ठोस द्रव्य का जन्म हुआ है। ये छोटे नीहारिका-रूप पिण्ड आकाश में घूमते गए और फिर अन्त में इन्हीं से ग्रह-नक्षत्रों की जमात खड़ी हो गई। कहा गया कि इसी तरह जीवन भी बना। किन्तु पास्तूर के समय से ही यह वैज्ञानिक तथ्य स्वीकार किया गया है कि किसी अजीव द्रव्य से जीव की उत्पत्ति नहीं हो सकती। और इस प्रकार सृष्टि के उद्गम का उक्त सिद्धान्त कट जाता है। इसके अलावा, विविध परिस्थिति-जन्य अवस्थाएं पैदा करने के लिए अनेकानेक छोटे बड़े उपकरणों से सज्जित हमारी प्रयोगशालाएं प्रोटोप्लाज्म के कुछ संघटक भागों को तैयार करने में तो सफल हो गई हैं, किन्तु जीव को पैदा करने में नहीं। ठीक अनुपात में समस्त आवश्यक तत्वों के अकस्मात् घटित होने की गणितीय सम्भावना नहीं है।

यदि इस तरह कोई द्रव्य तैयार हो भी जाए तो मूल तत्व या वैद्युतिक आवेश, ताप तथा नव-निर्मित पदार्थ को कायम रखने वाली और गति देने वाली, एवं इस समग्र दृश्यमान विश्व को नियन्त्रण में रखने वाली, भौतिक शक्तियां कहां से आईं, यह प्रश्न फिर भी शेष रहता है।

सृजन के इस विचार से भी नई समस्याएं खड़ी हो जाती हैं। यदि जीवन प्रोटोप्लाज्म की लघु राशि से प्रारम्भ हुआ हैं तो उस पर अवश्य किसी बड़ी शक्ति ने अपना कमाल दिखाया होगा, ताकि पृथ्वी पर बसे इन लाखों किस्मों के जीवधारियों

की रचना हो सके। प्रोटोप्लाज्म की लघु राशि के जिस जैव या ऑर्गेनिक विकास से आज का यह संश्लिष्ट और जटिल मानव वना है उसकी जब ज्ञात वैज्ञानिक विधियों से परीक्षा करते हैं तो वे अपर्याप्त ठहरती हैं।

पहली बात तो यह, कि प्रजनन शास्त्र से जातिबोधक गुण-सूत्र या जीव में परिवर्तनों की कुछ ही किस्में पता लगती हैं, परन्तु इस बात की कोई साक्षी नहीं है कि ये परिवर्तन रचना की इतनी वड़ी जटिलता को कैसे जन्म देते हैं। दूसरी बात यह कि 'योग्यतम की विजय' के नियम से इतना तो पता लगता है कि कुछ परिवर्तन होता है, परन्तु उससे यह पता नहीं लगता कि प्राणियों और पौधों की उतनी किस्में और इतनी जातियाँ कैसे बन जाती हैं। फिर इसके अलावा, एण्ट्रोपी या विश्व की कार्यक्षम उपलब्ध ऊर्जा के अध्ययन से यह पता लगता है कि विश्व अपने मूल स्थान से और स्थिति से लगातार ह्रास को प्राप्त हो रहा है। सरल प्रोटोप्लाज्म के जटिल मानव में परिणत होने के लिए जिस ऑर्गेनिक विकास की आवश्यकता होती है, यह उससे ठीक उल्टी दिशा है।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि इस समय हमारा जैसा बौद्धिक स्तर है उसमें किसी को भी, कभी भी, सृजन की विधि का कोई सबूत मिलने की सम्भावना नहीं है। किन्तु सर्वथा भौतिकवादी व्याख्या में हमारा वैज्ञानिक ज्ञान इतनी अधिक असम्भाव्यताओं को प्रकट करता है कि यह मानना अधिक युक्तियुक्त लगता है कि एक विशिष्ट सृजन-विधि और किसी लोकवाह्य शक्ति का प्रमाण ही सृष्टि का मुख्य कारण है। इस बुद्धि युक्त सृजनशक्ति को स्वीकार करते हुए अल्वर्ट आइन्स्टीन इन शब्दों में उसका उल्लेख करता है : "ऐसी असीमित सर्वोच्च तर्कणाशक्ति जो इस अबूझ विश्व में व्यक्त हुई है।"

जैसा कि लेख के शुरू में ही कहा गया है, मैं इस 'शक्ति' को परमात्मा कहता हूँ।

इस विश्व पथ के प्रारम्भ में मुझे जो कुछ दिखता है—वह शाश्वत ऊर्जा या द्रव्य नहीं है, न 'अपरिमेय नियति' है, न 'आद्य तत्वों का आकस्मिक संगम' है, न 'महान् अज्ञात' है,—प्रत्युत सर्वशक्तिमान् महान् प्रभु है।

और में अपनी स्थिति को 'बुद्धि-विरुद्ध' नहीं समझता।

इस संक्षिप्त विवरण में मैंने जैसा दिखाने का प्रयत्न किया है, मर्त्य-मानवों की पहुंच और उनके ज्ञान का क्षेत्र अत्यन्त सीमित है, इसलिए अच्छा यही है कि वे अपनी तथाकथित 'बुद्धि' पर ही बहुत न अड़े रहें—जिसके आधार पर वे किसी भी चीज को बुद्धि-पूर्ण या अ-बुद्धि-पूर्ण ठहराते हैं, क्योंकि उनकी बुद्धि भी अपनी सीमाओं से बाहर जाकर काम नहीं कर सकती।

अस्तु, मेरी तो यही धारणा है और मेरा विश्वास भी यही है।

———

जार्ज अर्ल डेविस

वैज्ञानिक खोजों का संकेत ईश्वर की ओर

भौतिकीविद् — एम० एस०, आयोवा स्टेट कालेज। पी० एच० डी०, मिनेसोटा विश्वविद्यालय। नौसैनिक शस्त्रास्त्र प्रयोगशाला में भौतिकी के विशेषज्ञ के रूप में कार्य। १९५८ से ब्रुकलिन के नौसैनिक जहाज घाट की मैटीरियल लेबोरेटरी में न्यूक्लिओनिक्स विभाग के अध्यक्ष। वर्णक्रम ज्योतिमापिकी (स्पेक्ट्रोफोटोमेट्री) और विकिरण, ज्यामितिक और भौतिक प्रकाशिकी (ऑप्टिक्स) के विशेषज्ञ।

× × ×

ज्यों-ज्यों ज्ञान की वृद्धि होती जाती है और पुराने अन्धविश्वासों को अन्धविश्वास समझा जाने लगता है, त्यों त्यों धर्म और आस्तिकता के सिद्धान्तों का अधिक आलोचनात्मक मूल्यांकन अनिवार्य हो जाता है।

इस प्रकार के पुनर्मूल्यांकन के उद्देश्य अनेक हो सकते हैं। परन्तु हम यह मान कर चलते हैं कि सत्य को जानने की वास्तविक इच्छा से ही पुनर्मूल्यांकन किया जाता है। अज्ञेयवाद और नास्तिकता को गड्डमड्ड कर देने की भूल से हमें बचना चाहिए और हमें यह समझना चाहिए कि जो व्यक्ति सर्वोच्च सत्ता में विश्वास करने के केवल परम्परागत आधारों पर ही प्रहार करता है, उसे केवल इसी कारण 'नास्तिक' की संज्ञा नहीं दी जा जा सकती। हो सकता है कि वह मनुष्य भी परमात्मा की सत्ता में विश्वास करता हो और असल में उसका वह विश्वास भी किसी सुदृढ़ आधार पर ही टिका हो। अन्तर केवल इतना ही होगा कि वह परम्परागत आधारों को स्वीकार नहीं करता।

वैज्ञानिक क्षेत्रों में नास्तिकता का बोलबाला है, इससे इन्कार नहीं किया जा सकता। किन्तु यह जो आम धारणा प्रचलित है कि वैज्ञानिकेतर लोगों की अपेक्षा वैज्ञानिकों में नास्तिकता का प्रचार अधिक है—यह बात कभी सिद्ध नहीं की गई। बल्कि अनेक वैज्ञानिकों ने स्वयं इसके विपरीत अनुभव किया है, यही असलियत भी है।

सर्वोच्च सत्ता में जहां तक मेरे विश्वास का सम्बन्ध है, यह कहना मूर्खता होगी कि वह मेरे प्रारम्भिक शिक्षण से प्रभावित नहीं है। जिन वर्षों में हमारे जीवन का निर्माण होता है उन वर्षों में मिलने वाली धार्मिक शिक्षा के प्रभाव से हम सर्वथा

बच नहीं सकते। किन्तु मैं यह निश्चयपूर्वक कह सकता हूँ कि मेरे वर्तमान विश्वास का, जो परमात्मा की सत्ता के सम्बन्ध में मुझे सिखाए गए विचारों से तो मेल खाता ही है, एक ऐसा दृढ़ आधार है जो धर्मोपदेश द्वारा बताए गए आधार से सर्वथा अलग है।

भौतिकीविद् के रूप में, मुझे ऐसे विश्व की अविश्वसनीय रूप से जटिल रचना को देखने की सुविधा मिली जिसमें छोटे से छोटे परमाणु का आन्तरिक स्पन्दन किसी बड़े से बड़े तारे की विशाल गतिविधि से कम चमत्कारपूर्ण नहीं है, जहां प्रकाश की प्रत्येक किरण, प्रत्येक भौतिक और रासायनिक प्रतिक्रिया, प्रत्येक जीवित प्राणी की प्रत्येक विशेषता, अस्तित्व में आती है और एक जैसे अपरिवर्तनीय नियमों का पालन करती हुई अपनी यात्रा पर आगे बढ़ जाती है। यह वह चित्र है जिसका विज्ञान ने अनावरण किया है, और ज्यों ज्यों कोई इसका अध्ययन करता जाता है त्यों त्यों यह चित्र अधिकाधिक गहन और अधिकाधिक सुन्दर बनता जाता है।

किन्तु वैज्ञानिक अनुसंधान के चमत्कारपूर्ण आविष्करणों के साथ अनिवार्य प्रश्न भी उठ खड़े हुए हैं, जो नए भले ही न हों किन्तु विश्व के, जिसके अविच्छिन भाग के रूप में मानव जाति प्रकट हुई है, रचनाजाल में अधिक गहरी अन्तर्दृष्टि के कारण वे प्रश्न नए दृश्यपट पर खिंच आए हैं। इन प्रश्नों में से एक, जो हमारी अन्तिम नियति और नैतिक जिम्मेदारियों के साथ घनिष्ट रूप से सम्बद्ध होने के कारण महत्वपूर्ण हो उठा है, वही पुराना प्रश्न है: 'क्या परमात्मा है, क्या कोई सर्वोच्च सत्ता है जिसने यह विश्व बनाया हो?' और इसके साथ ही एक और अधिक कठिन प्रश्न है जो अनेक छोटे बच्चों द्वारा तर्क की हैरानी में डालने वाली दीप्ति के साथ पूछा जाता है, "यदि परमात्मा ने हमें बनाया है, तो परमात्मा को किसने बनाया है?"

इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि परमात्मा है या नहीं हैं— इसके बारे में कोई वास्तविक वैज्ञानिक प्रमाण नहीं है। यह भी सर्वथा सम्भव है कि कभी कोई ठोस वैज्ञानिक प्रमाण पेश ही न किया जा सके। हम जिस भौतिक विश्व में रहते हैं, वह जहां तक अन्तर्भेदिनी खोज पता लगा सकी हैं, अपनी रचना और अपने नियमों में पूर्णतः सुसंगत है। परन्तु यह विश्वास करने का कोई कारण नहीं है कि वह हमें विश्व से बाहर की किसी चीज़ के सम्बन्ध में जानकारी भी दे सकता है। हो सकता है कि यह विश्व एक ऐसा कमरा हो जिसमें खिड़कियां हों ही न, या खिड़कियां हों तो ऐसी हों कि हम उनसे अन्दर की ओर ही देख सकते हों, बाहर की ओर नहीं।

क्योंकि परमात्मा की हस्ती या नेस्ती हम सिद्ध नहीं कर सकते, इसलिए हमारे पास सर्वोत्तम उपाय यही रह जाता है कि जो कुछ हम जानते हैं उसके आधार पर हम बुद्धिमत्तापूर्ण अनुमान लगाएं। इस तरह का एक अनुमान, जिस पर किसी

भी उपलब्ध ज्ञान के सहारे तर्कपूर्ण ढंग से प्रहार नहीं किया जा सकता, यह है कि "कोई भी जड़ पदार्थ स्वयं अपने आपको उत्पन्न नहीं कर सकता।"

यदि संसार स्वयं अपने आपको उत्पन्न कर सकता, तो इसमें स्वयं रचयिता या परमात्मा की शक्तियां होतीं, और हम यह निष्कर्ष निकालने को बाध्य होते कि यह संसार ही परमात्मा है। इस प्रकार परमात्मा की सत्ता तो स्वीकार की जाती, अलबत्ता एक खास शक्ल में, क्योंकि तब परमात्मा प्राकृतिक भी होता और अप्राकृतिक भी। मैं ऐसे परमात्मा के बारे में विचार करना पसन्द करता हूँ जिसने इस चराचर जगत् को उत्पन्न तो किया है, किन्तु स्वयं वह जगत् नहीं है, अलबत्ता वह इस जगत् पर शासन करता है और स्वयं इसमें अनुप्रविष्ट है।

मैं इसी में एक दूसरा अनुमान भी जोड़ता हूँ : कोई सृजन जितने ऊँचे परिणामवादी (इवोल्यूशनरी) विकास की ओर ले जाता है, उस सृजन के पीछे सर्वोच्च बुद्धि की उतनी ही प्रबल साक्षी होती है।

हमारे विश्व में जितने भी परिणामवादी विकास हैं, जिन्हें विज्ञान ने इतने निश्चित रूप से प्रदर्शित किया है, वे ही हमारे साक्षी हैं। 'निराकार और शून्यावस्थापन्न' प्रारम्भिक कणों के विश्व से ये करोड़ों तारे और अरबों नक्षत्र बने हैं, जिनका आकार निश्चित है, निश्चित रूप से जिनका वर्णन किया जा सकता है, जो अचल नियमों में बंधे हुए अपनी अनिवार्य जीवनयात्रा पूरी करते हैं और जो मानव के लिए अपरिमेय है।

यही साक्षी काफी है। किन्तु इसमें हमें यह महानतम चमत्कार भी जोड़ना होगा, कि उन अत्यन्त सूक्ष्म मूल कणों में भी वे सब नियम निहित थे जो केवल ग्रह-नक्षत्रों को ही नहीं, किन्तु हजारों अन्य जीवित वस्तुओं को भी, यहां तक कि ऐसे प्राणियों को भी, जो सोच सकते हैं और इच्छा कर सकते हैं और दुर्बोध तथा सुन्दर चीजें पैदा कर सकते हैं, और अन्ततः ईश्वर-सदृश बुद्धिमता का गौरवपूर्ण प्रदर्शन करते हुए स्वयं जीवन की गहराइयों में भी झांक सकते हैं, विकसित करने के लिए आवश्यक है। ईरान के प्रसिद्ध ज्योतिषी और कवि उमर खैयाम की अमर रुबाइयों के एडवर्ड फिट्ज़ेराल्ड कृत अनुवाद में सृष्टि के इस सर्वोच्च चमत्कार के बारे में यों कहा गया है :

"मिट्टी में जा मिला मनुज भी,
बोए कर्म बीज धरती में :
सर्गोदय की उषा बुन रही,
प्रलय कथा स्वर्णिम वर्णों में।

—पृथ्वी की पहली मिट्टी को गूंध कर उन्होंने अन्तिम मनुष्य को बनाया

और वहाँ उन्होंने अन्तिम फसल का बीज बो दिया : और सृष्टि की पहली उषा ने वह लेख लिखा जिसे गणना करने वाले काल का अन्तिम प्रभात पढ़ेगा।"

विश्व के विकास के पीछे किसी परात्पर बुद्धि की ये जो अभिव्यक्तियां हैं, वे परमात्मा की सत्ता सिद्ध करने के लिए, मेरी दृष्टि से, काफी हैं। कोई भी जड़ पदार्थ अपनी रचना आप नहीं कर सकता—इस अनुमान के बिना भी वे काफी हैं।

—o—

थामस डेविड पाक्सं

सादा पानी हो कहानी कह देगा

गवेषणा-रसायनविद्

पी० एच० डी०, इलिनोय विश्वविद्यालय । स्टेनफोर्ड गवेषणा संस्था में भूतपूर्व रसायन विभागाध्यक्ष। क्लोरोक्स कैमिकल कम्पनी के गवेषणा निदेशक । माइक्रोकैमिस्ट्री, इलैक्ट्रोलाइटिक फिनोमिना, एक्स-रे डिफेक्शन और कृत्रिम काल के विशेषज्ञ।

× × ×

ह्विटेकर चैम्बर्स ने अपनी 'विटनेस' (साक्षी) नामक पुस्तक में एक सामान्य घटना का जिक्र किया है जिसने उसके जीवन का रुख ही मोड़ दिया (और सम्भवतः मनुष्य जाति के जीवन का रुख मोड़ने में भी वह समर्थ हो)। वह अपनी छोटी बच्ची की देखभाल कर रहा था कि अचानक अनजाने ही उसके कानों की आकृति की ओर उसका ध्यान चला गया। अपने मन में उसने सोचा कि यह कैसे सम्भव है कि इतनी नाजुक परतें अकस्मात् ही बन गई हों। केवल पूर्व-विचारित इच्छा के द्वारा ही उनकी रचना सम्भव है। किन्तु अपने सन्देहवादी मन से उसने इस विचार को बाहर धकेल दिया क्योंकि वह समझता था कि अगला तर्कसंगत कदम यही होने वाला है : इच्छा का मतलब है कि पहले कोई इच्छाकर्ता परमात्मा हो—और यह ऐसी बात थी जिसे वह स्वीकार करने को तैयार नहीं था।

अपने प्राध्यापकों और साथी अनुसंधानकर्ताओं में से अनेक वैज्ञानिकों को मैं जानता हूँ, जिनके रसायन-विज्ञान और भौतिकी में देखे गए तथ्यों के सम्बन्ध में ऐसे ही विचार हैं, फिर भी उन्होंने इतनी गहरी निराशा से बात नहीं की है जितनी कि ह्विटेकर चैम्बर्स को अपने मन में मिली थी।

मेरे चारों ओर जितना भी यह अजैव या इनौर्गेनिक संसार है, मैं उसमें नियम और प्रयोजन देखता हूँ। मैं विश्वास नहीं करता कि वे सब पदार्थ वहाँ अकस्मात् हैं, या परमाणुओं के आकस्मिक संघात से बने हैं। मेरे लिए तो उस नियम का अर्थ है बुद्धि, और इस बुद्धि को मैं परमात्मा कहता हूँ।

शायद किसी रसायनविद् के लिए तत्वों की नियतकालिक व्यवस्था सबसे अधिक आकर्षक विषय हो। रसायनशास्त्र का नया अध्येता सबसे पहले जिस चीज को सीखता है वह है तत्वों में कालक्रम या नियमबद्धता। इस क्रम का अनेक तरह

से वर्णन और वर्गीकरण किया गया है, किन्तु हम सामन्यतया इस शताब्दी के रूसी रसायनविद् मेडेलीव को अपनी कालक्रमिक तालिका का श्रेय देते हैं। इस व्यवस्था से न केवल ज्ञात तत्वों और उनके समासों (कम्पाउण्डों) का पता लगता है, किन्तु जिन तत्वों की अभी तक खोज नहीं हुई है उनकी गवेषणा के लिए भी प्रेरणा मिलती है। तालिका की जो क्रमबद्ध व्यवस्था है उसमें खाली स्थानों को देखकर उन तत्वों की कल्पना पहले से ही कर ली गई है।

अज्ञात और नए समासों के गुणों का पूर्व कथन करने में तथा उनकी प्रतिक्रियाओं का अध्ययन करने में सहायता के लिए रसायनविद् आज भी उस कालक्रम तालिका का प्रयोग करते हैं। वे रसायनविद् सफल हुए हैं, यही इस तथ्य की सबल साक्षी है कि अजैव या इन-ऑरगैनिक संसार में सुन्दर क्रम विद्यमान है।

किन्तु अपने चारों ओर हमें जो क्रमवद्धता दृष्टिगोचर होती है वह अन्धाधुन्ध और विवेकहीन ढंग से सर्वव्यापक नहीं है। उसमें कल्याण और हित की भावना भी समाविष्ट है—जो इस तथ्य की साक्षी है कि उस दिव्य बुद्धिमान् सत्ता को भलाई और सुख की भी उतनी ही चिन्ता है जितनी प्रकृति के अचल नियमों की। यदि आपको अपने चारों ओर इस बात के कहीं अपवाद नजर आते हैं तो वे आपकी बुद्धिमत्ता के नियमों को ही चुनौती हो सकते हैं।

उदाहरण के लिए पानी को ही ले लीजिए। फार्मूला के अनुसार उसका जो भार है—१८—इससे हरेक यह कहेगा कि इसे सामान्य तापमानों और दबावों में गैस होना चाहिए। अमोनिया का फार्मूलानुसारी भार है १७—और वह ऋण ३३ सेंटीग्रेड जितने कम तापमान पर भी वायुमण्डल के वर्तमान दबाव में गैस ही है। कालक्रम तालिका में स्थिति के हिसाब से हाइड्रोजन सल्फाइड का पानी से घनिष्ट सम्बन्ध है और उसका फार्मूला-भार है ३४, और वह ऋण ५९ सेंटिग्रेड तापमान पर भी गैस ही है। किन्तु सामान्य तापमान पर भी पानी सर्वथा द्रव ही रहता है। यह ऐसी बात है जिस पर किसी को भी रुक कर सोचने को बाधित होना पड़ेगा।

इतना ही नहीं, पानी में और भी अनेक गुण हैं जो मनोरंजक हैं और उन सबको एकत्र करने पर मेरे लिए इच्छा की प्रबल साक्षी उपस्थित हो जाती है। मोटे तौर पर यह कहा जा सकता है कि हमारे इस ग्रह—पृथ्वी—का तीन चौथाई भाग पानी से ही ढका हुआ है और इसी कारण वर्तमान ऋतुओं की व्यवस्था पर और तापमान पर उसका भारी प्रभाव पड़ता है। यदि पानी में इन गुणों का मेल न होता तो तापमान में कितना उलटफेर और उतार चढ़ाव होता, इसकी कल्पना ही की जा सकती है। पानी को पिघलने के लिए काफी गर्मी चाहिए, यह चिरकाल तक द्रवावस्था में बना रहता है और भाप बन कर उड़ जाने के लिए तो उसे और भी अधिक गर्मी चाहिए। इन गुणों के कारण, तापमान में जो उलटफेर होते हैं उनके आघात को अपने अन्दर जज़्ब कर लेने की पानी के अन्दर आश्चर्यजनक शक्ति है।

दूसरे शब्दों में यदि पानी के अन्दर यह तापमानरोधक शक्ति न होती तो यह पृथ्वी जीवन के लिए उतनी अनुकूल न होती और मानवीय गतिविधियों के लिए उतनी सुहावनी भी न होती।

पानी में कुछ अन्य भी ऐसी अद्‌भुत विशेषताएं हैं जिनके कारण मेरे मन में यह धारणा होती है कि इसे किसी ऐसे स्रष्टा ने बनाया है जिसे स्वरचित जीव-धारियों की भी चिन्ता है। जितने भी ज्ञात पदार्थ हैं उन सब में पानी एक मात्र ऐसा द्रव्य है जो जमने पर और हल्का हो जाता है। जीवन के लिए यह अत्यन्त और अत्यन्त महत्वपूर्ण बात है। इसी के कारण नदियों और झीलों की तह में डूब जाने के बजाय बर्फ ऊपर तैरती रहती है और धीरे धीरे कठोर पिण्ड का रूप धारण कर लेती हैं। पानी के सबसे ऊपर की सतह पर यह विसंवाहन (इन्सुलेशन) की ऐसी परत बना देती है जिसके कारण नीचे का पानी जमाव-बिन्दु से ऊपर के तापमान पर बना रहता है। मछलियाँ तथा अन्य जलजन्तु और जलीय वनस्पति इससे सुरक्षित हो जाती हैं और यह बर्फ तब पिघलती है जब सर्दी समाप्त हो जाती है और वसन्त ऋतु आ जाती है।

इस सर्वत्र सुलभ सामान्य पानी के अन्य गुणों की ओर भी संकेत किया जा सकता है। इसके धरातल का तनाव भी बहुत अधिक होता है जिसके कारण मिट्टी के माध्यम से पोषक तत्त्व पौधों के बढ़ने में सहायता पहुंचाते हैं। उच्च डायलेट्रिक कान्स्टैंट के कारण पानी सर्वोत्तम घुलनशील और विलायक द्रव्य भी है जिससे रक्त का मुख्य घटक होने के कारण हमारे शरीरों की जीवन-प्रक्रिया में भी वह महत्वपूर्ण भाग अदा करता है। तापमान की अति विस्तृत श्रृंखला पर इसका वाष्पदाब भी ऊँचा है जिसके कारण जीवन के लिए जरूरी समस्त श्रृंखला में यह द्रव ही बना रहता है।

अनेक वैज्ञानिकों ने पानी के इन आश्चर्यजनक गुणों का अध्ययन किया है और देखी गई घटनाओं की व्याख्या के लिए तरह तरह के मतों की स्थापना की है। किन्तु यदि इस समग्र विषय के "कैसे" को हम समझ भी सकें तो भी हमें 'क्यों' का उत्तर तलाश करना पड़ेगा। और अकेला पानी ही तो ऐसा आश्चर्यजनक द्रव्य नहीं है। ऐसे और कितने ही द्रव्य हैं जिनमें सनसनीखेज विशेषताएं हैं और हमारा सीमित मानवीय मस्तिष्क आश्चर्य से स्तब्ध होकर, मौनभाव से घुटने टेक कर केवल सोचता ही रह सकता है।

इन सब चमत्कारों के लिए मैंने, अपने तईं, एक व्याख्या प्राप्त कर ली है—वह सन्तोषजनक और समाधानकारक व्याख्या यह है कि प्रकृति में नियमबद्धता सर्वोच्च बुद्धिमान् के कारण और उसमें रचना-कौशल किसी सर्वोच्च कुशल रचयिता के कारण है। उस रचयिता में मुझे जहां बुद्धिपूर्वक नियोजन दृष्टिगोचर होता है, वहां यह भी दिखाई देता है कि उसमें अपनी बनाई सृष्टि के प्रति प्रेम भी है, हित-भावना भी है।

——o——

जान विलियम क्लोट्ज़

प्रकृति की जटिलता और ईश्वर

आनुवंशिकीविद् — पी-एच० डी०, पिट्सवर्ग विश्वविद्यालय। बी० डी० कन्कोर्डिया सेमिनारी। १९४५ में कन्कौर्डिया टीचर्स कालेज में जीव विज्ञान, शरीर-रचना-शास्त्र और प्रकृति-विद्या के प्राध्यापक। जेनेटिक्स एसोसियेशन के सदस्य। हैब्रोन्ने कन और मोरमोनिएला की अनुवंशिकता, परिस्थिति विज्ञान (इकोलौजी), जीवघ्नों (लीथल) और अर्धजीवघ्नों के विशेषज्ञ।

× × ×

प्रस्तुत विषय पर विचार करते समय दो प्राचीन उक्तियाँ एक साथ ध्यान में आती हैं :

आसमान ईश्वर के गौरव की घोषणा करता है और नभोमण्डल उसकी कारीगरी प्रदर्शित करता है।

मूर्ख अपने दिल में कहता है, कोई ईश्वर नहीं है।

हमारा यह संसार इतना जटिल और इतना दुर्बोध है कि यह अकस्मात् से निर्मित नहीं हो सकता। यह इतनी सूक्ष्म गहनताओं से भरा हुआ है कि उसके कारणस्वरूप किसी बुद्धिमान सत्ता की आवश्यकता है। वह किसी अन्धी और विवेकहीन शक्ति का चमत्कार नहीं हो सकता। इन गहनताओं को समझने में विज्ञान हमारी सहायता करता है और इस प्रकार परमात्मा की ओर संकेत करने वाला हमारा प्रकृति-ज्ञान बढ़ता जाता है।

इन गहनताओं में से कुछ हैं विविध अनिवार्य सम्बन्ध। इन सुविज्ञात सम्बन्धों में से एक वह सम्बन्ध है जो यूका शलभ (मौथ) और यूका पौधे, या स्पेनिश बायोनट के बीच है। यूका पुष्प नीचे की ओर लटकता है और स्त्री-पुंकेसर (पिस्टिल) पुंकेसर (स्टेमन) से कुछ नीचे रहता है। किन्तु पराग को ग्रहण करने के लिए उपयुक्त पुष्प केसर का अग्रभाग (स्टिग्मा) प्याले के आकार का होता है और इस ढंग से बना होता है कि उसके अन्दर पराग का गिरना असम्भव होता है। फिर भी यूका शलभी द्वारा बस पराग ले जाया ही जाना चाहिए और वह शलभी सूर्यास्त के बाद अपना काम प्रारम्भ कर देती है। यूका शलभी पौधों के परागकोषों में से कुछ पराग एकत्र करती है और इसी काम के लिए खास तौर से बनाए गए अपने मुखावयवों में भर

लेती है। तब वह दूसरे यूका पुष्प की ओर उड़ती है और अपने अण्डनिक्षेपक अंग से अण्डाशय (ओवरी) में छेद करती है और वह एक या दो अण्डे रखकर नीचे को सरक जाती है तथा परागराशि को पुष्पकेसर के अग्रभाग में भर देती है। इस पौधे से बहुत से बीज पैदा होते हैं। कुछ बीजों को शलभ शावक या इल्लियाँ खा जाती है और कुछ बीज परिपक्व अवस्था तक पहुंचते हैं ताकि पौधे का वंश चल सके।

अंजीर और छोटे ततैयों के गुट के सम्बन्ध में भी इसी प्रकार की स्थिति है। दो प्रकार के पुष्पगुच्छ पैदा होते हैं, एक गुच्छ में स्त्रीपुष्प और पुं-पुष्प दोनों रहते हैं, और दूसरे गुच्छ में केवल स्त्री-पुष्प रहते हैं। इन दोनों में ही पराग स्त्री-ततैयों द्वारा पहुंचाया जाता है। इन पुष्पगुच्छों के द्वार ऊपरवाली तहों से इतने कस कर बन्द होते हैं कि उनके अन्दर बड़ी कठिनाई से ही पहुंचा जा सकता है। आम तौर पर अन्दर घुसने के प्रयत्न में उनके पंख टूट जाते हैं। जिस गुच्छ में स्त्री-पुष्प और पुं-पुष्प दोनों होते हैं, उसमें अपना अण्डनिक्षेप करने के पश्चात् स्त्री-ततैया मर जाती है। ये अण्डे सेये जाते हैं और ततैया-शावक निकल पड़ते हैं। किन्तु स्त्री-शावक ही गुच्छ को छोड़ने में समर्थ होते हैं, पुं-शावक मर जाते हैं। गुच्छ को छोड़ने से पहले स्त्री-ततैयों के परों पर पराग चिपट जाता है और वे उसे लेकर दूसरे पुष्पगुच्छ तक उड़ कर जाती हैं। यदि इस गुच्छ में भी स्त्री-पुष्प और पुं-पुष्प दोनों हुए, तो वही प्रक्रिया दुहराई जाती है। किन्तु यदि उसमें केवल स्त्री-पुष्प हुए, तो वह विना अण्डनिक्षेप किए ही मर जाती है, क्योंकि ये स्त्री-पुष्प इतने लम्बे होते हैं कि वह अपने अण्डे छोड़ने के लिए उनके तल तक पहुंच ही नहीं पाती। किन्तु ऐसा करने के प्रयत्न में वह इन फूलों को परागयुक्त कर देती है जिनसे बाद में पके अंजीर निकलते हैं। जब अमेरिका में पहली बार अंजीर का पौधा लाया गया तब उस पर फल नहीं आये। किन्तु जब वहां ततैये आ गए तभी वहां व्यापारिक दृष्टि से लाभदायक अंजीर-उद्योग पनप सका।

कारा पुष्प (प्रिज़न फ्लावर) बहुत असामान्य होते हैं। इस पौधे के भी दो प्रकार के पुष्पगुच्छ होते हैं—स्त्री-गुच्छ और पुं-गुच्छ। ये दोनों प्रकार के गुच्छ वेदी के, जो अधबीच से नीचे की ओर संकुचित होती है, अन्दर ही पैदा होते हैं। इसका परागीकरण आमतौर पर एक छोटी मक्खी द्वारा होता है, जो अन्दर आती है, किसी तरह संकुचित भाग को पार कर जाती है, किन्तु ऐसा करने के बाद वह अपने आपको जाल में फंसा हुआ पाती है। उसके मार्ग में, वेदी का संकुचित भाग ही नहीं किन्तु दोनों ओर चिपचिपे पार्श्व भी होते हैं जो उसे कहीं भी टिकने नहीं देते। तब, वह जोर से बेतहाशा भिनभिनाती है, ऐसा करने में पराग उसके चारों ओर चिपट जाता है। उसके कुछ देर बाद ही दोनों पार्श्व फिर खुरदरे हो जाते हैं, और वह पराग से भरी हुई बाहर निकलने में समर्थ हो जाती है। यदि वह किसी दूसरे पुं-गुच्छ में जावे तो फिर यही प्रक्रिया होगी। किन्तु यदि वह किसी स्त्री-गुच्छ में जाये

तो सम्भव है कि वह बच कर न आ सके। क्योंकि उसके जोर से भिनभिनाने से पुष्प में पराग छिड़का जा चुका होता है और इस बार मक्खी के बचकर निकल जाने में पौधे की कोई रुचि नहीं है। पौधे का लाभ इसी में है कि वह उसे पुं-वेदी से ही बच कर निकलने दे, ताकि वह अपने साथ पराग ले जा सके। स्त्री-पुष्प से मक्खी के बच कर निकलने की पौधे को कोई पर्वाह नहीं है।

ये सब दृष्टान्त परमात्मा की सत्ता की गवाही देते हैं। यह विश्वास करना कठिन है कि यह सब अन्ध अकस्मात् के कारण हुआ हो। इन घटनाओं की विद्यमानता किसी निर्देशक हाथ की ओर और उसकी सृजनशक्ति की ओर संकेत करती है।

और इसके अलावा उन अनेक उदाहरणों में हम इस बात की साक्षी देख सकते हैं जिनमें मनुष्य ने प्रकृति के सन्तुलन को बदलने और उसे उलटने का प्रयत्न किया, किन्तु मनुष्य को सफलता नहीं मिली।

जब आस्ट्रेलिया में शुरू-शुरू में बसने के लिए यूरोप से लोग आए तब डिंगो या जंगली कुत्ते के सिवाय वहाँ उन्हें और कोई अन्य स्तनपायी प्राणी नहीं मिला। वे क्योंकि यूरोप से आए थे, इसलिए यूरोप में पुष्कल मात्रा में मिलने वाले खरगोशों के शिकार की स्मृति लोगों को रह रह कर आती रहती थी। इसलिए प्रकृति में ही सुधार करने की गरज से थामस आस्टिन ने १८५६ में यूरोप से २४ खरगोश मंगाए। परन्तु उसका परिणाम दुर्भाग्यपूपूर्ण निकला, क्योंकि उन खरगोशों पर नियन्त्रण रखने के लिए आस्ट्रेलिया में कोई प्राकृतिक शत्रु नहीं थे। खरगोशों की संख्या आशातीत रूप से बढ़ गई और उनसे भारी नुकसान हुआ, उन्होंने वह घास ही नष्ट कर दी जिस पर भेड़ें पला करती थीं। खरगोशों की संख्या पर नियन्त्रण रखने के लिए पहले प्रयत्न यह किया गया कि महाद्वीप के आरपार ७,००० मील की ऐसी वाड़ लगाई गई, जिसमें खरगोश नहीं आ सकते थे। परन्तु यह प्रयत्न विफल हो गया, क्योंकि खरगोश उन बाड़ों को पार करके निकल आते थे। तब उनकी संख्या घटाने के लिए बहुलता की प्रणाली अपनाई गई—अर्थात् उनकी संख्या खूब बढ़ने दी गई ताकि वे आपस में लड़मिड़ कर समाप्त हो जाएं। किन्तु यह प्रयत्न भी विफल हो गया। केवल हाल के वर्षों में ही इस समस्या का हल ढूंढ़ा गया है। वह हल है मिक्सोमेटोसिस नामक रोग का जीवाणु, जिससे खरगोश मर जाते हैं और उनकी संख्या नियंत्रण में रहती है। परन्तु शायद यह भी अन्तिम समाधान सिद्ध न हो। क्योंकि अब यह बात सुनाई देने लगी है कि आस्ट्रेलिया में ऐसे खरगोशों की संख्या बढ़ती जा रही है जिन पर इस रोगाणु का कोई असर नहीं होता। फिर भी अब तक खरगोशों की जितनी संख्या घट गई है उसी का स्पष्ट लाभ नजर आने लगा है। अनेक दशकों तक प्रेरी के जो मैदान खड्डों और भूक्षरणों से भरे रहे और जो पहाड़ियां निचाट नंगी हो गई थीं, अब उनमें खूब बढ़िया हरियाली छा गई है। १९५२-५३ में अकेले भेड़ उद्योग में ही इतनी तरक्की हुई और इतना लाभ हुआ कि मुद्रा में उसका मूल्य ८४,०००,००० डालर बैठता है।

अमेरिका में भी हमें इसी प्रकार खरगोशों की समस्या का सामना करना पड़े, यह सम्भव है। हमारे देशी खरगोश से यूरोप के खरगोशों की नस्ल भिन्न है। यूरोपियन खरगोश, वाशिंगटन के तट से दूर सान जुआन द्वीप के अलावा जहाँ यह नस्ल सन् १९०० से ही अलग-अलग रूप से पनपती रही, अमेरिका भर में और कहीं नहीं मिलते। हाल में ही कुछ खिलाड़ियों के क्लबों ने इस यूरोपियन या सान जुआन नस्ल को अमेरिका के विविध भागों में लोकप्रिय बनाने का प्रयत्न किया है, क्योंकि इस नस्ल की पूंछ बड़ी सुन्दर होती है और हरेक नगर में अलग अलग उसका आयात करना, जैसा कि पहले किया जाता था, सम्भव नहीं था। इसका परिणाम बड़ी सरलता से मुसीबत पैदा करने वाला बन सकता था, क्योंकि आस्ट्रेलिया की तरह सान जुआन खरगोश की नस्ल भी अमेरिका भर में छा जाती। परन्तु इस समस्या से बचने के लिए हाल में ही यह निर्णय किया गया है कि सान जुआन खरगोश के शिकार पर से सब प्रकार की पावन्दियां हटा ली जाएं। अब इस खरगोश का शिकार सारे साल किया जा सकता है।

यूरोप में खरगोश सम्बन्धी रोग-जीवाणु के प्रवेश का क्या परिणाम निकला, यह बात भी ध्यान देने की है। एक फ्रेंच डाक्टर इस इस बात से परेशान था कि उसकी वनस्पति वाटिका को खरगोश बरबाद कर जाते हैं। उसने यह रोगाणु मँगाया और कुछ खरगोशों को जाल में पकड़कर उसने उनको इस का इन्जेक्शन दे दिया। फिर वे खरगोश छोड़ दिए गए। परिणाम यह हुआ कि न केवल फ्रांस में खरगोशों की संख्या घट गई, किन्तु निकटवर्ती यूरोप के अन्य देशों में भी खरगोशों की संख्या घट गई। इसका समग्र रूप से प्रभाव क्या पड़ा, इस बात पर अभी विवाद है। पहले आम जनता को जो मांस सुलभ था और जिस पर उसका निर्वाह था, उस मांस की पूर्ति न हो सकी। दूसरे लोग कहते हैं कि बाग बगीचों में जो फसल बढ़ गई उससे होने वाली आय की तुलना में मांस न मिलने से होने वाली क्षति कहीं ज्यादा बड़ी है।

क्षण भर पहले ही हम परमात्मा की सत्ता की साक्षी देने वाले दृष्टान्तों की चर्चा कर रहे थे। अब जो कुछ हम वर्णन कर रहे हैं, वह परमात्मा की बुद्धिमत्ता का प्रबल साक्षी है। परमात्मा ने प्रकृति में जो संतुलन स्थापित किया है वह नाजुक तो है ही, अकारण भी नहीं है। मनुष्य यदि इस संतुलन में हस्तक्षेप करता है तो इससे उसी को भारी हानि उठानी पड़ती है। मनुष्य के मन में यदि यह भावना आती है कि मैं अपने प्रयत्न से उस सन्तुलन में कुछ सुधार कर सकता हूँ, तो वह उसका अहम्भाव ही है। प्रकृति पर जिसका नियन्त्रण है उस परमात्मा की बुद्धि की तुलना में मनुष्य की बुद्धि पासंग भी नहीं है।

—०—

ओस्कार लियो ब्राउएर

हमें परेशान करने वाला सबसे महत्वपूर्ण प्रश्न

भौतिकीविद् और रसायनविद्

एम० एस-सी०, पी-एच० डी०, केलिफोर्निया विश्वविद्यालय। १९२६ से केलिफोर्निया के सान जांस स्टेट कालेज में भौतिकी और रसायन के प्राध्यापक। ओरगैनिक कैमिस्ट्री, सिंकोटोक्सिन में सिंकोनाइन की प्रतिक्रिया की दर और फासफोरस के लिए मिट्टी के विश्लेषण के विशेषज्ञ।

× × ×

इस लेखक का यह विश्वास है कि वस्तुओं के उद्गम की समस्या ही हमें सब से अधिक परेशान करने वाला प्रश्न है। वस्तुओं का मूल उद्गम हम क्या बताते हैं—इसी की व्याख्या के अनुसार जीवन का कोई भी तत्वदर्शन स्वीकरणीय या अस्वीकरणीय ठहरता है।

हम जिस ग्रह (पृथ्वी) पर निवास करते हैं, पहले उसी को लें। सही-सलामत दिमाग़ वाला कोई भी व्यक्ति न इस पृथ्वी की सत्ता से इन्कार करेगा और न इसके चारों ओर विद्यमान इस विशाल प्रपंच से इन्कार करेगा। इस प्रकार हम ऐसे पदार्थ पर विचार कर रहे हैं जो असंदिग्ध रूप से वास्तविक है।

पृथ्वी का द्रव्यमान (मास) भी अकल्पनीय है, और वह है दस अरब का ६६०० अरब गुणा टन। दस अरब टन कितना होता है, क्या किसी मनुष्य का दिमाग इतने बड़े पिण्ड का खयाल कर सकता है? कोई दस लाख टन की कल्पना तो करके देखे, फिर अरब गुणा अरब की कल्पना तो और मुहाल है। दैनिक मजदूरी पर काम करने वाला मजदूर दिन की समाप्ति पर कहता है: एक दिन और तो एक डालर और, उसी प्रकार दस लाख दिन तो दस लाख डालर।" परन्तु क्या वह मजदूर यह जानता है कि दस लाख दिन का अर्थ क्या होता है? इसका अर्थ होता है, २,७४२ वर्ष। इतने दिन लगातार काम ही काम, और बीच में छुट्टी का दिन एक भी नहीं—क्या वह मजदूर इतने सालों तक काम करने में समर्थ होगा—इतने साल तक वह जीवित रह सकेगा? ७०-८० साल से अधिक सामान्य मनुष्य जी नहीं पाता—फिर अरबों गुणा अरबों की विशालता की कल्पना तो करिए।

जिसे हम पृथ्वी कहते हैं—यह इतना विशाल पिण्ड कहां से आया ?

और उसके बाद हमारे सौरमण्डल के जो अन्य ग्रह हैं, उनकी विशालता पर विचार करिए। इस समस्त सौरमण्डल के परिवार का सबसे बड़ा सदस्य है सूर्य और वह पृथ्वी के दस अरब गुणा ६६०० अरब टन द्रव्यमान से भी ३,३०,००० गुणा भारी है। हमारी आकाश गंगा में कम से कम दस अरब सूर्य हैं जिनमें से औसतन प्रत्येक सूर्य का भार हमारे सूर्य से बड़ा है। प्रमुख ज्योतिर्विद् हमें अत्यन्त विश्वास के साथ बताते हैं कि हमारी आकाशगंगा जैसी आकाशगंगाएं कम से कम १००,००० और हैं। जो भी हो, तारों की संख्या तो लगभग असंख्य ही है। फिर इन सब तारों के द्रव्यमान की कल्पना करिए, कितना होगा ? खयाल करने मात्र से सिर चकराने लगता है। यह सब इतना द्रव्यमान और ये अनगिनत आकाशीय पिण्ड कैसे पैदा हुए ? इसके केवल दो ही उत्तर सम्भव हो सकते हैं : वे या तो सदा से हैं, या वे पैदा किए गए हैं।

यदि पहली बात को लें तो एक मिथ्या परिकल्पना पर विश्वास करना होगा। जितने भी भौतिक पदार्थ हैं उनकी यह विशेषता या गुण है कि उनमें परिवर्तन, वृद्धि और विकास होता रहता है। प्रकृति-विज्ञान निश्चित रूप से इस बात की ओर संकेत करता है कि चीजों की शुरूआत है। यदि दूसरे उत्तर को लें, अर्थात् उनका सृजन हुआ है, तो उसके सम्बन्ध के विभिन्न युगों में परस्पर खूब मतभेद रहा है। सृष्टि के उद्‌गम के सम्बन्ध में जितने भी वाद, मत या विचार हैं उन सबका हम पांच शीर्षकों में वर्गीकरण कर सकते हैं :

सबसे पहले है—पौराणिक देव-कथा-माला। निस्सन्देह वह भी मानवीय कल्पना की उपज है। किन्तु देवकथा-माला भी यह संकेत करती है कि मानवात्मा में कोई ऐसी चीज है जो उसे इस आदिमजातीय सत्य की ओर खींचती है कि कोई मानवेतर दिव्य शक्ति है जिसने इस विश्व का निर्माण किया है।

दूसरा है—परम्परा। इसमें सृजन सम्बन्धी वे कथाएं और वर्णन आते हैं जो एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक पहुंचते जाते हैं। यद्यपि इन वर्णनों का चुनाव बुद्धिमत्ता-पूर्वक नहीं हुआ है, फिर भी इनमें कभी कभी ऐसी सामग्री मिल जाती है जिससे सृष्टि के मूल के सम्बन्ध के सबल सूचना मिलती है।

तीसरा है—दर्शन या तत्वचिन्तन। मनुष्यों में जो गम्भीर विचारक होते है वे सृष्टि के मूल के सम्बन्ध में कुछ परिकल्पनाओं (हाईपोथेसिस) को मान लेते हैं और फिर उन परिकल्पनाओं के अनुसार समस्या को हल करने का प्रयत्न करते हैं। यदि इन परिकल्पनाओं को अन्य विचारक लोग भी मान लेते हैं तो वे लोकप्रिय हो जाती हैं और विश्व भर के विद्या के क्षेत्रों में उन परिकल्पनाओं के बारे में यह समझा जाता है कि वे वैज्ञानिक गवेषणा और अध्ययन का फल हैं। अपेक्षाकृत कम विद्वान् या शिक्षक गण उन परिकल्पनाओं का अनुगमन करते हैं।

चौथे हैं—भौतिक और जीव-विद्या-सम्बन्धी विज्ञान। ये विज्ञान मानव के सम्बन्ध में और प्रकृति के सम्बन्ध में ज्ञात तथ्यों का अध्ययन करते हैं। भ्रूण के अन्दर उच्चशक्ति सम्पन्न 'लैंस' और छुरियां ले जाकर वे पार्थिव सत्ता के आद्यरूपों की खोज करते हैं, चीरफाड़ करते हैं और मिलान करते हैं, अमित-प्राय ऊँचाइयों की वे अपने नाजुक, बड़े और जटिल उपकरणों से गणना करते हैं, नाप-जोख करते हैं, वे प्रकृति के इतिहास का और उसके नियमों का तथा उन नियमों के कार्य करने के ढंग का अध्ययन करते हैं : और इस प्रकार तथा अन्य प्रकारों से वे वस्तुओं के उद्गम के सम्बन्ध में तथ्यात्मक सचाइयों का पता लगाने का प्रयत्न करते हैं।

पांचवां है—विशिष्ट दैवीय शक्ति की अभिव्यक्ति। इसका दूसरा नाम है—धर्मशास्त्र। विज्ञान यह सिद्ध कर सकता है कि सृजन का कार्य किसी समय प्रारम्भ हुआ है, जिसका अर्थ यह है कि दिव्य शक्ति या दिव्य बुद्धि की सत्ता है। विज्ञान यह भी सिद्ध कर सकता है कि किसी दिव्य ज्ञानवान् शक्ति के बिना इस विपुल विश्व में विद्यमान नियमों की गहन प्रणाली को और कोई नहीं बना सकता। परन्तु वह दिव्य सत्ता परमात्मा ही है, और कोई नहीं, यह ज्ञान धर्मशास्त्रों द्वारा ही सम्भव है।

विश्व के इस वृहदाकार और ग्रह-नक्षत्रों की अगणित संख्या तथा अमित भार को देखते हुए, और उन ग्रह-नक्षत्रों पर ही नहीं, किन्तु पृथ्वी के समस्त चर-अचर समुदाय पर शासन करने वाले नियमों के वैविध्य को देखकर, क्या यह बात एकदम अजीब नहीं लगती कि हमारे साम्यवादी बन्धु, जो मानव जाति का कोई अनल्प भाग नहीं है, परमात्मा की सत्ता से ही इन्कार कर देते हैं ? और क्या यह बात भी उतनी ही अजीब नहीं लगती कि गैर-साम्यवादी जगत् का शिक्षित समुदाय व्यवहार में परमात्मा की उपेक्षा करके उसकी सत्ता का खण्डन करता है ?

यदि परमात्मा को सृष्टिकर्ता और विश्व की सर्वोच्च सत्ता मान लिया जाए तो इससे एक काम जरूर होगा—मनुष्य मनुष्य के प्रति मनुष्यहीनता का बर्ताव करना छोड़ देगा। इसका अर्थ होगा मनुष्य में एक नई भावना का उदय, अन्तरात्मा का चैतन्य और निर्मल न्याय। इसका अर्थ होगा सबसे प्रेम और सबकी भलाई।

नास्तिकता का अर्थ है—युद्ध और कलह। वैज्ञानिक के रूप में मैं इनमें से एक को भी पसन्द नहीं करता। सिद्धान्त के रूप में मैं इसे तर्क-विरुद्ध और मिथ्या समझता हूं। जहां तक इसके व्यावहारिक पहलू का सम्बन्ध है, मैं नास्तिकता को घोर विपत्ति का जनक मानता हूँ।

——०——

इर्विंग विलियम नौब्लौक

कोरे जड़वाद से काम नहीं चलेगा

प्रकृतिविज्ञानविद् एम० ए०, वफैलो विश्वविद्यालय। पी-एच० डी०, अलोवा स्टेट कालेज। अमेरिकन 'फिश एंड वाइल्ड लाइफ़ सर्विस' के भूतपूर्व टैकनीशियन। १९४५ से मिशिगन स्टेट विश्वविद्यालय में प्राकृतिक विज्ञानों के प्रोफेसर। पोधों के कोशिकाविज्ञान (साइटोलौजी), आकृतिविज्ञान (मोरफोलौजी), घास-विज्ञान (एग्रोस्टोलौजी) के विशेषज्ञ।

× × ×

अपने विषय की अन्तर्निहित सम्भावनाओं से संचालित होने वाले वैज्ञानिक लोग प्रायः यह सोचने के अभ्यस्त होते हैं कि विज्ञान सब समस्याओं का हल कर सकता है। रासायनिक और भौतिक नियमों के कार्य की अभिव्यक्ति के सिवाय उनके लिए जीवन और कुछ नहीं है। जिन घटनाओं और क्रियाओं को पहले कभी प्रकृति-अतीत समझा जाता था अब उन सब में धीरे-धीरे, ज्ञात कार्यकारण-शृंखला स्थापित हो चुकी है। इस विश्व का कोई प्रयोजन नहीं है और थर्मोडायनेमिक्स से दूसरे नियम का पालन करता हुआ यह संसार हमारे सौरमण्डल में ईंधन की सप्लाई समाप्त हो जाने पर एक दिन समाप्त हो जाएगा और मौन निर्वाण को प्राप्त होगा।

प्रकृति के इस अति जड़वादी दृष्टिकोण को बर्ट्रेण्ड रसेल ने संक्षेप में रखते हुए कहा है : 'मनुष्य उन कारणों की पैदावार है जिन्हें प्राप्त किये जाने वाले लक्ष्य का पहले से कोई ज्ञान नहीं है। उसका उद्गम, उसकी बुद्धि, उसकी आशा-आकांक्षाएं और भय, उसका प्रेम और उसके विश्वास ये सब परमाणुओं की केवल आकस्मिक संस्थिति का परिणाम हैं, कोई भी मनुष्य मृत्यु से परे किसी भी प्रकार का उत्साह, वीरता, विचार या अनुभूति की तीव्रता कायम नहीं रख सकता, सब युगों के सब प्रकार के परिश्रम, समस्त भक्ति और निष्ठा, समस्त प्रेरणा, समस्त मानवीय प्रतिभा—ये सब के सब विशाल सौरमण्डल की मृत्यु हो जाने पर बुझ जाने वाले हैं, और मनुष्य की सभ्यता और उपलब्धियों का समस्त प्रासाद विनष्ट विश्व के

मलवे के नीचे दब जाएगा—ये सब चीजें, भले ही इस सम्बन्ध में विवाद चलता रहे, फिर भी इतनी निश्चित हैं कि इन्हें अस्वीकार करने वाला कोई भी दर्शन अपने टिके रहने की आशा नहीं कर सकता।"

किन्तु सब वैज्ञानिक यह नहीं समझते कि विज्ञान सर्वशक्तिमान् है, कि वह प्रत्येक चीज की नाप-जोख कर सकता है, कि वह सत्य, सौन्दर्य और आनन्द का विश्लेषण कर सकता है। विज्ञान जीवन की व्याख्या नहीं कर सकता। विज्ञान जीवन के प्रयोजन की तलाश नहीं कर सकता। विज्ञान यह भी वस्तुतः सिद्ध नहीं कर सकता कि परमात्मा है या नहीं है।

विज्ञान का काम है अपनी उपपत्तियों और मान्यताओं में लगातार सुधार करते रहना। वह वास्तविकता और सचाई तक पहुँचने का प्रयत्न करता है, किन्तु बहुत बार उसे निराश होकर वापिस भी लौटना पड़ता है। विश्व सम्बन्धी हमारा ज्ञान हमारी अपनी अपूर्ण इन्द्रियों और अपूर्ण उपकरणों पर आधारित है। इस सिलसिले में, प्रसिद्ध अमेरिकन चिकित्सक और निबन्धकार ओलिवर वेण्डेल होम्स का यह कथन ध्यान देने योग्य है : "ज्यों ज्यों ज्ञान बढ़ता जाता है, त्यों त्यों धर्म पर विज्ञान की भृकुटि का तनाव कम होता जाता है। यदि ठीक तरह से ग्रहण किया जाए तो विज्ञान सर्वोच्च सत्ता में विश्वास को अधिकाधिक सम्भव बनाता जा रहा है।"

पदार्थ के खुर्दबीन से भी नजर न आने वाले सूक्ष्म अवयवों के उद्गम की व्याख्या करने में विज्ञान असमर्थ है। केवल आकस्मिकता के नियम के सहारे विज्ञान नहीं बता सकता कि जीवन के निर्माण के लिए अणु-परमाणु कैसे एकत्र हो गए। जो सिद्धान्त कट्टरतापूर्वक यह कहता है कि जीवन के सभी उच्चतर रूप अपने वर्तमान रूप में आकस्मिक परिवर्तनों या पुनर्मिश्रणों से आए हैं, उस सिद्धान्त को मानने के लिए भी श्रद्धा की जरूरत है, जो एक तरह से अयुक्तियुक्त बात को मानने के समान है।

हां, विज्ञान के लिए श्रद्धा, और सम्भाव्यता या अकस्मात् में श्रद्धा। किसी लिहाज से तो यह कहा जा सकता है कि श्रद्धा की दृष्टि से विज्ञान और धर्म दोनों समान आधार पर खड़े हैं, अलबत्ता अन्तर यह है कि विज्ञान अपने क्षेत्र में पर्यवेक्षणों और परीक्षणों के द्वारा अपने विश्वासों की जांच कर सकता है। लगातार आत्मालोचन के द्वारा विज्ञान यह प्रयत्न करता है कि गलती की सम्भावना न रहे।

वैज्ञानिक खोजों से धार्मिक श्रद्धा को सहारा, बल और दृढ़ता मिलती है। धर्मशास्त्र में वर्णित अनेक बातों की विज्ञान ने पुष्टि की है और हम उचित रूप से यह मान सकते हैं कि अन्य बातों की भी सचाई कभी सिद्ध हो ही जाएगी। ज्योति-विज्ञान यह बताता है कि विश्व का श्रीगणेश सुदूर अतीत में है और भौतिकी यह भविष्यवाणी करती है कि अन्त में विश्व की प्रलय होगी। आधुनिक विज्ञान के दृष्टिकोण से यह मानना उचित है कि विश्व सदा से है और सदा रहेगा। परिवर्तन विश्व की

अनेक विशेषताओ में से एक मुख्य विशेषता है और इस सम्बन्ध में धर्म और विज्ञान दोनों एकमत हैं ।

जैसा कि ऊपर वताया गया है, विज्ञान वस्तुतः परमात्मा की सत्ता को सिद्ध नहीं कर सकता और न ही उसकी व्याख्या कर सकता है । फिर भी विश्व के चमत्कारों ने कतिपय निष्पक्ष ज्योतिर्विदों को इस विश्वास की ओर मोड़ दिया है कि कोई अज्ञात, और कदाचित् अज्ञेय, शक्ति विश्व की विशालता और प्रत्यक्ष दीखने वाली नियमबद्धता के लिए जिम्मेवार है । चैड वातश ने एक बार कहा था : "किसी भी आस्तिक या नास्तिक से जो कुछ पूछा जा सकता है वह यही कि वह अपने पक्ष में सम्भाव्यताओं का सन्तुलन प्रदर्शित करे ।" निस्सन्देह यह गम्भीर चीज़ को भी लापरवाही से देखना है, बहुत कुछ समस्या के प्रति सनकीपन के दृष्टिकोण का द्योतक है । थामस मिलर की विचार-सरणि अधिक गम्भीर है जो दूर तक और गहराई तक पहुंची है : सीमित या मानवीय दिमाग के द्वारा परमात्मा की प्रकृति और सत्ता के सम्वन्ध में जो भी कुछ जाना जा सकता है वह मनुष्य के ईश्वरानुभव का परिणाम होना चाहिए । वह अनुभूति पहले होनी चाहिए, ज्ञान तो उस अनुभूति का भाष्य ही हो सकता है ।

जहाँ तक मेरा सम्बन्ध है, वैज्ञानिक के रूप में मैं अकस्मात् के नियम के प्रति विद्रोह नहीं करता, क्योंकि मैं उनको अपने दैनिक जीवन के अनेक स्तरों पर काम करते पाता हूँ । में जड़वाद से पूर्ण रूप से इन्कार नहीं करता, क्योंकि वैज्ञानिक केवल तभी सफल होते हैं जब वे कठिन घटनाओं की प्राकृतिक व्याख्या करने का प्रयत्न करते हैं ।

किन्तु मैं परमात्मा में विश्वास करता हूँ । मैं उसमें विश्वास इसलिए करता हूँ क्योंकि मैं यह नहीं समझता कि केवल अकस्मात को प्रथम इलेक्ट्रोन या प्रोटोन के, या प्रथम परमाणुओं के, या प्रथम मस्तिष्क के उदय का कारण माना जा सकता है । मैं परमात्मा में इसलिए विश्वास करता हूँ, क्योंकि चीजें जिस रूप में भी हैं, उनकी तर्कसंगत व्याख्या केवल परमात्मा की दिव्य सत्ता को मान कर ही की जा सकती है ।

———

जान लियो ऐबरनेथी

वैज्ञानिक दृष्टि और ईश्वर

गवेषणा और रसायनविद्

एम० एस-सी०, पी-एच० डी०, नौर्थवैस्टर्न विश्वविद्यालय। हम्बोल्ट स्टेट कालेज और केलिफ़ोर्निया स्टेट पोलिटैकनिकल कालेज में शिक्षक, फिर केलिफोर्निया के फ्रेस्नो स्टेट कालेज में रसायन के प्राध्यापक। 'जर्नल आफ कैमिकल एजूकेशन' के सह सम्पादक। शर्करावर्गीय पदार्थों (कार्बोहाइड्रेट्स) आदि के विशेषज्ञ।

× × ×

आजकल के युग में हम समस्याओं को तेज छुरे की सी धार से हल करने तक पहुंच गए हैं, यहां तक कि एक बारगी ही उसकी स्पष्ट परिभाषा कर देते हैं, और उनका अर्थ निकल आता है। हमने यह भी जान लिया है कि शब्दों से हम जो अर्थ ग्रहण करते हैं वे हमारी पांच ज्ञानेन्द्रियों पर निर्भर होते हैं—और वे पांच ज्ञानेन्द्रियां हैं—जिह्वा, त्वचा, नासिका, श्रोत्र और चक्षु। हममें से हरेक को जरूरी तौर से, कम से कम सामान्यतया, भिन्न वातावरण और परिस्थितियों में रहना पड़ता है। इसलिए सीमातीत अवस्थाओं में यह भी हो सकता है कि 'मकान' शब्द का अर्थ चिहुआहुआ नामक नगर के बाहरी अंचल में रहने वाले लोगों के लिए जहां एक गुफा हो, वहां केलोफोर्निया के किसी अखबार के लिए किसी पहाड़ी की बगल में बना विशाल किलानुमा भवन हो।

"क्या ईश्वर है?"—इस प्रश्न का उत्तर ईश्वर शब्द के अर्थ की परिभाषाओं में ही दिया जाना चाहिए। मुझे यह कहने दीजिए कि यदि ईश्वर से हमारा अभिप्राय केवल संसार के अन्दर विद्यमान व्यवस्था और क्रम से ही हो तो हम उस चीज़ की बात करते हैं जिसमें साम्यवादी विश्वास करते हैं। संसार में निहित क्रम और व्यवस्था में तो उनका भी विश्वास है। किन्तु वे यह भी जानते हैं कि आप अनन्त काल तक तत्वों की नियतकालिक तालिका के आगे नतमस्तक होकर प्रार्थना भले ही करते रहें, किन्तु उन तत्वों में से एक भी, स्वतन्त्र रूप से या किसी अन्य तत्व के

साथ मिल कर, आपकी उस प्रार्थना का उत्तर देने के लिए स्वयं कभी एक अंगुलि तक नहीं हिलाएगा, भले ही मनोवैज्ञानिक दृष्टि से आपकी वह प्रार्थना कितनी ही सच्चे अन्तःकारण से क्यों न की गई हो, कितनी ही आत्मस्फूर्त क्यों न हो। न ही मेरा अभिप्राय कल्पनालोक के उस परमात्मा से है जिसे संसार के लगभग सभी धर्म स्वीकार करते चले आते हैं।

यदि किसी परमात्मा में मेरा कण भर भी विश्वास हो सकता है तो वह केवल वही परमात्मा है जिसे ब्रह्माण्ड के इस छोटे से अंश—पृथ्वी—पर रहने वाले हममें से हरेक प्राणी के सुख-दुःख की चिन्ता हो।

क्या यह ईश्वर सत्य है या यह भी कल्पना की ही औलाद है? क्या पृथ्वी पर रहने वाले मानवों के इतिहास की काल-धारा में कुछ ऐसे पैगम्बर या महापुरुष हुए हैं जिन्होंने अपनी आत्मानुभूति से उसकी सत्यता को स्वीकार किया हो? इन प्रश्नों के साथ ही यह प्रश्न भी जुड़ा है कि क्या वे महापुरुष 'सामान्य मानवों से कुछ अधिक हैं?' संसार के सम्बन्ध में अपने विचारों का हम किस ढंग से समन्वय करते हैं, वह इस बात पर निर्भर है कि हम इस अन्तिम प्रश्न का उत्तर कैसे देते हैं? किसी व्यक्तिगत परमात्मा की सत्ता को सिद्ध करने या असिद्ध करने के लिए भी हम उसी वैज्ञानिक विधि को अपना सकते हैं।

यदि मैं यह मान लूं कि वे सब पैगम्बर या अवतार केवल सामान्य मानव-मात्र थे और उनके बारे में जो चामत्कारिक घटनाएं बयान की जाती हैं वे सब गपोड़बाजी हैं, तब मैं ज्ञानेन्द्रियों से जानने योग्य इन्द्रियगोचर संसार की ही कल्पना करूँगा और इस विश्व का निर्माण कैसे हुआ—इस बारे में तरह तरह के साहसिक अनुमान करूँगा। वैज्ञानिक विधि में जहां अरस्तू (३३५ ई० पू०) का निगमनिक तर्क (डिडक्टिव लौजिक) शामिल है, वहां सर फ्रांससिस बेकन (१६२० ई०) का आगमनिक तर्क (इंडक्टिव लौजिक) भी शामिल है। निगमानिक तर्क में मैं किसी बड़े या छोटे आधार-वाक्य से परिणाम तक पहुँचता हूँ। उदाहरण के लिए, समस्त न्यूटरल कार्बन परमाणु है इसलिए इसमें भी छह इलेक्ट्रान हैं। आगमनिक तर्क में मैं तथ्यों से नियमों या परिकल्पनाओं (जिनमें अभ्युपगम या अनुमान, या सापेक्ष वैज्ञानिक सत्य निहित होते हैं) तक पहुंचता हूँ।

यदि इन 'सत्यों' से निकले निष्कर्ष युक्तियुक्त हों, तो परिकल्पना का आधार मजबूत हो जाता है और तब वह परिकल्पना (हाइपोथेसिस) एक स्थापना या मत (थ्योरी) बन जाती है। जितने ज्ञेय तथ्य हैं वे ऐसे इन्द्रियानुभवों के (या वैज्ञानिक परिभाषाओं में कहें, तो परीक्षणों के) परिणामों के विवरणमात्र हैं जिन्हें पुनः पुन. प्रतीत किया जा सकता है। उदाहरणार्थ, यह एक तथ्य है कि पानी ११.१ प्रतिशत हाइड्रोजन और ८८.९ प्रतिशत आक्सीजन के मेल से बना है, क्योंकि विभिन्न परीक्षणों से यह परिणाम बारम्बार प्राप्त किया जा सकता है। और नियम क्या

है—ज्ञात तथ्यों का साधारणीकरण मात्र। उदाहरण के लिए, निश्चित रचना का जो नियम है उससे इसी बात का साधारणीकरण होता है कि प्रत्येक शुद्ध समस्त द्रव्य या कम्पाउड (जैसे पानी, खाने का नमक और खाने की चीनी आदि) में संघटना का प्रतिशत अनुपात वही रहता है जितना उसके घटक तत्वों का वजन होता है।

आखिर मत या वाद भी एक तरह की मानसिक तस्वीरें हैं जो नियमों की व्याख्या करती हैं। हमारे आधुनिक विचार जगत् में जो मुख्य सिद्धान्त प्रचलित हैं वे ये हैं : गत्यात्मक आण्विक सिद्धान्त (काइनेटिक मौलिक्यूलर थ्योरी), पारमाण्विक सिद्धान्त (एटोमिक थ्योरी), विकासवाद का सिद्धान्त (थ्योरी आफ इवोल्यूशन) सापेक्षवाद का सिद्धान्त (थ्योरी आफ रिलेटिविटी), और क्वाण्टम सिद्धान्त (क्वाण्टम थ्योरी)। पारमाणिक सिद्धान्त मूलतः निश्चित रचना के नियम पर और गुणित अनुपात के नियम पर आधारित था। डाल्टन (१८०६) के मूल सिद्धान्त (या परिकल्पना) के अपूर्ण सत्यों में तब सुधार करना पड़ा जब यह पाया गया कि अणुओं का और छोटे खण्डों (इलेक्ट्रोन, न्यूट्रोन आदि) में विभाजन हो सकता है और तब आइसोटोपों (हाइड्रोजन जितने ही हल्के और भारी) की खोज की गई।

ये सिद्धान्त ही हमें उस क्रमबद्ध और व्यवस्थित ज्ञान की ओर ले जाते हैं जो विज्ञान कहलाता है। और जब विश्व के साथ मानवीय सभ्यताओं का बर्णन करने वाले विज्ञानों का एकीकरण किया जाता है तब वह फिलासफी या दर्शन बन जाता है। यदि धर्मों को केवल गपोड़बाजी ही मान लिया जावे तो दर्शन भी जड़वादी बन जाएगा। तब भलाई और बुराई का कोई पूर्ण अर्थ नहीं रहेगा। केवल मैं या आप किसी चीज को भलाई कहते हैं तो इतने मात्र से वह भली नहीं हो सकती। तब मनुष्य का मनुष्य के प्रति व्यवहार बिल्कुल तटस्थ होगा, जैसे कि किसी जानवर का या किसी पौधे का होता है।

हम परमात्मा को प्रेम का प्रतिरूप कह सकते हैं। परन्तु वह तो आत्मा है और आत्मा में अस्थि-मांस पञ्जा नहीं होते। मान लीजिए कि आप परमात्मा हैं, और देश-काल के आयाम सम्बन्धी धारणाओं से आप शून्य हैं, तब अपनी पांच ज्ञानेन्द्रियों के सीमित अनुभवों से बंधे और विश्व के ज्ञान से सर्वथा रहित आप यदि मानव प्राणियों के समक्ष आध्यात्मिक चीजों की व्याख्या करने लगें, तो आप क्या करेंगे ? आप आध्यात्मिक चीजों का वर्णन पांचों इन्द्रियों और चार आयामों की परिभाषाओं में ही करेंगे और बीच में काफी खाली स्थान रहेगा। तब स्वर्ग एक ऐसे नगर की तरह होगा जिसमें सोने की पारदर्शक सड़कें बनी हुई हैं और मणियों और मोतियों के दरवाजे बने हैं और इतने बड़े बड़े प्रासाद हैं कि उनमें हजारों आदमी एक साथ समा सकते हैं। परमात्मा के नाम पर एकत्र हुए आस्तिकों के बीच में परमात्मा विद्यमान है, इस तथ्य से यह ध्वनित होता है जैसे कि कोई अत्यन्त प्रिय मित्र विद्यमान हो जो आंखों से तो ओझल हो किन्तु उससे प्रेमालाप किया जा

सकता हो। सच तो यह है कि परमात्मा की उपस्थिति इससे भी कहीं अधिक स्पष्ट है, किन्तु वह केवल भौतिक इन्द्रियों से प्रत्यक्ष नहीं होता, उसका थोड़ा-सा आभास मात्र हो सकता है। जिस प्रकार की हमारी ये पांचो ज्ञानेन्द्रियां या पांचों कर्मेन्द्रियां हैं, यदि इसी प्रकार की हमारी दस इन्द्रियां और होतीं और वे सब परस्पर उतनी ही भिन्न होतीं जितनी आंख कान से है, तो इस विश्व की हमारी वर्तमान व्याख्या भी कितनी भिन्न होती।

जड़वादी विचारधारा में भलाई और बुराई का कोई पूर्ण अर्थ नहीं है। मानवीय जीवन को बमों की वर्षा करके अस्तित्वशून्य बना देने में भी कोई बुराई नहीं होगी, क्योंकि आखिर किसी न किसी प्रकार एक दिन समस्त जीवधारियों का अन्त तो हो ही जाना है। शायद हजारों या लाखों ग्रह-नक्षत्र, जिनमें हम से उत्कृष्ट जीवधारियों का अस्तित्व सम्भव है, अत्यन्त गरम होकर या अत्यन्त ठंडे होकर, या किसी सूक्ष्म ब्रह्माण्डकिरण से नष्ट होकर दुःखद अवसान को प्राप्त हो जाएं, तो भी क्या हर्ज है।

किन्तु यदि परमात्मा ने विशिष्ट आप्त पुरुषों के माध्यम से इतिहास के किसी समय-विशेष में मानव-मात्र को कर्तव्य-अकर्तव्य के सम्बन्ध में ज्ञान या उपदेश दिया है तो भलाई और बुराई का अर्थ स्पष्ट और पूर्ण हो जाता है। तभी पाप से बचने को कर्तव्य बताया जा सकता है। पूर्णता के लिए विज्ञान को भी इस प्रकार के सच्चे परमात्मा को मानना ही चाहिए।

जिन लोगों ने द्रव्य और ऊर्जा को ही संसार के अन्तिम तत्वों के रूप में स्वीकार किया है और जिनके प्रवक्ता तथाकथित विज्ञान के नाम पर मानव जाति को वह उपदेश देते रहे हैं कि मनुष्य को अपने आपको सब से ऊपर समझना चाहिए, और प्रेम, सहानुभूति, दया और श्रद्धा जैसी 'अवास्तविक' चीजों की सर्वथा उपेक्षा कर देनी चाहिए, उनके कह देने मात्र से प्रेम, दया और श्रद्धा कभी संसार से समाप्त नहीं हो सकते। ये सब मानवीय भावनाएं भी उतनी ही यथार्थ हैं जितना विज्ञान का कोई अन्य सिद्धान्त।

किसी भी मननशील वैज्ञानिक को उनकी यथार्थता का भान हुए बिना नहीं रह सकता।

——o——

रसेल लोवेल मिक्सटर

रहस्यवादी युवक का स्पष्ट चिन्तन की ओर कदम

प्राणिविद्

एम० एस-सी०, मिशिगन राज्य विश्वविद्यालय। पी-एच० डी० इलिनोय विश्वविद्यालय। व्हीटन कालेज में प्राणि-विज्ञान के प्राध्यापक और विज्ञान-विभाग के अध्यक्ष। इलिनोय की विज्ञान अकादमी के सदस्य। अमेरिकन साइंटिफिक एफिलियेशन नामक संस्था के १९५१-५४ तक अध्यक्ष। संयोजी ऊतक (कनेक्टिव टिशू) के बृहद भक्षकों (मैक्रोफेज), विभिन्न प्रकार की मकड़ियों और विकासवाद के विशेषज्ञ।

× × ×

परमात्मा से सबसे पहला परिचय किसी भी व्यक्ति को आम तौर से अपने माता-पिता के द्वारा होता है। माता-पिता परमात्मा का नाम बड़े आदर से लेते हैं, इसलिए बच्चा भी उनका अनुकरण करता है। अपने बचपन में अपनी छोटी-मोटी जरूरतों के लिए भी वह उसी तरह परमात्मा से प्रार्थना करता है जैसे बच्चे अपने बाप की खुशामद किया करते हैं। इतने मात्र से वह सन्तुष्ट रहता है और अपने उस अदृष्ट पिता में विश्वास किये रहता है।

बाद में वह किताबों में पढ़ता है उन लोगों की कथाएं जो परमात्मा के सान्निध्य में रहे हैं। वह पढ़ता है कि उन लोगों ने 'शेरों के मुंह बन्द कर दिए, अग्नि की विभीषिका समाप्त कर दी, तलवार के वार से वे बच गए, वे दुर्बल से सबल बन गए, और लड़ाई में उन्होंने बहादुरी दिखाई।' इन लोगों की बहादुरी से बच्चा कैसा रोमांचित होता है। उसके मन में भावना पैदा होती है कि मैं भी किसी तरह वैसा ही बहादुर बनूं। वह अनुभव करता है कि वे लोग उसके अतीत के साक्षी हैं और भावी जीवन के लिए प्रेरणा-स्रोत हैं।

स्कूल जाने के दिनों में उसके विश्वास की इमारत बनती भी है और गिरती भी है। वह जानता है कि उसका देश ऐसे जटिल समाज से बना है जिसमें एक दूसरे में गुंथे हुए विभिन्न वर्ग हैं, जिन वर्गों का कुछ प्रमुख पुरुष नेतृत्व करते हैं, और

उन सब पर निगरानी रखता है राष्ट्रपति जो स्वयं निर्णय कर सकता है और लोगों को उन निर्णयों का पालन करना होता है। एक छात्र के लिए परमात्मा राष्ट्रपति के समान है, एक ऐसे व्यक्ति के समान जिसे यह अधिकार प्राप्त है कि वह औरों पर उस अधिकार का प्रयोग कर सकता है। जैसे यह बात युक्तिसंगत है कि मनुष्यों पर हकूमत करने के लिए एक शासक होना चाहिए, उसी प्रकार यह बात भी तर्कसंगत है कि ऐसी कोई अतिमानवीय शक्ति होनी चाहिए जो समस्त मानव-समुदाय को नियन्त्रित करे।

दूसरी ओर, यदि शासक वोट से या जनता की सहमति से नियुक्त किया जाए, तो सम्भव है कि परमात्मा सिर्फ एक ख़याल ही सिद्ध हो, ऐसा खयाल जिसका जनता के मन के सिवाय और कहीं अस्तित्व न हो। शायद परमात्मा का आविष्कार लोगों ने ही किया है। इस विचार से छात्र परेशान होता है। वह दुविधा में पड़ जाता है कि क्या सचमुच कोई परमात्मा है ? उसे निश्चय कैसे हो ?

ऐसी हालत में वह शायद सब प्रकार की बौद्धिक कठिनाइयों को अलग रख कर परमात्मा की सत्ता को एक विश्वास के रूप में मान ले और अपने चिन्तनशील मित्रों से कहे कि मुझे परेशान मत करो। वह एक रहस्यवादी सा बन जाता है, जिसे इस बात का निश्चय है कि परमात्मा है तो सही, क्योंकि उसकी उसे इतनी तीव्र आवश्यकता है, किन्तु जब उसके विश्वास के साथ उसकी तर्क-प्रक्रिया का सम्पर्क होता है तब वह निश्चय नहीं कर पाता, वह दुविधा में फंस जाता है।

एक दिन यह रहस्यवादी युवक किसी धर्म-ग्रन्थ को पढ़ता है और उसमें उसे एक उदाहरण मिलता है जिसमें कहा गया है कि सच्चा धर्म 'युक्ति-युक्त' होता है और एक पाद टिप्पणी में कहा गया है कि आधुनिक युग में 'युक्ति युक्त' का अभिप्राय 'बुद्धिसंगत' और 'तर्क संगत' होना चाहिए। तब वह रुक जाता है। इससे उसे ऐसा प्रतीत होता है कि धार्मिक होने के साथ मनुष्य की बुद्धि का भी कुछ सरोकार है तो सही। तब वह लगातार चिरकाल तक अध्ययन और अनुसन्धान करता है। परिणाम यह होता है कि वह रहस्यवादी युवक पक्का आस्तिक बन जाता है और धार्मिक विचारक बन जाता है। उसका यह विश्वास है और उसे यह ज्ञान भी है कि परमात्मा की सत्ता है। तब उसकी आत्मा और बुद्धि दोनों में मेल रहता है और दोनों एक दूसरे के अनुकूल तथा अविरुद्ध रहते हैं। तब वह धर्मशास्त्रों के इस आदर्श को प्राप्त करने के लिए तैयार हो जाता है : 'कि ईश्वर की प्रजा भूत मनुष्य पूर्ण हो सकता है और वह सब प्रकार के अच्छे कामों के लिए सर्वथा समर्थ है"

इस लेखक का कार्य उसे प्रकृति के साथ और उस प्रकृति के परमात्मा के साथ घनिष्ट सम्पर्क में रखता है। तर्कशील कोई भी व्यक्ति इन दोनों को अलग नहीं कर सकता।

जीवित पौधों और प्राणियों का विशाल वैविध्य उसे नज़र आता है और उसे इस बात के भी प्रमाण मिलते हैं कि अतीत में भी इनकी विशाल संख्या थी। इस पृथ्वी पर सम्भवत: प्राणियों की दस लाख नस्लें या जातियाँ होंगी। मैं केवल नस्लों की बात कर रहा हूँ, अलग-अलग व्यक्तिगत प्राणियों की नहीं, क्योंकि उनकी संख्या तो निस्सन्देह ज्योतिष के आंकड़ों से होड़ लगाएगी। पौधों की ही लगभग बीस लाख जातियां हैं।

क्या इन सब में कोई क्रम है? निस्सन्देह सर्वत्र क्रम और व्यवस्था है। प्राणियों की दस लाख जातियों में से केवल किसी एक जाति को ही लो। इस प्रकार की सब जातियों के अलग वर्ग बनते हैं, और फिर हरेक वर्ग का भी उपविभाजन किया जा सकता है। इस प्रकार विभाजन और उपविभाजन अपनी इच्छा के अनुसार करते चले जाओ, किन्तु उन सब में उस जाति की विशिष्टताएँ और समानताएँ आपको मिलती चली जाएंगी। एक कठफोड़े में विद्यमान सदृशताएं आपको सब कठफोड़ों में मिलती चली जाएंगी। एक नस्ल से दूसरी नस्ल मिलती-जुलती होगी, तीसरी नस्ल में सदृशता कुछ कम होगी, चौथी में कुछ और कम, किन्तु वह सदृशता मिलेगी सब जगह सब नस्लों में जरूर।

इस प्रकार प्रकृति में कहीं क्रम-शून्यता नहीं है, किन्तु सर्वत्र कम या ज्यादा व्यापक सदृशता विद्यमान है। बुनियादी भौतिक पिण्ड—प्रोटोप्लाज़्म—के भी यदि जीवित पदार्थों में अनन्त विविध रूप पाये जाते हैं, और यदि सैकड़ों विभिन्न वर्गीकरणों में वही सदृशताएं पाई जाती हैं, तब यह निश्चित रूप से स्पष्ट हो जाता है कि इन सबके पीछे परमात्मा की विचारपूर्ण योजना है और उसी ने बुनियादी द्रव्य को पैदा कर उसमें यह सम्भावना और संचालना निहित कर दी है कि वह स्वयं ही अपने जैसी अनेक किस्में और अनेक रूप तैयार कर सके।

तर्क हमको यह मानने को बाधित करता है कि यहाँ जिन सदृशताओं का और विविध रूपों का वर्णन किया गया है उनको किसी दिव्य चेतना ने विचारपूर्वक योजित किया है, न कि यह मानने को कि जीवित पदार्थों के ये इतने विविध रूप तत्वों के आकस्मिक मेल से किसी तरह बन गए हैं, या परिस्थितयों ने किसी प्रकार तत्वों का जमघट लेकर उन्हें जीवित पदार्थों के रूप में सजा कर रख दिया है। मनुष्य की जो तार्किक बुद्धि यह देखती है कि कैसे मनुष्य का दिमाग तरह तरह की जटिल चीजें बना देता है। वही बुद्धि इस निष्कर्ष पर पहुंचती है कि जटिल जीवधारियों की रचना भी किसी परम बुद्धि का चमत्कार है। एक ही जाति के अनेक सदस्यों के बीच ये जीवधारी कितने ही विविध और विभिन्न क्यों न हों, और किसी जाति के जीवित या प्रस्तरीभूत पूर्वजों की खोज करने पर उनमें कितना ही परिवर्तन क्यों न लक्षित होता हो, किन्तु किसी की भी नज़र से यह बात ओझल नहीं रह सकती कि उसकी शुरूआत किसी जीवन धारण में समर्थ जीवधारी से हुई थी। और

जब कोई रचना नजर आती है तब निश्चय ही उसका कोइ रचनाकार भी होना चाहिए—रचनाकार अर्थात् सृष्टिकर्ता ।

जब कोई व्यक्ति धर्मग्रन्थ में पढ़ता है कि परमात्मा ने मनुष्य, जानवर और पौधे बनाए तब वह इस बात पर तुरन्त विश्वास कर सकता है, क्योंकि जो कुछ उसने प्रकृति में देखा है उस सब से उसका विश्वास मेल खाता है । धर्मग्रन्थ कोई विज्ञान की पाठ्य पुस्तक नहीं होता, किन्तु विज्ञान के बुनियादी सिद्धान्त उसमें जरूर आते हैं । और मेरे सामने जो सचाई हमेशा चमकती रहती है और कभी बुझती नहीं—और किसी भी काल में तैयार की गई या विचारी गई किसी भी जड़वादी मान्यता के सामने जिस सचाई की रोशनी कभी धुंधली नहीं पड़ती, वह सचाई यह है कि धर्मग्रन्थ का परमात्मा और प्रकृति द्वारा निर्दिष्ट परमात्मा एक ही है ।

वह धर्मग्रन्थ का ही परमात्मा है जो पर्वतों, नदियों, समुद्रों और आसमान के माध्यम से मुझ से बात करता है । किसी सुन्दर मनमोहनकारी दृश्य, हरी-भरी घास और हरियाले मैदान, चहचहाते पक्षियों और उछलकूद मचाते जानवरों के माध्यम से जो मधुर-मधुर मन्द-मन्द ध्वनि सुनाई देती रहती है वह उसी प्रभु की आवाज है ।

जेराल्ड टी० डेंन हारतोग

पौधों की दुनिया में ईश्वर की छाप

गवेषणा कृषिविज्ञानविद्

एम० एस-सी०, पी-एच० डी०, मिनेसोटा विश्वविद्यालय। अमेरिका के कृषि विभाग में कपास तथा अन्य रेशों के सम्बन्ध में गवेषणा संचालक। अमेरिकन कृषिविद् सोसायटी के सदस्य। कपास की विभिन्न किस्मों को पैदा करने के तथा कपास सम्बन्धी अन्य बातों के विशेषज्ञ।

× × ×

वर्तमान अध्याय में मुख्यतः पौधों और उनकी विभिन्न जातियों की आनुवंशिकता के सम्बन्ध में वर्णन होगा। पौधों की आनुवंशिकता का संकेत बाइबिल के उत्पत्ति खण्ड में इस प्रकार मिलता है : "और ईश्वर ने कहा, धरती घास उगावे, बीजों वाली जड़ी-बूटियां पैदा करे, और फ़लदार वृक्ष फल पैदा करें, जिनका बीज स्वयं पृथ्वी में मौजूद है। और वैसा ही हो गया। और धरती ने घास उगाई, और बीजों वाली जड़ी-बूटियां पैदा कीं, और फल पैदा करने वाले वृक्ष उगाए, जिनके बीज पृथ्वी में मौजूद थे। और परमात्मा ने देखा कि यह बहुत अच्छा था।"

सन् १९०० में डे वरीस, कोरेंस और वानशरमाक ने स्वतंत्र रूप से काम करते हुए मैंडल के सिद्धान्तों की पुनः खोज की और आधुनिक प्रजनन शास्त्र के विज्ञान में उनका प्रवेश किया। १८५० से १८६० तक और १८६० से १८७० तक के बीच में किए गए विभिन्न परीक्षणों के परिणामों के आधार पर जी० जे० मैंडल ने अलगाव और यथाक्रम स्वतंत्र वर्गीकरण के बुनियादी सिद्धान्त तैयार किए। डब्ल्यू० बेटसन और आर० सी० पनेट ने १९०६ में जिस वंशावलि के नियम की खोज की और १९१९ में टी० एच० मौरगन ने आनुवंशिकता के आधार के रूप में

गुणसूत्र (क्रोमोज़ोम) के सिद्धान्त की स्थापना की, उन्हीं से आधुनिक प्रजनन शास्त्र की नींव तैयार होती है।

वास्तविक व्यवहार में, मैंडल के अध्ययन द्वारा प्राप्त एक या दो कारणों की अपेक्षा पौधों की आनुवंशिकता कहीं अधिक जटिल है। किन्तु फिर भी बुनियादी सिद्धान्त तो लागू होते ही हैं। जिन पौधों की फसलें उगाई जाती हैं उनकी कृषि-विज्ञान-सम्बन्धी महत्त्वपूर्ण विशेषताएं (विविध प्रभावों के कारण) अनेक प्रकार की होती हैं। इसलिए किसी एक कारण को पूरी तरह मुख्यता नहीं दी जा सकती। इसके अलावा, बहुत-सी विशेषताएं बहुत कुछ परिस्थितियों के प्रभाव से ही सामने आती हैं।

मक्का में हरेपन की विशेषता इसका उदाहरण है। जब पौधा छोटा और अल्पायु का होता है और कुछ कम तापमान की अवस्थाओं में रहता है, तब पत्ते पीले होते हैं। जब पौधा आयु में बढ़ जाता है तब पत्ते हरे हो जाते हैं। और उनका हरापन साफ दीखने लगता है। यदि चारों ओर के परिवेश की परिस्थितियां बदल जाएं, मान लो कि तापमान कुछ अधिक हो जाए, तो पत्तों के हरे होने जैसी कुछ विशेषताएं शायद पता भी न लगें।

पौधों की जिन विशेषताओं को हम देखते हैं वे फिनो टाइप कहलाती हैं। यह ऐसी परिभाषा है जो दिखाई देने वाली उन सब विशेषताओं का बोध कराती हैं जिनके कारण उस पौधे को किसी खास वर्ग में रखा जाता है। यह फिनो टाइप तीन चीज़ों से बना होता है: जिनो टाइप (आनुवंशिकता), परिस्थितियां और परिस्थिति तथा आनुवंशिकता की पारस्परिक अन्तःक्रिया। किसी पौधे में जो आनुवंशिकता का अंश है वही उसकी नस्ल में आगे चलता है और सतत् विद्यमान रहता है।

उदाहरण के लिए, पहले वर्ष में बिना चुनाव किए यदि जौ की कोई किस्म मिनेसोटा में उगाई जाए, और दूसरे मौसम में अलास्का के ठण्डे प्रदेश में, और तीसरे मौसम में फिर वापिस मिनेसोटा में उगाई जाए, और इन तीनों वर्षों में मिनेसोटा में उगाई गई सामान्य किस्मों के साथ उसका मुकाबला किया जाए तो इस बात का कोई सबूत नहीं मिलेगा कि किस्म में थोड़ा सा भी फर्क हुआ है। दूसरे शब्दों में, अति विपरीत परिस्थितियों में पौधों को उगाने से भी उनके फिनो टाइप में आनुवंशिकता का अंश अपरिवर्तित रहता है।

पौधों के फिनो टाइप पर मौलिक परिस्थितियों का ही असर नहीं पड़ता, किन्तु जैविक परिस्थितियों का भी असर पड़ता है। अमेरिका में जब जई उगाई जाती है तब खेती करने वाले किसान अक्सर यह शिकायत करते हैं कि किस्म में कुछ खराबी आ गई है क्योंकि कुछ सालों के बाद पौधे के तने में या उसकी फुनगी में कीड़ा लगने का अन्देशा पैदा हो जाता है। किसान लोग गलती से यह समझते हैं कि यह

खराबी किस्म के बदलने से हुई है। किन्तु वस्तुतः, किस्म बदली हुई नहीं होती और बीमारी की यह शंका घुन की ज्ञात नस्ल और किसी नई अज्ञात नस्ल के परस्पर सम्बम्ध के कारण होती है। जई के घुनों में यह पात्रता होती है कि तने और फुनगी में लगने वाले नई नस्ल के घुनों की उपस्थिति में उनकी वर्णसंकर जाति पैदा हो जाती है।

अधिक ऊँचे पौधों में रोग-निरोध का ढंग उलझन भरा होता है, जो दो जैविक प्रणालियों की, जिनमें से एक रोग देने वाली और दूसरी रोग ग्रहण करने वाली होती है, पारस्परिक क्रिया-प्रतिक्रिया का परिणाम होता है। जई की किस्म में जो परिवर्तन नज़र आता है वह पौधे पर आक्रमण करने वाले रोगोत्पादक (पैथोजीविक) जीवाणुओं की स्थानीय संख्या का परिणाम है, न कि इस बात का कि स्वयं नस्ल में ही कोई आनुवंशिक परिवर्तन हो गया है।

फ्रेंच प्राणिशास्त्री देजुशे ने पौधों की नस्ल की 'पीढ़ी दर पीढ़ी एक ही जैसे पौधे का निरन्तर उत्पादन' कह कर परिभाषा की है। एक ही नस्ल के सदस्यों में खास तरह की शाखाएं पत्ते और फूल होते हैं जो अपनी विशेषताओं के कारण उसी नस्ल की हज़ारों क़िस्मों में अलग पहचाने जाते हैं। प्राकृतिक चुनाव के द्वारा और मानवी चुनाव के द्वारा हरेक नस्ल के अन्दर ऐसे बायोटाइप प्राप्त कर लिए गए हैं जो सैंकड़ों वर्ष पूर्व प्रचलित टाइपों की अपेक्षा अधिक उत्पादनशील हैं और परिस्थितियों के अधिक अनुकूल हैं। यह विश्वास करने का उचित कारण है कि यह प्रगति भविष्य में भी जारी रहेगी। किन्तु फिर भी—और इस बात पर ज़ोर देने की आवश्यकता है—कि सब युगों में पौधे की नस्ल वही रहती है, चाहे उसके चुनाव की प्रक्रिया बदल जाए, जलवायु और परिवेश में कितना ही परिवर्तन आ जाए और चाहे जैविक शत्रु कितने ही व्यापक आक्रमण क्यों न करते जाएं।

पुरातत्वज्ञों ने जो गेहूँ तथा अन्य पैदावारों के बीज प्राप्त किए हैं उनसे भी यह बात स्पष्टतया सिद्ध होती है कि पौधों की नस्लें कायम रहती हैं, क्योंकि वे बीज हमारे आज के पौधों की नस्लों से मिलते-जुलते हैं और हजारों सालों में भी उनमें कोई परिवर्तन नहीं हुआ है। जी० वाट ने कपास के इतिहास से सम्बन्ध रखने वाली अपनी पुस्तक में बताया है कि थियोफ्रास्टस ने ईसा से ३५० साल पहले फारस की खाड़ी-बहरीन—में 'ऊन धारण करने वाले' पेड़ों का वर्णन किया है। कपास के वही पेड़, जो कृषि-विज्ञान में "गौसियियम आरबोरियम" कहलाते हैं, आज भी मौजूद हैं।

यह सच है कि वनस्पति जगत् में भी हेर-फेर होते हैं, यद्यपि क्रोमोजोम सम्बन्धी या जीव सम्बन्धी हेर-फेर बहुत कम होते हैं, किन्तु इससे नस्ल में अन्तर नहीं आता। क्रोमोजोम सम्बन्धी परिवर्तनों में शामिल हैं—पूरे क्रोमोजोम का अभाव, या क्रोमोजोम के किसी खण्ड का स्थानान्तरण, या परिवर्तन, या हट जाना। जीन सम्बन्धी

परिवर्तन भी होते हैं और वनस्पतियों की भारी संख्या में उसका अध्ययन किया गया है। ऐक्स-रे तथा अन्य उपकरणों से मुल्लर ने फल-मक्षिकाओं (ड्रासोफिला मलानोनगास्टर) की १,००० से अधिक पीढ़ियों का अध्ययन किया है और उनका कहना है कि ये सब जीन सम्बन्धी परिवर्तन हानिकारक हैं, या अधिक से अधिक यही कहा जा सकता है कि मूल जीन पर उनका एक जैसा असर है। जौ के बीजों का ऐक्स-रे से अध्ययन करके स्टैलजर भी ऐसे ही नतीजों पर पहुंचा है। इस प्रकार के इन सब अध्ययनों से यही निष्कर्ष निकलता है कि नस्ल में कोई अन्तर नहीं आया।

चुनाव और हेर फेर के न होने पर विरोधी नस्लों के संयोग (क्रास-फर्टिलाइजेशन) का प्रयत्न किया जा सकता है, किन्तु हार्डी का फार्मूला (जो जटिल होते हुए भी आधुनिक कृषि-विज्ञों में सुपरिचित है) बताता है कि प्रजनन सम्बन्धी तुलनावस्था कभी ही पहुँचती है। पैतृक परम्परा सदा उस नस्ल को स्थिर रखने और उसे मूल किस्म में ही बनाए रखने को प्रवृत्त रहती है।

इस लेखक का विश्वास है कि परमात्मा वनस्पति जगत् के आश्चर्यों और रहस्यों में, कभी विफल न होने वाले नियमों के माध्यम से[1] अपने आप को लगातार प्रकट करता रहता है। परमात्मा अपने आपको इन तरीकों में प्रकट करता है :

१—क्रमबद्धता : पौधों के बढ़ने और उनके प्रजनन की प्रक्रियाएं, जो कोषों के बड़े होने, विभक्त होने और खास कार्यों द्वारा होती हैं, एक योजनाबद्ध, नियमित और आश्चर्यजनक रूप से अस्खलित ढंग से होती हैं।

२—जटिलता : एक सीधे-सादे पौधे के भी प्रजनन और विकास में जो जटिल क्रियाएँ होती हैं उसकी तुलना कोई मानव-निर्मित मशीन नहीं कर सकती।

३—सुन्दरता : पौधों के तनों, शाखाओं, पत्तों और फूलों में जो अद्भुत और दिव्य कलात्मक सुन्दरता होती है वह बड़े से बड़े कलाकार की प्रतिभा को भी मात दे देती है।

४—पैतृक परम्परा : बिना किसी भूलचूक के पौधे अपनी ही किस्म का प्रजनन करते हैं और वंश चलाते हैं। उनकी यह पितृ-परम्परा किसी अनियमित, अस्तव्यस्त और अनियन्त्रित ढंग से नहीं चलती। पीढ़ी दर पीढ़ी, सभी तरह के परिवेश और परिस्थितियों में गेहूँ से गेहूँ ही पैदा होता है, जौ से जौ, और जैतून से जैतून। ऐसा कभी नहीं होता कि गेहूँ से जौ पैदा होने लगे या जौ से जैतून पैदा होने लगे।

मेरे लिए, यह सब सिरजनहार परमात्मा की, जिसका ज्ञान अनन्त है और शक्ति भी अनन्त है, सत्ता के द्योतक हैं।

---

१. 'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म'—इस उपनिषद् वाक्य से तुलना करिए।—अनु०

लारेंस कोल्टन वौकर

वनान्वेषी की डायरी के तथ्य

वन-अनुसंधानकर्त्ता और वनस्पति-रचना-विद्

बी०एस-सी०, पेन्सिलवानिया राज्य विश्वविद्यालय। एम० फोरेस्ट, येल विश्वविद्यालय। सिराक्यूज विश्वविद्यालय के न्यूयार्क कालेज आफ फोरेस्ट्री से पी-एच०डी०। अमेरिकन फोरेस्ट सर्विस में भूतपूर्व वनानुसंधानकर्त्ता। वनारोपणशास्त्र के प्राध्यापक और जार्जिया विश्वविद्यालय के वन-विद्यालय की वन-सम्बन्धी प्रयोगशाला के अध्यक्ष। वन्य मिट्टियों, पौधों की शरीर रचना और रेडियो आइसोटोपोलौजी के विशेषज्ञ।

× × ×

"परमात्मा अस्त-व्यस्तता का जनक नहीं है।" (बाइबिल)। बल्कि इसके विपरीत उसके रचना-कार्य इतने योजनाबद्ध से होते हैं कि उनमें अत्यन्त उच्चकोटि की व्यवस्था दृष्टिगोचर होती है।

अक्सर सामान्य आदमी घाटियों से ही पर्वत शिखरों को देखता है और पर्वतों की सुन्दरता का कारण ईश्वर को समझता है, या फूलों से भरे बाग की शान्ति को भंग करने वाली हवा की सरसराहट को सुन कर यह कहता है कि "यह तो सुलेमान के भी बस की बात नहीं है।"

यह सच है कि यह सब परमात्मा रूपी महान् शिल्पी की ही करामात है। परन्तु परमात्मा की सृजनात्मक गतिविधियों के सम्बन्ध में और आगे खोज न करना तो ऐसा ही है जैसे कोई किसी बढ़ई की सुन्दर कोठरी की तारीफ करता है, किन्तु इस बात को जानने का कभी कष्ट नहीं करता कि कैसे उसने लकड़ी की कड़ियों को जोड़ा है, उनके कोने साफ किए हैं और कैसे उसने स्वयं अपने हाथ से लकड़ी को घड़-छील कर अन्दर की सजावट की है।

यदि परमात्मा की विश्व-सरकार नदियों के प्रवाह से पहाड़ियों को काट कर उनसे घाटी के उपजाऊ खेत बनाने तक ही सीमित होती तो कोई वन-रचनाविद् उसकी शक्तियों को बहुत महत्व नहीं देता। परमात्मा के प्रयोजन और इच्छा को

जानने के लिए उसे खेतों और जंगलों का सूक्ष्म अध्ययन करना पड़ेगा। तब प्राकृतिक अति प्राकृतिक बन जाएगा, और अति प्राकृतिक में विश्वास करने का अर्थ है परमात्मा में विश्वास करना।

कार्लहीम ने 'क्रिश्चियन फेथ एण्ड नेचुरल साइंस' नामक अपनी हाल ही की किताब में इस बात को यों कहा है:

"विश्व की रचना जितनी चमत्कारपूर्ण है उसमें न केवल किसी बुद्धिमान स्रष्टा का प्रभाव लक्षित होता है किन्तु उस प्रकार का अनुमान करने को बाध्य होना पड़ता है। कुछ प्रबुद्ध और बुद्धिवादी लोगों ने प्रकृति से परमात्मा तक पहुंचने की जो विचार-दिशा अपनाई थी, कार्य-कारणवाद के युग में वह अवरुद्ध हो गई थी, किन्तु अब विश्व का और अधिक ज्ञान हो जाने के कारण वह दिशा फिर खुल गई।"

वृक्षों का परस्पर सम्बन्ध और उनकी परिस्थितियों तथा वृक्ष-रचना-शास्त्र मेरे अध्ययन का मुख्य विषय होने के कारण मैं अपने अनुभव के आधार पर जंगलों की साक्षी के रूप में नीचे की पंक्तियां लिख रहा हूँ :

जंगल की मिट्टियों का पुनः सुधार—ऐडीरोन्डैक पर्वत शृंखला में हिम-नदों के अपक्षेप (आउट वाश) से बने रेत की गहरी परत मिलती है। स्थानीय पेड़-पौधों के नीचे की अम्लीय मिट्टी कमज़ोर पड़कर बीच के दर्जे की भस्मी मिट्टी बन जाती हैं, ज्यों ही खनिजों का विघटन होते ही बुनियादी पोषक तत्व, खासकर पोटाशियम, जैव (ओरगैनिक) घटकों द्वारा धारण किए गए भाग को छोड़कर, मिट्टी में से निकल जाता है। ये 'रेतीले मैदान' कभी सरो, चीड़ और हैमलौक (एक विषैला वृक्ष) के जंगलों को अवलम्ब देते थे किन्तु उन्नीसवीं सदी के शुरू में स्थल की अनुकूलता के कारण वहाँ खेती होने लगी। लगातार सौ साल तक खूब सघन खेती होने का परिणाम यह हुआ कि मिट्टी की प्राकृतिक उर्वरा शक्ति समाप्त हो गई। अन्त में इन मैदानों में खेती का इरादा छोड़ देना पड़ा और वहां पुनः वृक्षारोपण कर जंगल तैयार किया गया।

सरो और लाल तथा सफेद देवदार के पेड़ उगाने के कुछ वर्ष बाद, मिट्टी में पोटाशियम की कमी के लक्षण दिखाई देने लगे। और ज्यादा खोज से पता लगा कि भोज-पत्र और जंगली काली चेरी जैसे कुछ पेड़ों के पत्तों में पोटाशियम की कमी नज़र आती है। उनके अस्वाभाविक रंगों से यह अंदाज लगाया गया कि भविष्य में वृक्ष कहां लगाए जाएं। परमात्मा की यह सृजनात्मक (मैं इस शब्द का प्रयोग वर्तमान अर्थ में ही करता हूँ) क्रमबद्धता मनुष्य की उलझन सुलझाने में अत्यन्त स्पष्ट थी। उसने केवल यही संकेत नहीं दिया कि सरो तथा लाल और सफेद देवदार वहां न लगाए जाएं, किन्तु व्यापारिक मूल्य के अन्य किस्मों के देवदारों का भी संकेत दिया, जिन पर मिट्टी में पोटाशियम की कमी का कोई असर नहीं पड़ता। यह भी देखा गया कि एण्ड्रोपोगॉन नामक घास, जंगली स्ट्रोबेरी, कई अन्य जंगली पेड़, और सफेद देवदार के पत्तों का भी काफी बड़ी मात्रा में स्थान के चुनाव की दृष्टि से

विश्लेषण किया जा सकता था। उदाहरण के लिए जब सफेद देवदार की नुकीली पत्तियों में ०.५ के० से भी कम पोटाशियम होता है तब उसमें सदा कमी के लक्षण दिखाई देते हैं।

फिर एक और बात भी देखी गई। सफेद भोजपत्र यद्यपि एक जंगली किस्म की जाति का पेड़ है और खूब उगता है, पर मैदानों में मुश्किल से ही टिक पाता है। किन्तु इन पेड़ों के उगने के स्थान के सिरों पर सफेद देवदार उगते हैं और उनकी पौध भी खूब तैयार होती है। देवदार भोजपत्रों के चारों ओर पाये जाते हैं किन्तु सदा सिरों पर ही। इन देवदारों में पोटाशियम की कमी का कोई लक्षण प्रकट नहीं होता। मिट्टी और पत्तों के विश्लेषण से पता लगा कि भोजपत्र देवदार ग्रुपों में मैदान के समान ही पोटाशियम तिगुना था और पत्तों में विद्यमान तत्व की मात्रा में अन्तर काफी अधिक था। इस प्रकार सफेद भोजपत्र की 'फोरेजिंग' क्षमता कृषि-दृष्टि से दुर्बल मिट्टी के लिए पोषक तत्त्व संगृहीत करने का एक रास्ता निकालती है और खनिज पोषण की व्यवस्था करके किसी चतुर कारीगर ने निर्जीव पदार्थों और सजीव पदार्थों के बीच एक पुल का काम किया है।

इसी प्रकार का असर कनेक्टीकट घाटी में भी देखा गया जहां पूर्वी लाल देवदार छोटे छोटे मिट्टी के कीड़ों से मिलकर कैल्शियम की मात्रा काफी बढ़ा देता है। लाल देवदार बन पृष्ठ पर कैल्शियम का भण्डार छोड़ता है, यद्यपि छोटे छोटे जीवों के कारण ही ऐसा सम्भव होता है। पत्तों में काफी मात्रा में विद्यमान चूने से आकृष्ट होकर मिट्टी के कीड़े उन पत्तों को बहुत जल्दी हज़म कर लेते हैं और ऐसा करते हुए कैल्शियम छोड़ते हैं जिससे पौधों के बढ़ने में तुरन्त पोषक तत्व की जरूरत पूरी होती है।

लाल देवदार का जहां तक सम्बन्ध है, उसका केवल पोषण पर ही असर नहीं पड़ता, किन्तु मिट्टी की रचना की वे सब विशेषताएं भी काफी बढ़ जाती हैं जो बाढ़ों को रोकने में सहायक होती हैं।

जो मिट्टी खराब हो गई है उसे फ़िर पौधे पैदा करने के लायक बनाने में दैवीय योजना किस तरह काम करती है। इसके बारे में और भी अधिक कहा जा सकता है। (क्या कोई ऐसा मानवीय उदाहरण उपलब्ध है?) मूल अवस्थाओं में जंगल फैलते जाते हैं और वृक्षों की नस्लें अनन्त रूप से बढ़ती चली जाती हैं जब तक मनुष्य, अग्निकाण्ड या तूफान उस वृद्धि में रुकावट न डाल दे। इमारती लकड़ी के लिए उपयोगी जमीनों को चरागाह के योग्य बनाने के लिए मनुष्य जंगलों को काटता है, जिससे वृक्ष भी नष्ट होते हैं और मिट्टी भी। वृक्ष और मिट्टी के नष्ट होने से बाढ़ आने लगती है।

विशाल बांधों की योजनाएं बना कर मनुष्य बाढ़ों से होने वाली क्षति को कम करने का प्रभूत व्ययसाध्य उपाय करता है। परन्तु जिस शक्ति के आगे चट्टानों और कंकरीट की कोई दीवार भी नहीं टिक सकती उसको ये बांध केवल अस्थायी रूप से ही रोक सकते हैं। यदि असल में बाढ़ों को रोकना हो तो समस्या की जड़ पर

ही पहुंचना चाहिए। और वह जड़ यह है कि बांध बनाने से नहीं, किन्तु भूमि पर वनों का विस्तार करने से ही बाढ़ रुक सकती है। और भूमि पर यह प्रक्रिया मुफ्त होती रहती है। जब बाढ़-ग्रस्त इलाकों में मिट्टी बह जाने के कारण पुराने खेत त्याग दिए जाते हैं, तब एक साल के अन्दर अन्दर वहां खूब घनी घास, झाड़ियां और पौधे हमला बोल देते हैं और मिट्टी को सुधारने का अपना काम प्रारम्भ कर देते हैं। पूर्वी अमेरिका के पीडमौंट प्रान्त में अक्सर पच्चीस वर्ष के अन्दर अन्दर भूमिपृष्ठ पर पुनः नई वनराशि उभर आती है। जिन इलाकों में ठण्ड अधिक पड़ती है और जहां जैव क्षय बहुत जल्दी नहीं होता, वहाँ भी उन इलाकों के परित्याग के बाद अक्सर पचास वर्ष के अन्दर अन्दर नए बन खड़े हो जाते हैं। मिट्टी यद्यपि अपनी बाढ़-निरोध की मूल क्षमता तक कभी नहीं पहुँच पाती', किन्तु उसमें पुनः वनों का लहलहा उठना अपने आप में एक खास बात है।

गेटे ने इसे यों कहा है :

"प्रकृति न क्षुद्र है, न उसका महत्त्व कम है। वह सदा सच्ची, गम्भीर और कठोर होती है। वह सदा ठीक पथ पर होती है और जितनी भी भूलें या कमियां होती हैं उन सबके भागीदार हम होते हैं। अयोग्य और अक्षम को वह चुनौती देती है, किन्तु सक्षम, सत्य से ओत-प्रोत और विशुद्धात्मा के समक्ष वह अपने रहस्यों को खोल देती है।"

वनभूमियों का पुनः उद्धार—अखरोट के पेड़ को रोगग्रस्त बनाने वाला एंडोथिया नामक रोगाणु जब इस सदी के प्रथम दो दशकों में खूब फैल गया, तब अनेक लोग यह कल्पना करने लगे कि वनभूमि के चंदोवे में इस प्रकार जो छेद हो गए हैं वे कभी भरे नहीं जा सकेंगे। अमेरिकन अखरोट की जितनी महत्वपूर्ण स्थिति थी उसका मुकाबला अन्य किसी वृक्ष की जाति नहीं कर सकती थी। उसकी लकड़ी उत्कृष्ट कोटि की होती थी, वह गलती और सड़ती नहीं थी, उससे कागज़ की लुगदी तैयार होती थी। अखरोट की छाल से क्षार और टौनिक ऐसिड बनता था। अखरोट की गिरी खाने के काम आती थी और लकड़ी से लैम्प शेड आदि बनाए जाते थे। इसके अलावा अखरोट का पेड़ पहाड़ी टीलों और घनी उपजाऊ घाटियों दोनों में होता था। सन् १९०० के आस पास जब तक एशिया से एण्डोथिया नामक रोगाणु नहीं आया तब तक अखरोट पर किसी और रोग का आक्रमण नहीं हुआ था। अब अखरोट, जंगली पेड़ के रूप में समाप्त हो चुका है। जो तने कभी खूब ऊँचे होते थे उनके ठूंठों में से कभी कभी कोई भूले-भटके अंखुए निकल कर केवल इस बात की व्यथापूर्ण याद दिलाते हैं कि प्रबल से प्रबल—आदमियों की तरह वृक्ष भी—समाप्त हो सकते हैं।

किन्तु वन-भूमि में जो रिक्तता आ गई थी, वह भर गई। ट्यूलिप (घण्टी के आकार के अनेक रंगों के फूल वाली वृक्ष-जाति) के पेड़ मानो चंदोबे में ऐसे ही

सूराखों की प्रतीक्षा कर रहे थे ताकि छाया को न सह सकने वाली इस जाति को आगे विकसित होने के लिए काफी रोशनी मिल सके। तब तक वन में इन वृक्षों का भाग बहुत मामूली-सा था और कीमती लकड़ी के लायक उनका विकास कभी-कभी ही हो पाता था। और अब जिस वन-भूमि में ट्यूलिप के पेड़ों ने अपने पांव जमा लिए हैं, वहां अखरोट के पेड़ों की दाल नहीं गलती और ट्यूलिप एक वर्ष में व्यास में एक इन्च और लम्बाई में ६ फुट तक आकार में बढ़ जाता है। इस पेड़ का जहां इतनी तेजी से विकास होता है वहां इससे बढ़िया किस्म की इमारती लकड़ी भी खूब मिलती है। क्या प्रकृति की यह "मास्टर प्लान" अनेक परिस्थितियों के द्वारा ही पूरी होती है ?

जिन इलाकों में अखरोट के पेड़ रोगयुक्त हो गये हैं उनकी क्या व्यवस्था की जाए—इस विषय में एक पुराना राष्ट्रीय वन-रक्षक (रेंजर) अन्य लोगों को लगातार यही सलाह देता है कि कुदरत की किताब खोलो और उसमें से जवाब ढूंढो। इजाक वाट्स ने इसे कविता में इस ढंग से कहा है :

"उगल रही प्रकृति गीतों को
स्रष्टा की स्तुति में विभोर हो।"

प्रसिद्ध वनस्पतिविद् आसा ग्रे ने १८८० की अपनी येल भाषण माला में यह कह कर इसका संकेत दिया था : 'कोई भी आस्तिक .. इस बात से सहमत नहीं हो सकता कि विज्ञान जिस किसी बात को अति प्राकृत से हटा कर प्रकृति के स्तर तक ले आता है वह आस्तिकवाद के पक्ष में नहीं रहती। परन्तु विज्ञान का काम है प्रकृति के पथ को पहचानना, न कि उस पथ की अड़चनों में उलझना.....विज्ञान का यह काम है और यह उसका विशेषाधिकार भी है, कि वह विश्व-प्रपंच के घटना-चक्र की व्याख्या करते हुए पहले नहीं, किन्तु अन्त में ही दैवीय इच्छा का आश्रय ले।"

किसी मौलिक सृजन पर नया प्रकाश—पौधों में हारमोन होते हैं जो विभिन्न तरीकों से काम करते हैं। इस प्रकार का एक २-४-५-टी कम्पाउण्ड टमाटरों को पकाता है, भण्डार में रखे आलुओं के अंखुए निकलने से रोकता है, जिन वनस्पतियों की कलम लगाई जाती है उनकी जड़ जमाने में सहायक होता है और शायद अन्य अनेक ऐसे जीवाणु-परिवर्तन सम्बन्धी कामों में सहायक होता है जिनकी अभी खोज की जानी है। पौधों की वृद्धि के नियामक इस हारमोन की या हारमोन जैसे तत्व की, फिलहाल प्रयोगशालाओं में जांच की जा रही है। किसी चतुर संश्लेषणकर्ता ने ऐसे अणुओं की रचना की है जिनकी नकल तैयार करने का दावा मनुष्य भले ही कर ले, किन्तु जिनका निर्माण नहीं कर सकता, यह तथ्य ही व्यवस्थित और क्रमबद्ध सृजन का प्रमाण है।

जंगल के वृक्षों में इस यौगिक (कम्पाउण्ड) के तुल्य रेडियोधर्मी (रेडियो-ऐक्टिव) के व्यवहार पर हम खास तौर से ध्यान देना चाहते हैं। परमाणुओं की

शृंखला में दिखने वाला अन्तिम कार्बन (सी १२) अपने आइसोटोप (सी-१४) से, जो बीटा किरण का दुर्बल उत्सर्जक है, बदल जाता है। इसी सी-१४ के कारण पत्तों होकर शाखाओं और शाखाओं से होकर जड़ में गति की दर और गति का मार्ग तुरन्त पता लग जाता है। किसी नास्तिक को शायद यह केवल जादू लगे, परन्तु हमारे लिए यह परमात्मा की संचालनशक्ति की ही अभिव्यक्ति है।

इस अध्ययन में यह तथ्य भी अत्यन्त महत्व का है कि कम्पाउण्ड २-४-५-टी ही रहता है, वृक्ष में उसकी प्रतीयमान नियति चाहे कुछ भी हो। रासायनिक विनिमय के द्वारा दस प्रतिशत से कम अन्य कम्पाउण्डों में वह बदल जाता है। समान महत्व का तथ्य यह भी है कि पत्तों को खुराक चाहे कितनी भी मिले, किन्तु उसकी बहुत थोड़ी मात्रा ही जज्ब होती है। पौधा अपने प्रयोजन से फालतू मात्रा को ही जज्ब होने देता है। इस पद्धति से जो अनेक प्रश्न पैदा होते हैं वही, उन लोगों के लिए जो विभ्रम की अज्ञात गहराइयों में अपने उत्तर खोजते हैं—प्रकृति की नियम-बद्धता का—उच्चतम ज्ञानवान् स्रष्टा का—प्रमाण हैं।

कागज के क्रोमैटोग्राफिक टैकनीक से हम २-४-५-टी की जांच करते हैं। फिल्टर पेपर की पट्टी के सिरे के निकट अज्ञात तत्व की बूंद रखी जाती है। उस सिरे को तब "डिवेलपर" की तश्तरी में रखा जाता है, जबकि दूसरा सिरा तश्तरी पर लटकता रहता है। अणुओं के पारस्परिक आकर्षण से "डिवेलपर" जज्ब हो जाता है, और उस बूंद के घटकों को भी अपने साथ ले जाता है। प्रत्येक ऐन्द्रियिक (ओरगैनिक) घटक क्रोमैटोग्राफिक चित्र में खास स्थान पर जमा हो जाएगा और और वहाँ कोई दूसरा कम्पाउण्ड दिखाई नहीं देगा। बस, तस्वीर पूरी हो गई। अब एक "गाइगर काउण्टर" को कागज पर गुजारने से सी-१४ के स्थान का पता लग जाएगा।

यह इस बात का प्रमाण है कि प्रकृति में आकृतियों की एक क्रमबद्ध और नियत प्रणाली है। इसी को हेगलिस ने "पूर्णता का सिद्धान्त' कहा है। इस ऐन्द्रियिक अणु में, और अन्ततः परमाणु द्वारा कागज पर निस्सृत विद्युदणु में, सी-१४ परमाणु, सच्चे जिज्ञासु के लिए इस बात का उदाहरण है कि विज्ञान और परमात्मा में कोई वास्तविक संघर्ष नहीं हो सकता। परमात्मा विज्ञान के द्वारा और यहां वर्णित महान् कार्यों के द्वारा अपने आपको मनुष्य के सामने प्रकट करता है। जैसा कि महान् सन्त पाल ने कहा है :

"वह सब चीजों से आगे है और उसी के कारण सब चीजें विद्यमान हैं।" सन्त पाल के उद्गारों का ही फिलिप्स ने "लैटर्स टू यंग चर्चेज" नामक पुस्तक में यों एक तरह से भावानुवाद किया है : "वस्तुतः उसने सचाई को बिलकुल सरल बनाया है। क्योंकि जब से संसार का प्रारम्भ हुआ है, परमात्मा के अदृश्य गुण, अर्थात् उसकी अनन्त शक्ति और दिव्यता, उसके द्वारा रचित उन वस्तुओं में जो आम तौर पर देखी जाती हैं और जानी जाती हैं, सरलतापूर्वक और स्पष्टतापूर्वक पहचानी जा सकती है।"

——o——

वाल्टर एडवर्ड लैमर्ट्स

माली के बेटे ने जो सीखा

वंशानुक्रमविद्

बी०एस-सी०, पी-एच०डी०, कैलिफ़ोर्निया विश्वविद्यालय। ओण्टारियो की आर्म स्ट्रोंग नर्सरीज में भूतपूर्व गवेषणा-संचालक। कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय में फलोद्यानविद्या के प्राध्यापक। कैलिफोर्निया के कनाडा डेस्कान्सो गार्डन्स के गवेषणा-संचालक। १९५४ से डेस्कान्सो डिस्ट्रीब्यूटर्स, आरमेन्स और आमलिंग—ये वोर नर्सरीज (कैलि०) के गुलाब गवेषणाध्यक्ष। सजावट के पौधों, खास कर गुलाबों की नस्लों को तैयार करने के विशेषज्ञ।

× × ×

"मैं परमात्मा में क्यों विश्वास करता हूँ"—इस प्रश्न का सच्चा उत्तर शायद यह होगा—"क्योंकि मेरे माता-पिता ने मुझे वैसा सिखाया है।" यही सामान्य तरीका है जिससे दिव्यात्मा काम करती है। परन्तु माता-पिता ने मुझे सान्ता क्लाज़[1] और ईस्टर के खरगोशों[2] पर भी विश्वास करना सिखाया था। यद्यपि बच्चों की इन मनोरंजक परी-कथाओं की असलियत मैं जल्दी ही समझ गया था, किन्तु ज्यों-ज्यों मैं बड़ा होता गया त्यों-त्यों परमात्मा की सृजनात्मक शक्ति और बुद्धिमत्ता का प्रभाव मेरे मन पर बढ़ता ही चला गया।

एक फलोद्यान-रक्षक का बेटा होने के नाते विभिन्न प्रकार के सेवों, आड़ुओं और नाशपातियों के व्यवहार ने और केनेविक के पूर्व वाशिंगटन क्षेत्र की शून्य से भी २० अंश नीचे की ठण्ड के अनुकूल अपने आपको आंशिक रूप से ढाल लेने की इन फलों की प्रवृत्ति ने मुझे मोह लिया। भर जाड़े बिलकुल मरे-मरे दिखने के बाद हर

---

१. ईसाई मत के अनुसार क्रिसमस पर बच्चों के लिए मिठाई लाने वाला, दाढ़ीयुक्त काल्पनिक वृद्ध।—अनु०

२. ईस्टर के दिन चन्द्रमा से निकल कर खरगोश बच्चों से खेलने के लिए आते हैं—ऐसी मान्यता ईसाइयों में प्रचलित है।—अनु०

वसन्त ऋतु में जब इन पर गजब के खूबसूरत फूल आते थे तो मुझे सदा हर्ष से रोमांच हो जाता था। किन्तु हमारे यहाँ की आबोहवा के बिल्कुल माफिक वे अपने आपको नहीं ढाल पाते थे, इसलिए पछेती पाला पड़ने पर सब फूल मर जाते थे और कोई फसल नहीं होती थी। उस छोटी सी घाटी में हरेक को ही जीवन की कठिनाइयों का सामना करना पड़ता था।

शुरू-शुरू में मेरे मन में अक्सर इस तरह के विचार उठा करते : यदि परमात्मा भलाई करने वाला है तो इस तरह अक्सर फसल का नुक्सान वह क्यों होने देता है ? किन्तु तुरन्त ही उसका उत्तर भी मिल जाता : यह परमात्मा का दोष नहीं, मनुष्य का दोष है। हम केनेविक में फलों की ऐसी किस्में उगाने का प्रयत्न कर रहे थे जो पूरी तरह हमारे यहां की जलवायु के अनुसार अपने आपको नहीं ढाल पाती थीं। ये किस्में मूलतः जिस स्थान पर होती थीं वहां पाले का खतरा समाप्त हो जाने पर, मौसम के उत्तरार्ध में इन पर फूल आते। क्योंकि ये किस्में समशीतोष्ण कटिबन्ध के लिए ही अभिप्रेत थीं, इसलिए हरेक नस्ल की जलवायु के अनुसार अपने आपको ढालने की प्रक्रिया बहुत संक्षिप्त होती और बहुत सावधानी से चुनाव करने तथा नस्ल तैयार करने पर ही बदलती आबोहवा के अनुसार उनको अपने आपको ढालने में सफलता मिलती।

तो स्पष्ट बात यह है कि सब पौधे या सब प्राणी केवल अपनी मूल परिस्थिति में ही पनपने के लिए नहीं बनाए गए हैं, किन्तु उनमें इस प्रकार की क्षमता भी रखी गई है कि वे जरूरत पड़ने पर भिन्न प्रकार की जलवायु में भी पनप सकें। पौधों और प्राणियों की इस विशिष्ट योग्यता का अध्ययन करना ही वंशानुक्रम या प्रजनन विज्ञान कहलाता है। और मैं क्योंकि बचपन से ही आड़ुओं की पौध की किस्मों का अध्ययन और परीक्षण कर रहा था, इसलिए मैं इस विषय में जितना हो सकता उतना जानने का प्रयत्न करने लगा।

आड़ू के पेड़ और फूलों के बीज जन्य पौधे उगाने के अलावा, मुझे खास तौर से उन कीड़े-मकोड़ों में भी बहुत रुचि थी जो एक पौधे का पराग दूसरे पौधे तक पहुँचाते हैं—जैसे शहद की मक्खियां या सामान्य मक्खियां या तितलियां। यह समानान्तर वैविध्य कैसे होता चला जाता है ? कृमि-कीटों की प्रवृत्तियों और उनके सामाजिक जीवन के जटिल पहलुओं के सम्बन्ध में आश्चर्यजनक तथ्यों का उद्घाटन करने वाली जीन हेनरी फाब्रे की रोचक पुस्तकें प्रकृति में विद्यमान अद्भुत योजना के और सबूत पेश करती हैं।

इस सबके बीच में यह भी समान रूप से स्पष्ट था कि कोई विरोधी शक्ति भी काम कर रही है, जो मनुष्यों द्वारा प्राणियों और पौधों के इस्तेमाल को उलट रही है या कम से कम विकृत कर रही है, इस रूप में कि कभी-कभी चींटियां खूब हो हो जाती हैं और मक्खियां काफी नहीं होतीं। परिणामस्वरूप फल बिल्कुल ही नहीं होते या इतनी अधिक मात्रा में होते हैं कि हम उन्हें पूरी तरह बेच भी नहीं सकते।

या मिट्टी की उर्वरा शक्ति लगातार घटती जा रही होगी, किन्तु जंगली घास की फसल लगातार बढ़ती जाती होगी। यह सब क्यों होना चाहिए? कुदरत ने इसका जवाब नहीं दिया, मगर जवाब दिया बाइबिल ने। मनुष्य के पतन के बाद से मिट्टी को और कुदरत को परमात्मा की ओर से शाप मिला हुआ है। फिर भी, परमात्मा की अद्भूत बुद्धिमत्ता और शक्ति का परिचय देने के लिए सृष्टि की मूल अच्छाई अब भी बहुत कुछ बाकी है और यह हमारा कर्तव्य है कि अपनी सामर्थ्य के अनुसार हम पृथ्वी को पुनः उसके पहले जैसे सौन्दर्य और पूर्णता तक पहुंचा दें।

जब मैंने कालेज में पढ़ाना शुरू किया और मैं भौतिकवादी विकासवाद के सिद्धान्त के सम्पर्क में आया तब मैं इस ढंग से सोचता था कि विकासवाद का सिद्धान्त ही एक मात्र ऐसा दर्शन है जो परमात्मा की सृजनात्मक शक्ति के प्रमाण के रूप में प्रकृति में सप्रयोजनता के विश्वास के सामने गम्भीरता से प्रश्न उपस्थित करता है और वस्तुतः उस विश्वास को स्थानभ्रष्ट करना चाहता है। स्वयं मेरे अपने मन के अन्दर और कुछ मेरे पुराने ग्रेजुएट छात्रों के मन के अन्दर अनेक वर्षों तक खूब मानसिक संघर्ष चलता रहा। कुछ तथ्य भी स्पष्ट हो गये। उनमें से एक तथ्य यह है कि वंशानुक्रम विज्ञान चार्ल्स डारविन की दो अत्यन्त बुनियादी मान्यताओं पर विश्वास के लिये कोई साक्षी पेश नहीं करता। वे दोनों मान्यताएँ ये हैं :—

(१) कि प्रत्येक पीढ़ी के युवक जीवधारियों में सब सम्भव दिशाओं में अपने माता-पिता से थोड़ा सा भिन्न होने की लगातार प्रवृत्ति होती है, और (२) कि अगली पीढ़ी को अनुकूल परिवर्तन विरासत में मिलते हैं और वे परिवर्तन तब तक जोर पकड़ते रहते हैं जब तक व्यापक परिवर्तन निर्मित नहीं हो जाते।

वास्तव में, डब्ल्यू० जे० टिंकल ने और मैंने अपनी पुस्तक 'मौडर्न साइंस ऐन्ड क्रिश्चियन फेथ' में काफी विस्तार से इस बात पर विचार किया है कि किसी भी प्राणी या पौधे में निर्वाचनात्मक प्रजनन के द्वारा परिवर्त्तनीयता का अन्तिम सिरा शीघ्र प्राप्त किया जा सकता है। पौधों में आत्मपरागीकरण या प्राणियों में आत्म प्रजनन इतना उग्र रूप में प्रकट नहीं होता। सामयिक म्यूटेशनों (परिवर्तनों) को छोड़कर, इस प्रकार की वंशावलियां अपनी सही नस्ल पैदा करती चली जाती हैं और डारविन की मान्यता के अनुसार सब सम्भव दिशाओं में उनमें अन्तर जारी नहीं रहता। फिर भी उनमें जो सामयिक परिवर्तन होते हैं उन्हीं को विकासवादी लोग उत्सुकतापूर्वक विकास की भौतिक बुनियाद बताते हैं। परन्तु क्या सचमुच वे बुनियाद हैं? अनेक जीवधारियों में, खास कर ड्रोसोफिला मेलानोगास्टर नामक फलमक्खी में चिरकाल तक लगातार इन म्यूटेशनों का अध्ययन करने से पता लगता है कि अधिकांश परिवर्तन हानि-कारक होते हैं। जो परिवर्तन हानिकारक नहीं होते उनमें से अधिकांश त्रुटिपूर्ण

या कम से कम तटस्थ परिवर्तन होते हैं, जिनका शरीर रचना पर ऐसा मानसिक प्रभाव पड़ता है कि वह व्यक्ति की आम रूक्षता को घटा देता है। इसलिये वंश-परम्परा में जाने वाले म्यूटेशनों का जमाव हमें इस प्रकार के परिवर्तन नहीं देता जो खास नस्लों के निर्माण के लिये जरूरी होते हैं।

फलों की मक्खी के पंख में होने वाला म्यूटेशन विरल अवसरों पर अधिक जीवन-क्षमता प्रदर्शित करता है—७५-७७ फारेनहाइट पर १०४ प्रतिशत—किन्तु पंखों की रचना पर प्रभाव डालने वाले अन्य म्यूटेशनों के साथ उसके मेल का परिणाम मक्खियों में यह होता है कि उनकी जीवन-क्षमता काफी घट जाती है। किन्तु यदि यह मान भी लें कि एक प्रतिशत लाभ देने वाले म्यूटेशन कभी-कभी होते ही हैं, तो वे किसी खास जाति या नस्ल में कितनी जल्दी एकत्र हो सकते हैं? विकासवाद के सिद्धांत के गणितात्मक विश्लेषण से पता लगा है कि इस नये म्यूटेशन की सामूहिक नस्ल तैयार करने के लिये १० लाख पीढ़ियों का समय लगेगा। निश्चय ही, भूगर्भशास्त्री जिस अत्यधिक काल की कल्पना करते हैं उतने अधिक काल की छूट देकर भी, यह समझना कठिन है कि घोड़े जैसा अपेक्षाकृत आधुनिक प्राणी भी पाँच पंजों वाले श्वान सदृश अपने किसी कल्पित पूर्वज की सन्तान रहा होगा।

अन्त में क्रोमोसोम के नाम से अभिहित जटिल रचनाओं के, जिनमें शरीर की विशेषता को बताने वाले कारण स्थित होते हैं, अध्ययन से उनकी रचना और ढाँचे में विशिष्ट अन्तर का पता लगता है। ड्रोसोफिला मेलानोगास्टर और ड्रोसोफिला स्यूडोओब्सक्युरा नाम की फलों की मक्खियों में भी, जिनकी नस्लें आपस में अत्यन्त घनिष्ठ रूप से सम्बद्ध हैं, यह अन्तर देखा जा सकता है। वस्तुतः अपनी 'जेनेटिक्स एण्ड दि ओरिजिन आफ स्पेशीज़' नामक पुस्तक में दोब्ज़ान्सकी ने कहा है: 'बार-बार उलट-पलट और अदल-बदल से कुछ क्रोमोसोम के खण्ड इतने पूर्णतः पुनर्निमित हो जाते हैं कि लार-सम्बन्धी क्रोमोसोमों में उसके गोल सिरे एक दूसरे से मिलते-जुलते नहीं होते।" और फल-मक्षिका में कृत्रिम रूप से प्रेरित या प्राकृतिक रूप से होने वाले स्थान-परिवर्तनों के अध्ययन से पता लगता है कि जब उनकी महत्वपूर्ण विशेषताएं एक जैसी हों तो वे प्रायः सब की सब जीवन धारण करने में असमर्थ हो जाती हैं। क्रोमोसोम की व्यवस्था में ये इतने स्पष्ट अन्तर आखिर कैसे आए?

यदि स्थान सीमित न होता तो यह बताने के लिये और अधिक तथ्य उपस्थित किये जा सकते थे कि प्राणधारियों की दुनिया में हम जो अन्तर देखते हैं उनकी व्याख्या जड़वादी विकासवाद के सिद्धान्त से नहीं की जा सकती। ये अन्तर स्पष्ट रूप से उस विशिष्ट बुद्धिमान् स्रष्टा की ओर संकेत करते हैं जिसने जीवित प्राणियों को सीमित मात्रा में अन्तर के योग्य बनाया है ताकि जिन मूल परिस्थितियों में वे पैदा किये गए थे उनसे अधिक विपरीत संसार की सतत परिवर्तनशील परिस्थितियों में भी वे जीवित रह सकें।

प्रकृति के अध्ययन से उसके स्रष्टा की बुद्धिमत्ता और शक्ति का ही केवल पता लगता है, उस स्रष्टा के अन्तिम प्रयोजन का पता नहीं लगता। सन्त पाल ने ठीक ही कहा है : "क्योंकि हम अब एक शीशे में से देखते हैं जिसके कारण हमें धुँधला-धुँधला दिखाई देता है, किन्तु बाद में आमने-सामने होकर हम पूरी तरह देखते हैं। अब मुझे केवल आंशिक ज्ञान है, किन्तु तब मुझे वैसे ही पूरा ज्ञान होगा जैसे कि मेरे बारे में किसी को पूरा ज्ञान है।"

रसेल चार्ल्स आर्टिस्ट

करोड़ों जीवित कोषों का बोलता पैगाम

जीवविद् और वनस्पतिविद्

वी०एस-सी०, वटलर विश्वविद्यालय। एम०एस-सी०, नौर्थ वैस्टर्न विश्वविद्यालय। पी-एच०डी०, मिनेसोटा विश्वविद्यालय। स्विटजरलैण्ड के ज्यूरिख विश्वविद्यालय से ग्रेजुएट स्टडी। अनेक वर्षों तक जर्मनी के फ्रेंकफुर्त कालेज में प्राध्यापक। १९५३ से लिप्सकोम कालेज में जीव विज्ञान विभाग के अध्यक्ष और प्राध्यापक। टेनेसी और टैक्सास की विज्ञान अकादमियों के सदस्य। जीवविज्ञान सम्बन्धी अनेक लेखों के रचयिता।

\+ \+ \+

जीवित कोषों का प्रेक्षण एक हैरत में डालने वाला अनुभव होता है। इलोडिया नामक जलीय घास की छोटी सी पत्ती के सिरे को खुर्दबीन के नीचे रखिए और उसे उच्च शक्ति सम्पन्न पदार्थ के अन्तर्गत लाइए। अत्यन्त सुन्दर और सुव्यवस्थित जीवन नजर आएगा। हरेक कोष की रचना शानदार प्रतीत होगी। पौधे के सिरे के पत्ते में कोषों की दो तहों की मोटाई होगी, किन्तु तेज फोकस करने पर अलग अलग कोषों की रूप रेखाएं देखी जा सकती हैं। प्रत्येक कोष अपने आप में एक अलग इकाई प्रतीत होता है, हरेक औरों से स्वतन्त्रतापूर्वक अपने जीवन सम्बन्धी कार्य-कलाप जारी रखने में समर्थ है। एक कोष को दूसरे कोष से अलग करने वाली, कोषों की दीवारें, बदलती नहीं हैं। पूरा पत्ता इस प्रकार के कई सौ कोषों से बनता है, जो एक दूसरे के ऊपर तह-दर-तह ऐसे पड़े होते हैं जैसे किसी राज द्वारा बनाई गई दीवार में ईंटें।

कोष-विवर की केन्द्रीय रसधानी में उभर कर आये किन्तु अन्तरतम सिरे के चारों ओर फैलते कोशिकाद्रव्य (साइटोप्लाज्म) के पतले फीते में निहित, शिथिल भूरे पिण्ड के रूप में नाभिक (न्यूक्लियस) अस्पष्ट-सा ही दिखाई देता है। हम जानते हैं, कोष से आगे एक बहुत पतली और नाजुक झिल्ली होती है। सामान्य परिस्थितियों में यह झिल्ली देखी नहीं जा सकती क्योंकि वह कोष के अन्दर कोशिकारस के दबाव

से दीवार के साथ खूब कस कर चिपटी होती है। किन्तु जब कांच की पट्टी पर तेज नमकीन पानी पड़ता है तब यह झिल्ली साफ साफ दिखने लगती है, क्योंकि जब पानी बाहर जाने लगता है तब कोष की अन्तर्वस्तुएं झिल्ली के अन्दर अन्दर सिकुड़ने लगती हैं। तब हम कहते हैं कि कोष का प्लाज्मा-विसरण हो गया।

परन्तु यहां भी गति है। गति भी ऐसी कि बाहर से गति के अयोग्य दिखने वाले पत्ते में उसके होने का किसी को गुमान भी नहीं होगा। कोष के अन्तरतम सिरे के चारों ओर कौशिकाद्रव्य की पतली झिल्ली में सूक्ष्म हरे पिण्ड होते हैं जो हरिताणु या क्लोरोपास्ट कहलाते हैं। सूक्ष्मदर्शक यन्त्र से दिखने योग्य कतिपय जन्तुओं की तरह वे सक्रिय होकर अपने आपको नहीं चलाते बल्कि धारा में पड़ी छोटी छोटी नौकाओं की तरह तैरते रहते हैं। यही जलीय प्रोटोप्लाज्म या जीवद्रव्य है जो अपने आप में जीवित और गतिशील है। वास्तव में यहां जीवन का भौतिक आधार ही गतिशील है। इस खास पौधे में हरिताणुओं की गतिमयता एक ऐसी अभिव्यक्ति प्रतीत होती है, जो उन विशेषताओं को, जिनसे हम जीवन को—हरकत को—पहचानते हैं, पता लगाने का दृश्यमान साधन है।

प्रोटोप्लाज्म की इस गतिशील धारा को बनाए रखने वाली शक्ति या शक्तियां कौनसी हैं, उन्हें हम निश्चित रूप से नहीं जानते, न ही अपने ज्ञान की वर्तमान हालत में हम घटनाचक्र की पर्याप्त व्याख्या करने का प्रयत्न कर सकते हैं। परन्तु जीवित पदार्थों की, वनस्पतियों और प्राणियों दोनों के कोषों की, दुनिया में यत्र तत्र वह शक्ति काम करती दिखाई देती है। इस क्रिया को जीवद्रव्य की धारा-वाहिता या द्रव्यपरिस्रवण (साइक्लोसिस) कहते हैं, खास कर इलोडिया (एक फूल-दार पौधा) में, जहां कोश की दीवार के ठीक अन्दर चारों ओर घूमते हरित प्लास्टिड की गति से जीवित प्रोटोप्लाज्म की धारावाहिता हमारी आंखों को दिखाई देती है।

अब अमींवा-गर्भित प्रौटोज़ोआ की एक बूंद खुर्दबीन की गरम की हुई स्लाइड पर रखिए, आपको वैसी ही हैरत में डालने वाली प्रोटोप्लाज्म की धारा-वाहिता दिखाई देगी। प्राणी प्रयत्न से तैरता नहीं है, न ही पानी की बूंद पर वह निष्क्रिय हो कर उतराता रहता है—बल्कि वह वस्तुतः अक्षरशः बहता ही है। वनस्पतियों के कोशों के विसदृश नग्न प्रोटोप्लाज्म इस टुकड़े में, जो अपने आप में प्राणी ही है, कोई कठोर दीवार नहीं होती, किन्तु एक पतली झिल्ली मात्र होती है, जो बहते बहते रूप बदल लेती है और धीरे धीरे शरीर का विस्तार होता जाता है। क्योंकि पांव से इनकी कुछ कल्पित समानता समझी जाती है, इसलिए यह शरीर-विस्तार—जो पहले इस दिशा में और बाद में उस दिशा में फेंक दिया जाता है—नकली पांव या कूटपाद (स्यूडोपाडिया) कहलाते हैं।

खूब बड़ा बनाकर देखने से द्रव्य के वास्तविक कणों को इन नकली पांवों में बहता हुआ देखा जा सकता है जबकि प्राणी गति करता है। प्रोटोप्लाज्म की भिन्न

घनता के दो प्रदेश पहचाने जा सकते हैं : लगातार गति की हालत में रहने वाला अधिक पारभासक जलीय तत्व वाला आन्तरिक भाग, और अर्ध-ठोस या जेली जैसे तत्व वाला पहले को पूरी तरह घेरे हुए वाहरी भाग। कुछ वैज्ञानिकों का ख्याल है कि इन दोनों घनताओं से ही गति में सहायता मिलती है, बाहर का प्लाज्माज़ेल जलीय प्लाज्मासोल को निचोड़कर जब सोखने लगता है, तब वह कूटपाद (स्यूडोपोडिया) में बहने लगता है। दूसरे लोगों का ख्याल है कि केवल सतह के तनाव से ही ऐसा होता है।

जीव विज्ञान का पाठ्यक्रम प्रारम्भ करने वाले छात्र प्रतिवर्ष इस घटना-क्रम को देखते हैं, किन्तु हम उनको बता नहीं सकते कि ऐसा क्यों होता है। यदि हम अमीबी गति (प्रोटोप्लाज्म का सोलेशन और जीलेशन) के कारण और स्वभाव का पहले वाला सिद्धान्त मान लें तब भी हमें यह स्वीकार करना पड़ेगा कि कोश की चयापचय प्रक्रियाओं के कारण के बारे में हम सचमुच कुछ नहीं जानते।

तो यहां कोशों की दो बहुत भिन्न किस्में हैं। एक किस्म है जो हरे पौधों से प्राप्त होती है, और दूसरी किस्म है एक व्यक्तिगत प्राणि संस्थान। अनेक पहलुओं से हरेक एक सादा कोश या इकाई है। अनेक प्राणिशास्त्रियों ने अमीवा को सब प्राणियों का सबसे आदिम रूप बताया है और वस्तुतः प्राणि-जगत् में गति के जितने भी साधन हैं उनमें इसके प्रोटोप्लाज्म की धारा सबसे अधिक सरल है। इलोडिया यद्यपि एक लघु फूलदार पौधा है, किन्तु उसमें जो कोश होते हैं वे अन्य पोधों के कोशों से विशेष भिन्न नहीं होते। निश्चय ही हम यह कह सकते हैं कि वे सादे कोश हैं। फिर भी हरेक अत्यन्त व्यवस्थित प्रणाली से युक्त है। अपने अपने ढंग से हरेक जीवन के जरूरी और जटिल कार्य करता है और साथ ही हमारी इन्द्रियों को प्रोटोप्लाज्म की धारावाहिता के द्वारा, जो जीवन की सबसे अधिक सामान्य विशेषता है, उसका प्रत्यक्ष होता है। प्रत्येक कोश इन क्रियाओं को इतनी सूक्ष्मता से करता है कि उसकी तुलना में छोटी से छोटी और बढ़िया से बढ़िया घड़ी का चलना भी बहुत स्थूल बात लगती है।

जब घड़ियों की बात आ ही गई, तो निश्चय ही इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि अनेक घड़ियां अत्यन्त सूक्ष्म होती हैं। कई घड़ियां ऐसी होती हैं कि उनमें अपने आप चाबी लग जाने की व्यवस्था होती है—एक बार चाबी लगा देने के बाद हाथ की कलाई की हरकत से ही वह सदा चलती रहेगी। सफलतापूर्वक परीक्षण करके यह बात प्रदर्शित नहीं की जा सकती कि घड़ी जैसा सूक्ष्म यन्त्र अकस्मात् बन गया, अर्थात् उसे बनाने में किसी कारीगर के दिमाग और हाथ की जरूरत नहीं पड़ी। अपने आप चाबी लग जाने वाली घड़ी के बारे में भी यह नहीं कहा जा सकता कि किसी के चलाए बिना ही वह चल पड़ी। जब जीवित कोश के बारे में हम पूछते हैं : 'सूक्ष्मदर्शक यन्त्र से ही देखे जा सकने वाले सूक्ष्म और हैरत में डालने वाले कार्यों को करने वाला यह कोश अपने वर्तमान

रूप में कैसे आया ?' या 'इसमें गति कैसे प्रारम्भ हुई ?'—तो इसकी शुरूआत या इसके कार्य-कलाप के जारी रहने के कारण की व्याख्या का प्रयत्न करते हुए, जब तक हम युक्ति और तर्क के साथ यह स्वीकार नहीं कर लेते कि किसी चेतन बुद्धिमान् शक्ति ने उसे अस्तित्ववान् बनाया, तब तक हमें ऐसी कठिनाइयों का सामना करना पड़ेगा जिनसे हम पार नहीं पा सकते। वह चेतन और बुद्धिमान् सत्ता, जो चिन्तन-शून्य जड़ द्रव्य से नितरां भिन्न है, परमात्मा है।

यह स्वीकार किया जाना चाहिए कि कुछ ऐसी बाहरी और अजैव शक्तियाँ हैं जो कोशों में जीवनद्रव्य के प्रवाह को प्रभावित करती प्रतीत होती हैं। कुछ गवेषकों का कहना है कि कुछ उद्दीपक, जैसे कि तापमान, शायद प्रकाश, या रसाकर्षक (ओस्मोटिक) दबाव, जीवित द्रव्य के सोलेशन और जीलेशन पर प्रभाव डालते हैं, किन्तु साथ ही वे यह कहने में भी देर नहीं लगाते कि धारावाहिता और खास तौर से द्रव्य-परिस्रवण (साइक्लोसिस या चक्राकार गति) किसी स्पष्ट बाहरी उद्दीपन के बिना भी अनेक कोशों में लगातार जारी रहता है। इसलिये ऐसा प्रतीत होता है कि स्वयं प्रोटोप्लाज्म के नियन्त्रण में वह उसी का हिस्सा है। इस कोश में ऐसा कुछ है जो केवल बाहरी उद्दीपन की प्रतिक्रिया से कुछ अधिक है और उसका श्रेय केवल उस कोश को ही है।

इस सिलसिले में हम यह भी जानते हैं कि सूक्ष्म शल्यक्रिया के द्वारा यदि किसी कोश में से उसका नाभिक हटा दिया जाय तो वह कोश जल्दी ही मर जायगा और उसे कायम रखने के सब प्रयत्न विफलता में ही समाप्त होंगे। जब कोश का संघटनकर्ता ही चला गया तब कोश भी जीवित नहीं रह सकता। ठीक इसी प्रकार आदिकारण की खोज करने वाले तर्कशील जिज्ञासु व्यक्ति यह स्वीकार करेंगे कि कोश के सृजन के लिये विश्व का कोई संघटनकर्ता आवश्यक है।

कोशों के इस जीव-द्रव्य सम्बन्धी क्रिया-कलाप को न समझने या न जानने के कारण ही मैं इस समय इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि परमात्मा की सत्ता है, इतनी ही बात नहीं है। निश्चय ही अनेक लोग यह युक्ति देते हैं कि विज्ञान नहीं जानता इसलिये हमें परमात्मा को मान लेना चाहिये। किन्तु मैं इस युक्ति का प्रयोग नहीं कर रहा हूँ। यदि किसी दिन द्रव्य की धारावाहिता के वर्तमान रहस्य का हम अनावरण भी करलें और जीवित कोश को अधिक पूर्णता के साथ समझने लग जायें, तब भी हम अपनी बुद्धि के अनुसार उस महत्तर चेतन शक्ति का केवल अनुसरण भर कर रहे होंगे जिसने कोश में गति का श्रीगणेश किया और उसे जारी रखने की व्यवस्था की।

निर्जीव द्रव्य से जीवित कोश प्राप्त करने के प्रयत्न में अनेक सिद्धान्त सामने लाये गये हैं। कुछ गवेषक यह दावा करते हैं कि प्रोटोजीन (जीवाणु) या विषाणु, या प्रोटीन के अणुओं की विशाल संख्या के समुच्चय के माध्यम से जीवन प्रारम्भ

हुआ है। इस दावे से मन पर यह असर पड़ता है कि आखिर सजीव और निर्जीव के बीच की खाई पट ही गई। परन्तु असलियत यह है कि निर्जीव द्रव्य से परीक्षण-शाला में सजीव द्रव्य को पैदा करने के समस्त प्रयत्न सर्वथा विफल हो गये हैं।

इसके अलावा, इस बात का कोई प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं है कि जो व्यक्ति परमात्मा की सत्ता से इन्कार करता है वह उत्तर के लिये व्याकुल संसार के समक्ष यह सिद्ध कर सके कि अणुओं और परमाणुओं का अकस्मात् एकत्र हो जाना ही जीवन है, और वह वैसे ही अपने आपको गतिशील बनाने और कायम रखने में समर्थ है जैसा ऊपर वर्णित कोश करते हैं। नहीं, हरगिज नहीं। वह इसको एक विश्वास के रूप में स्वीकार करता है। हम सबको दिखने वाले तथ्यों की उसकी यह निजी व्याख्या है, कि आकस्मिक संयोग से प्रथम कोश अस्तित्व में आया। परन्तु ऐसा विश्वास करना तो, परमात्मा ने उसको अस्तित्व दिया इस विश्वास की अपेक्षा कहीं और बड़े चमत्कार में विश्वास करना होगा।

मेरी यह धारणा है कि इन एकाकी कोशों में से हर एक (हर एक में एक ऐसी जटिल और नाजुक प्रणाली है कि उसके पूर्ण कार्यकलाप का अध्ययन अभी तक हम नहीं कर पाये हैं), और इस पृथ्वी पर जितने भी अरब और खरब कोश हैं वे सब, निश्चित रूप से यह युक्तियुक्त अनुमान उपस्थित करते हैं—कि एक चेतन, विचारवान् और बुद्धियुक्त महान् शक्ति है जिसे हम परमात्मा कहते हैं। यह अनुमान विज्ञान को ग्राह्य भी है और मान्य भी। मेरी यह सुनिश्चित धारणा है कि परमात्मा है।

——

जार्ज हर्बर्ट व्लाउण्ट

आस्तिकवाद का औचित्य

प्रायोगिक भौतिकीविद्

बी० ए०, कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय। एम० एस-सी० कैलिफोर्निया इंस्टीट्यूट आफ टैकनोलौजी। लौस आलामोस फिजिक्स ग्रुप के कर्मचारी-मण्डल के भूतपूर्व सदस्य। दक्षिणी कैलिफोर्निया के इंजिनियरिंग सेंटर विश्वविद्यालय के एयरोडापोइनेमिक टैस्ट डिवीजन के चीफ इंस्ट्रूमेंट इंजीनियर। पोइण्ट मुगु वैण्टिक्स एवियेशन फैसिलिटी के अनैलेसिस ग्रुप के अध्यक्ष।

\+ \+ \+

मेरा परमात्मा में विश्वास है। परमात्मा में मेरी आस्था भी है। मेरे लिए परमात्मा का विचार केवल दार्शनिक चिन्तन नहीं है,—बल्कि मेरी व्यवहार-जगत् की विचारधारा पर वह छाया हुआ है। परमात्मा मेरे दैनिक व्यवहार का अंग है।

अनेक प्रथम कोटि के विचारकों की विचार-दिशा से यह सर्वथा विपरीत बात है। अपने विचार-जगत् से परमात्मा का बहिष्कार करने वाले बुद्धिवादियों की संख्या थोड़ी नहीं है। नास्तिकता में विश्वास का प्रचार करने वालों की भी कमी नहीं है। और परमात्मा के इस बहिष्कार और निष्कासन की स्वगत चर्चा भी खूब हुई है। इसलिए आस्तिकवाद का औचित्य सिद्ध करने के लिए युक्तियाँ पेश करना आवश्यक है।

इस कर्तव्य-पालन में सहायता के प्रयत्न में मैं कुछ अपने ही विचारों की ओर संकेत करना चाहता हूँ। सब से पहले तो मैं आस्तिकवाद के पक्ष-विपक्ष में मुख्य प्रमाणों पर विचार करना चाहता हूं। इन बातों पर विचार करने से यह पता लगता है कि किसी तर्कशील व्यक्ति को ईश्वर में विश्वास क्यों करना चाहिए। उसके बाद मैं यह बताऊंगा कि कोई व्यक्ति ईश्वर में विश्वास क्यों करता है ?

ईश्वर की सत्ता की समर्थक वे युक्तियां, जिनका मनुष्य के मानसिक प्रबोध से किसी भी तरह कोई सम्बन्ध नहीं है, और अधिक अध्ययन एवं विश्लेषण का विषय रही हैं। अनेक युगों तक इस विषय में जो बहस चलती रही है उससे ईश्वर सम्बन्धी सार्वभौमिक प्रमाणों की उलझन बढ़ी ही है, भले ही अगले ही सांस में वे सब प्रमाण सिकुड़ कर स्पेंसर के 'अज्ञेय' शब्द में समाहित हो गए हैं। निगमनिक सिद्धान्त की ऐसी असंगति आम बात हो गई है।

प्रभूत दार्शनिक चिन्तन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि सार्वभौमिक साक्षियां जिस चीज की ओर ले जाती हैं उसे ईश्वर कहा जा सकता है, परन्तु वह बाईबिल या धर्मग्रन्थ वाला ही ईश्वर हो, यह जरूरी नहीं है। दर्शन के व्याख्याकारी हाथों में पड़े इन प्रमाणों की कमजोरी निस्सन्देह धर्मग्रन्थ-वर्णित ईश्वर की सम्भावना से सर्वथा इन्कार नहीं करती। न ही वह इस बात की पुष्टि करतीं है कि धुंधली प्रतिमा केवल प्रमाणाभाव के कारण है : शायद दूरबीन इस विषय में कुछ अधिक सूक्ष्म संगति बिठा सके।

इन प्रमाणों के सही मूल्य का कुछ आभास देने के लिए, और मुझे उनका उचित विनियोग यही प्रतीत होता है, मैं गणितशास्त्र में पाई जाने वाली समानान्तर स्थिति की याद दिलाना चाहता हूं।

खास तौर से ज्यामिति में यह बात स्पष्ट है कि कुछ स्वयंसिद्ध तथ्यों से प्रारम्भ करके भी विस्तृत विज्ञान का निर्माण किया जा सकता है। ज्यामिति के स्वयं-सिद्ध तथ्यों को उनकी सचाई की सिद्धि दिए बिना ही मान लिया जाता है। उन स्वयंसिद्ध तथ्यों के आश्रय से चलने वाला विज्ञान प्रयोगों को स्पष्ट करने के लिए उन तथ्यों में जोड़-तोड़ और घट-बढ़ करता रहता है। किसी भी साध्य को सिद्ध करने के लिए अन्ततः इन स्वयंसिद्ध तथ्यों का ही आश्रय लेना पड़ता है। तथापि इन साध्यों का कोई भी संचय स्वयंसिद्ध तथ्यों की सिद्धि नहीं बन जाता। उन स्वयंसिद्ध तथ्यों का मूल्यांकन करने के लिए असंगति और भौतिक सह-सम्बन्ध की परीक्षाएं प्रयुक्त की जा सकती हैं। किन्तु यदि हरेक साध्य क्रियात्मक विनियोग के उपयुक्त पाया जाए और किसी साध्य में भी असंगति न मिले, तब भी वह स्वयंसिद्ध तथ्यों की सिद्धि नहीं बन जाती। स्वयंसिद्ध तथ्य सदा विश्वास के आधार पर ही स्वीकार किये जाते हैं यद्यपि यह अलग बात है कि उसे हम अन्धविश्वास नहीं कह सकते।

इसी प्रकार, दार्शनिक दृष्टिकोण से, परमात्मा की सत्ता को भी स्वयंसिद्ध तथ्य माना जाना चाहिए। विश्व में परमात्मा की सत्ता सम्बंधी जो प्रमाण पाए जाते हैं वे ज्यामित के निदर्शनों की तरह हैं। वे बुनियादी स्वयंसिद्ध तथ्य को सिद्ध नहीं करते, किन्तु स्वयं उसी से निकलते हैं। यदि किसी निदर्शन और वास्तविकता में सह-सम्बन्ध पाया जाता है तो वह स्वयंसिद्ध तथ्य की सचाई का भी कुछ थोड़ा-बहुत-सबूत बन जाता है। यदि आस्तिकवादी स्वयंसिद्ध तथ्य सच्चे हैं और

परीक्षणशाला में जो कुछ सच पाया गया है उन दोनों के बीच सह-सम्बन्ध विद्यमान हैं तो वही सम्बन्ध अपने आप में प्रमाण बन सकता है। साक्षियां किसी चीज में विश्वास को समाप्त नहीं कर देतीं, किन्तु वे स्वयंसिद्ध तथ्यों को अन्धविश्वास के बजाय मानसिक प्रबोध के आधार पर मानने की ओर प्रवृत्त करती हैं।

इन प्रमाणों का कुछ सामान्य कोटियों में वर्गीकरण किया गया है। एक कोटि है विश्व-रचना सम्बन्धी, दूसरी है उद्देश्य सम्बन्धी, और तीसरी है मानव-विज्ञान सम्बन्धी।

विश्व-रचना सम्बन्धी युक्ति परिवर्तनशील है और इसीलिए स्पष्टतः अशाश्वत विश्व पर दृष्टिपात करती है और इस प्रकार उच्चतर शाश्वत सत्ता की ओर ले जाती है। उद्देश्य सम्बन्धी दृष्टि को विश्व में डिजाईन प्रतीत होता है और इसलिए वह किसी डिजाइनर पर विचार करने को बाध्य होती है। मानव-विज्ञान सम्बन्धी प्रमाण मानव के नैतिक स्वभाव में पाए जाते हैं। मनुष्य में विद्यमान नैतिक जिम्मेदारी की भावना पूर्ण आदर्श की व्याख्या के सन्निकट समझी जाती है। उच्चतर नीति का तकाजा है कि कोई उच्चतर नीति-व्यवस्थापक होना चाहिए।

मेरा अपना वैज्ञानिक कार्य भौतिक विश्लेषण से सम्बद्ध है। इसलिए मुझे जो आस्तिकवाद के प्रमाण दिखाई देते हैं वे अक्सर उद्देश्य सम्बन्धी होते हैं। वस्तुतः किसी जटिल रचना को नियन्त्रण में रखने वाले 'नियमों' का निश्चय करने के लिए पहले व्यक्ति को यह विश्वास करना होगा कि किसी प्रकार का क्रम विद्यमान है। उस क्रम को खोज निकालना ही विश्लेषण का काम है।

किसी रचना का नमूना (माडल) तलाश करके विश्लेषण-कर्त्ता समस्या का हल प्रारम्भ करता है। वह नमूना वास्तविक स्थिति की गणितात्मक या भौतिक सन्निकटतामात्र होता है। नमूने की पहले तो भौतिकीविद् कल्पना ही करता है। जितना भी सम्भव हो सके, नमूना सादे से सादा चुना जाता है, इस पर भी वह वास्तविकता के सन्तोषजनक रूप से सन्निकट होना चाहिए। तब नमूने की इस दृष्टि से खोज की जाती है कि उस स्थिति पर नियन्त्रण करने वाले नियमों का पता लगाया जा सके। यदि व्यापक वास्तविक आधार सामग्री प्राप्त हो जाए और नमूने से निकले नियमों से उसका मेल बैठ जाए, तो यह समझा जाएगा कि नमूने का ठीक ठीक चुनाव किया गया है।

यह महत्त्वपूर्ण बात है कि ऐसा लगता है जैसे किसी भी भौतिक समस्या के लिये अन्ततः कोई न कोई 'माडल' प्राप्त किया ही जा सकता है। इसलिये ऐसा प्रतीत होता है कि किसी न किसी प्रकार का क्रम वास्तविकता का अंग ही है। (क्रम और वास्तविकता का वर्णन कैसे किया जाता है यह प्रचलित मानसिक प्रकृति का कार्य है।) यह कहना कि शून्य से, या अव्यवस्था में से, व्यवस्था सहज रूप से पैदा हो गई, मनुष्य की बुद्धि के लिए स्वागत योग्य बात नहीं है। इस प्रकार कोई भी

चिन्तनशील व्यक्ति दृश्यमान विश्व के नियोजक की कल्पना करने को बाध्य होगा। उसके जीवन के जो स्वयंसिद्ध तथ्य हैं, परमात्मा भी उनमें महत्वपूर्ण भाग छेक लेगा। वह परमात्मा को वास्तविकता का नमूना मान कर ही रहेगा। निष्कर्ष और अनुभव के बीच सह सम्बन्ध स्वयंसिद्ध तथ्य की भौतिक सचाई की एक साक्षी (किन्तु सिद्धि नहीं) है। जिस नमूने में परमात्मा शामिल है वह यदि सच्चा है, तो क्रम भी वास्तविकता का एक अंग होगा। अनुभव में क्रम यह संकेत करता है कि वर्तमान अनुभव की सीमा तक नमूना सच है।

हर एक नास्तिक अपने आपको युक्तियुक्त समझता है। नास्तिकता के साथ बुद्धि का कोई मेल नहीं, शायद यह बात कही भी नहीं जा सकती, क्योंकि जोर केवल इस बात पर दिया गया है कि परमात्मा की साक्षियां कोई सिद्धियाँ नहीं हैं, बल्कि वे महत्वपूर्ण निर्देश मात्र हैं।

अनीश्वरवादी प्रमाणों की एक खास बात यह है कि वे नकारात्मक होते हैं। परमात्मा की सकारात्मक सिद्धि के अभाव का अर्थ यह लगाया जाता है कि परमात्मा जरूरी नहीं है। परमात्मा की ओर संकेत करने वाली साक्षियां पर्याप्त नहीं समझी जातीं। उदाहरण के लिये विश्व-रचना सम्बन्धी युक्ति का खण्डन इस सम्भावना से किया जाता है कि द्रव्य और ऊर्जा का परस्पर आदान प्रदान कभी समाप्त नहीं होता, इसलिए जैसा कि हम जानते हैं, वास्तविकता की कोई शुरूआत भी नहीं है। प्रकृति की नियमबद्धता को उतना नियमित नहीं माना जाता और दृश्यमान व्यवस्था को मानसिक कल्पना की एक ऊंची किस्म समझा जाता है। न्याय के किसी आदर्श के लिए कोई साक्षी नहीं मिलती और प्रकृति के सब पहलुओं को नैतिकताविहीन समझा जाता है। इस प्रकार नास्तिक को जो सब से बड़ा प्रमाण दिखाई देता है वह केवल यही है कि आस्तिकवाद के प्रमाण काफी जोरदार नही हैं।

परमात्मा की सिद्ध में इस नकारात्मक प्रयत्न की स्पष्ट दुर्बलता और सर्वथा दार्शनिक सिद्धि के अभाव ने कुछ लोगों को बीच का रास्ता अपनाने को प्रेरित किया है। फिर भी यह स्पष्ट है कि निरीश्वरवादी और अज्ञेयवादी दोनों एक ही खेमे के हैं। दोनों यह दावा करते हैं कि जिस विश्व को हम जानते हैं उसमें परमात्मा जैसी कोई चीज नहीं है। नास्तिक के इस दृष्टिकोण में अज्ञेयवादी अपने इस विचार से कोई इजाफा नहीं करता कि बौद्धिक दृष्टि से यह सम्भव है कि कोई दूसरा 'विश्व' भी विद्यमान हो जिसमें परमात्मा की सत्ता सम्भव हो। वास्तविक प्रश्न से संघर्ष को टालने के लिए यह तार्किक उखाड़-पछाड़ एक साधनमात्र है : 'क्या कोई ऐसा परमात्मा है जिसका प्रभाव क्षेत्र हमारे क्रिया क्षेत्र के कम से कम कुछ भाग को छेक ले या घेर ले ?' इस प्रकार जो किसी निश्चित अज्ञेयवादी दृष्टिकोण तक आ गया है, व्यावहारिक दृष्टि से वह भी उतना ही नास्तिक है जितना कि कोई घोषित नास्तिक होता है। जो व्यक्ति अपना मार्ग तलाश कर रहा

है वह किसी अनिश्चित प्रवाह की स्थिति में हो सकता है, किन्तु जो व्यक्ति अपनी ओर से किसी नतीजे पर पहुंच गया है, उसके लिए कोई बीच की जगह नहीं है।

परमात्मा के पक्ष-विपक्ष में प्रमाणों की तुलना करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि यद्यपि किसी भी पक्ष में पूर्ण सिद्धि का अभाव है, तथापि आस्तिक दृष्टिकोण के बजाय नास्तिक दृष्टिकोण को अपनाने में कहीं अधिक विश्वास का आश्रय लेना पड़ता है। या और सही ढंग से कहना हो तो यों कहा जा सकता है कि आस्तिक की श्रद्धा उसके मानसिक प्रबोध के कारण होती है जबकि नास्तिक की श्रद्धा सर्वथा अन्धविश्वास के कारण होती है। मुझे इस बात का पक्का निश्चय है कि तर्क आस्तिकवाद का मित्र है। सचमुच, जब कोई बुनियादी साक्षियों के परे बाह्य आकलन करता है तब सब प्रकार की अनिश्चितताओं की गुंजाइश हो जाती है। दार्शनिकों द्वारा पेश की गई भलाई और बुराई की भारी भूलभुलैयां का औचित्य बताने का प्रयत्न मैं नहीं कर रहा हूं। मैं तो केवल इतना ही कहना चाहता हूं कि आस्तिकता का आदिम विचार भी युक्ति-विरुद्ध नहीं है। यदि किसी को आस्तिकता के प्रमाण अपने चारों ओर के संसार में दृष्टिगोचर नहीं होते तो यही समझना होगा कि उस की देखने की शक्ति ही जाती रही है।

आस्तिकवाद के युक्ति-प्राबल्य और नास्तिकवाद के युक्ति-दौर्बल्य से ही कोई आदमी व्यवहार में आस्तिक नहीं बन जाता। यह सहज-शंका प्रायः यत्र-तत्र प्रसृत दीखती है कि परमात्मा को मानने से मनुष्य की स्वतन्त्रता छिन जाएगी। बौद्धिक स्वातन्त्र्य के पुजारी किसी विद्वान् को तो बुद्धि के स्वातन्त्र्य में कुछ भी कमी करने वाला विचार खास तौर से भयप्रद लगता है। और स्वतन्त्रता छिन जाने की यह शंका निराधार नहीं है। धर्म के मामले में प्रायः तर्क का दखल स्वीकार नहीं किया जाता।[1] ईसाइयों के बड़े से बड़े सम्प्रदायों में भी बौद्धिक तानाशाही आम चलती है। परन्तु धर्म का यह रूप तो मनुष्य का अपना बनाया हुआ रूप है। आस्तिकता के साथ दार्शनिक अत्याचार कोई आवश्यक शर्त नहीं है। उदाहरण के लिए, ईसाइयों के धर्म-ग्रन्थ बाइबिल में ईश्वर का जैसा चित्रण है वह और अधिक स्वतन्त्रता के लिए आह्वान करने वाला है। बाइबिल में कहा गया है: तो आओ, हम सब मिल कर तर्क करें, प्रभु ईसा ने कहा।"[2]

---

१. इस्लाम और ईसाइयत में तो यह बात खास तौर से रही है। पाश्चात्य जगत में धर्म और विज्ञान के चिरकालिक ऐतिहासिक संघर्ष का मूल कारण भी यही रहा है कि धर्मवादी लोग तर्क या विज्ञान की बात सुनने को तैयार नहीं होते थे। ब्रूनो, गैलिलियो और कोपर्निकस जैसे वैज्ञानिकों को धर्म के ठेकेदारों के हाथों कितने कष्ट उठाने पड़े थे! —अनु०

२. उपनिषदों में तर्क को ऋषि कहा गया है। मनुस्मृति ने स्पष्ट लिखा है: यस्तर्केणानुसंधत्ते स धर्म वेद नेतरः—तर्क से अनुसंधान करने वाला ही धर्म को जानता है, दूसरा नहीं। —अनु०

फिर वह कौनसी चीज है जो मनुष्य को व्यवहार में आस्तिक बनने की प्रेरणा देती है ? मैं समझता हूँ कि जो बात मनुष्य को अपने मित्र की सत्ता स्वीकार करने को प्रेरित करती है, यह बात भी उससे बहुत भिन्न नहीं है। जिस क्षण मनुष्य को परमात्मा की अनुभूति हो जाती है, उसी क्षण वह परमात्मा में विश्वास करने लगता है।

मैंने इस प्रकार मानसिक संघर्ष में से गुजर कर परमात्मा की सत्ता में विश्वास किया है। मुझे इस बात की प्रसन्नता है कि वास्तविकता का ईश्वरवादी मौडल युक्तियुक्त है, किन्तु इस युक्तियुक्तता का बिस्तार और विश्वास के लिए विवश करने वाली उसकी शक्ति गौण है। मुझे परमात्मा की अनुभूति हुई है। निस्सन्देह यह अत्यन्त निजी और व्यक्तिगत अनुभव है, किन्तु यदि आपका मन डावांडौल है तो अपनी अनुभूति को मैं आपके सामने आस्तिकता की सिद्धि के तौर पर पेश नही करता, आप स्वयं परमात्मा से भेंट करिए और उसकी सत्ता की अनुभूति प्राप्त करिए।

——

डोनाल्ड रोबर्ट कार

भू-विज्ञान का संकेत

भू-रसायनविद्

वी० एस-सी, रोचेस्टर विश्वविद्यालय। एम० ए०, पी-एच०-डी०, कोलम्बिया विश्वविद्यालय। कोलम्बिया विश्वविद्यालय में भू-रसायन के भूतपूर्व गवेषणा-सहकारी। शेल्टन कालेज में भू-विज्ञान के सह-प्राध्यापक। स्टैनफोर्ड अनुसंधान संस्था के परामर्श-दाता। १९५५ से आइसोटोप इन्कौरपरेटेड न्यूजर्सी के संचालक। जे० एल० कल्प के साथ 'डेटिंग विद् नैचुरल रेडियोएक्टिवकार्बन', 'यूज़ आफ ए-५७ टू डेटरमिन आरगन विहेवियर इन वेकुअम सिस्टम्स', 'द पोटाशियम-आरगन मैथड आफ जियोक्रोनोमेटरी' तथा अन्य पुस्तकों के सह-लेखक। भू-वैज्ञानिक आयु निर्धारण करने, प्राकृतिक रेडियोएक्टिविटी पर आधारित तरीकों का प्रयोग करने और वायुमण्डलीय तथा भू-गर्भीय आण्विक प्रक्रियाओं के विशेषज्ञ।

× × ×

परमात्मा की सत्ता-सम्बन्धी बहस में खुले दिमाग से भाग लेना मेरे लिए असम्भव है। शायद यह बात अवैज्ञानिक-सी प्रतीत हो। किन्तु मुझे सफाई देने का—तथा बाद में विशुद्ध वैज्ञानिक ढंग की कतिपय टिप्पणियां करने का अवसर दीजिए।

जब अपने विश्वासों के लिए कोई युक्ति देने का हमें आह्वान किया जाता है तो हम वैज्ञानिक अध्ययन के बल पर इस प्रकार की साक्षी जुटा सकते हैं जो परमात्मा की सत्ता की अत्यन्त उच्च सम्भाव्यता सिद्ध करने में सहायक हो—अलबत्ता यह जरूरी नहीं है कि वह बाइबिल-वर्णित परमात्मा ही हो। परन्तु बहुत कुछ वह आत्मिक विश्वास का ही विषय है। तब तह 'आत्मा द्वारा आत्मा में विश्वास' की बात बनती है।

परमात्मा की दया से मुझ में वह आत्मिक विश्वास है और वह अनिवार्य रूप से ईश्वर की सत्ता सम्बन्धी मेरी विचार-सरणि को नियन्त्रिण करता है। इसलिए अपने विश्वास की पुष्टि में मैं जो तर्क पेश करूं वह शायद व्यक्तिनिष्ठ समझा जाए और मुझ पर रहस्यवादी होने का आरोप लगाया जाए। जो रहस्यवाद शब्द का प्रयोग ऐसे करते हैं जैसे कि यह प्रभु की दया का ही कोई प्रकार हो, उन्हें इस बात का स्पष्टीकरण करना होगा कि रचित जीवों और रचयिता प्रभु का सम्बन्ध इससे भिन्न कैसे हो सकता है।

ईश्वर द्वारा प्रेषित ईसा में विश्वास के लिए वैज्ञानिकों के समक्ष औपचारिक क्षमा-याचना का कोई प्रयोजन नहीं। यह तो एक जरूरत का सवाल है। मेरी जरूरत ईसा से और ईश्वर से पूरी होती है इसलिए मैं उन पर विश्वास करता हूं। उसके बाद भू-रसायन के क्षेत्र का अध्ययन करने से मुझे इस तथ्य को हृदयंगम करने में और सहायता मिली कि परमात्मा ने इस विश्व की रचना की है। इसलिए मेरे लिए यह स्वाभाविक है कि मैं प्रकृति में भी परमात्मा का ही हाथ देखूं।

भू-रसायन के अध्ययन का धर्म से जिन दो अत्यन्त महत्वपूर्ण क्षेत्रों में सीधा सम्बन्ध है वे ये हैं : (१) विश्व के प्रारम्भ होने का समय-निर्धारण, और (२) एकरूपतावाद (यूनिफौर्मिटरियनिज्म) का सिद्धान्त जैसा कि वह भू-विज्ञान में प्रयुक्त होता है।

विभिन्न भू-वैज्ञानिक नमूनों के, जैसे उल्कापिण्ड सम्बन्धी सामग्री के, निर्माण का काल या आयु रेडियो-एक्टिविटी के सम्बन्ध के सहारे निर्धारित करने से यह सम्भव हो सका है कि हम अर्धपरिमाणात्मक आधार पर पृथ्वी का इतिहास पुनः तैयार करने का प्रयत्न कर सकें। आयु-निर्धारण के अलग-अलग कई तरीके इस समय इस्तेमाल किये जा रहे हैं और उनकी परिशुद्धता की मात्रा भले ही अलग हो, परन्तु आम तौर पर वे सब सन्तोषजनक रूप से एक दूसरे का समर्थन ही करते हैं। ज्योतिष सम्बन्धी साक्ष्य की जो विविध व्याख्याएं हैं वे विश्व की आयु के सम्बन्ध में एक जैसे निष्कर्षों की ओर ले जाती हैं। इस तथ्य से इस दृष्टिकोण में काफी वजन आ जाता है कि यह विश्व लगभग दो अरब वर्ष पहिले शुरू हुआ। इस युक्ति का विस्तार करने से प्राप्त विचार के अनुसार विश्व के अनादित्व को निरस्त किया जा सकता है। जिस विश्व का कोई आदि नहीं है, किन्तु जो सदा विद्यमान रहता है उसमें कोई रेडियो-ऐक्टिव तत्व नहीं रहेंगे। इसको थर्मोडाइनेमिक्स के दूसरे सिद्धान्त का उप-सिद्धान्त समझना चाहिये। विश्व में बारी बारी से फैलने का और सिकुड़ने का चक्र चलता रहता है—यह खयाल वैज्ञानिकेतर है, इसलिये इसे असिद्ध मत या केवल कल्पना-प्रसूत मन्तव्य माना जा सकता है। विश्व सादि है, यह निष्कर्ष धर्मग्रन्थ के इस वर्णन से मिलता है : "शुरू में, परमात्मा ने पृथ्वी और आकाश को बनाया", साथ ही थर्मोडाइनेमिक्स, ज्योतिष और भू-वैज्ञानिक सामग्री से भी इसका प्रबल समर्थन होता है।

एकरूपतावाद का सिद्धान्त समस्त भू-विज्ञान में स्वयंसिद्ध माना जाता है। इस सिद्धान्त का मतलब यह है कि यह मान लिया गया है कि इस समय जो भू-वैज्ञानिक और भू-रासायनिक प्रक्रियाएं काम कर रही हैं वे अतीत में भी काम कर रही थीं, और इसलिए इन प्रक्रियों को समझने से भू-वैज्ञानिक इतिहास की व्याख्या का आधार मिल जाता है। प्रकृति का क्रमबद्ध व्यवहार और 'प्राकृतिक नियमों' की विद्यमानता आधुनिक विज्ञान का दिशानिर्देशक पत्थर है।

यह क्रमबद्ध संसार, जिसके बिना वैज्ञानिक का काम नहीं चल सकता, ऐसा है जिसकी, धर्मग्रन्थ में वर्णित परमात्मा सम्बन्धी इस विचार से, कि वह विश्व का केवल सिरजनहार ही नहीं, किन्तु पालनहार भी है, पूरी संगति मिल जाती है। यदि यह विश्व अस्तव्यस्त होता तो सन्त पाल का वक्तव्य निरर्थक हो जाता : 'जब से यह सृष्टि बनी है उसकी अदृश्य प्रकृति, अर्थात् उसकी शाश्वत शक्ति, निर्मित वस्तुओं में स्पष्ट दिखाई देती है

नियमबद्धता के अभाव में, चमत्कारों को मान्यता नहीं दी जा सकती। जैसा कि महान् भू-वैज्ञानिक जे० डब्ल्यू० कौसन ने कई वर्ष पहले कहा था : "वास्तव में, प्रार्थना के दार्शनिक रूप के लिए नियम में विश्वास जरूरी है। यदि विश्व केवल आकस्मिकताओं का ही झमेला होता, या वह केवल निरी जरूरत का ही परिणाम होता, तो बुद्धिपूर्वक किसी प्रार्थना की जरूरत नहीं थी, किन्तु यदि वह किसी बुद्धिमान् और दयालु नियमप्रदाता के नियन्त्रण में है, जो जड़वादी यन्त्र का केवल प्रबन्धक ही नहीं बल्कि सबका सच्चा पिता है, तब हम अपनी प्रार्थनाओं के साथ उसके सामने हाजिर हो सकते हैं, यह विश्वास लेकर नहीं कि हम उसकी महान् योजनाओं को बदल देंगे, न ही यह समझकर कि इससे यदि सम्भव हो तो हमें कोई लाभ मिलेगा, किन्तु केवल इसलिए कि वे योजनाएं उसकी असीम बुद्धि और प्रेम के कारण इस ढंग से बन सकती हैं कि उससे हमारी जरूरतें पूरी हो जाएं।"

अन्त में, अपने अध्ययन की विज्ञान की विशेष शाखा की चर्चा करते हुए मैं कहूंगा कि भू-रसायन शाखा हरेक को यह सिखाती है कि वह चीजों को व्यापक पैमाने पर देखे, काल के सम्बन्ध में यह भूमि के इतिहास की अरबों वर्षों की इकाइयों में सोचे, विश्व को चारों ओर से घेर लेने वाले देश (स्पेस) के सम्बन्ध में सोचे और विश्वव्यापी चक्रों को शामिल करने वाली प्रक्रियाओं के सम्बन्ध में सोचे। इन सब की विशालता मनुष्य को प्रभु की महत्ता समझने को विवश कर देगी।

इस सबका विज्ञान-सम्मत सार 'तू कितना महान हैं'—नामक गीत में, जिसने हाल में ही न्यूयार्क नगर के एक धार्मिक सम्मेलन में लाखों श्रोताओं को रोमांचित कर दिया, बयान किया गया है। परमात्मा की प्रकृति के सम्बन्ध में हाल के वर्षों में एक के बाद एक जो अन्तहीन प्रतीत होने वाली भारी खोजें हुई हैं, शायद उन्होंने ही उत्सुक श्रोताओं को मन्त्रमुग्ध बनाए रखा और शायद इसी से पता लगता है कि वह गीत इतना लोकप्रिय क्यों है :

"ओ मेरे प्रभु, जब मैं आश्चर्य से चकित तेरे हाथों से निर्मित सब लोकों को सोचता हूं, और देखता हूं सितारों को और सुनता हूं बिजली की कड़क, अनुभव करता हूं विश्व में प्रदर्शित तेरी शक्ति को—तब गाती है मेरी आत्मा, मेरे रक्षक प्रभु, तेरे लिए, तू कितना महान् है, तू कितना महान् है ।"[१]

—

१. संस्कृत के एक कवि की इस उक्ति के साथ तुलना करिए—

असितगिरिसमं स्यात् कज्जलं सिन्धुपात्रे
सुरतरुवर शाखा लेखनी पत्र मुर्वी ।
लिखति यदि गृहीत्वा शारदा सर्वकालं
तदपि तव गुणानामीश पारं न याति ।।

—यदि समुद्र की दवात बने, कृष्णपर्वत की स्याही बनाकर उस दवात में डाली जाए, कल्पतरु की शाखा की लेखनी बने, समस्त पृथ्वी कागज के रूप में प्रयुक्त हो और साक्षात् सरस्वती अनन्तकाल तक लिखती चली जाए, तब भी हे ईश्वर ! तुम्हारे गुणों का पार नहीं पाया जा सकता ।

पीटर डब्ल्यू स्टोनर

आधुनिक ज्योतिष और बाइबिल का उत्पत्ति-खण्ड

गणितज्ञ और ज्योतिर्विद्

एम० एस-सी, पी-एच०डी० के लिए दो वर्ष तक कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय में कार्य। कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय में प्राध्यापक, फिर पासा सिटी कालेज में गणित और ज्योतिष विभाग के अध्यक्ष और वेस्टमौंट कालेज में विज्ञान विभाग के अध्यक्ष। अनेक राष्ट्रीय वैज्ञानिक संस्थाओं के सदस्य। ज्योतिष सम्बन्धी और भौतिक ज्योतिष सम्बन्धी सिद्धान्तों के ऐतिहासिक विकास के विशेषज्ञ।

× × ×

जब मैं कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय में स्नातक श्रेणी का छात्र था तब मुझे चीनी छात्रों के एक रविवारीय स्कूल की श्रेणी में पढ़ाने को कहा गया। ये चीनी छात्र सरकार की एक योजना के आधीन अध्ययन कर रहे थे। इनमें से कोई बारह छात्र बर्कले के प्रथम प्रेसबिटेरियन चर्च के पादरी के पास गए और उनसे रविवारीय स्कूल की क्लास लगाने को कहा। किन्तु उन्होंने यह भी साफ कह दिया कि हम ईसाई नहीं बनना चाहते, केवल ईसाई धर्म के सम्बन्ध में जानना चाहते हैं कि इसने कैसे और कहां तक अमेरिकन संस्कृति को प्रभावित किया है। पादरी ने इसके लिए मुझे उपयुक्त समझा और मुझ से क्लास लेने को कहा, और मैंने कुछ कुछ झिझकते हुए स्वीकार कर लिया।

मेरे सामने तुरन्त यह समस्या आई कि इस प्रकार के वर्ग के सामने क्या पढ़ाया जाए? क्योंकि इन युवकों का बाइबिल में कोई विश्वास नहीं था, इसलिए जैसे और जगह बाइबिल पढ़ाई जाती है वैसे यहां बाइबिल पढ़ाना व्यर्थ होता। तब मुझे एक विचार सूझा। अपने उपस्नातक काल के अध्ययन में मेरा ध्यान इस बात पर गया था कि बाइबिल के उत्पत्ति खण्ड (जेनेसिस) के प्रथम अध्याय में और विभिन्न विज्ञानों में गहरा सम्बन्ध है। मैंने निश्चय कर लिया कि मैं इस वर्ग को यही विषय पढ़ाऊंगा।

मैं और छात्र स्वभावतः इस तथ्य के प्रति सजग थे कि यह उत्पत्तिखण्ड अब से हजारों साल पहले लिखा गया था जब कि विज्ञान के समक्ष आजकल का-सा ज्ञान नहीं था, या पृथ्वी और उसके ऊपर जीवन तथा विश्व के सम्बन्ध में आधुनिक मान्यताओं का कहीं आभास भी नहीं था। जब हम आधुनिक ज्ञान की रोशनी में देखते हैं—और वह ज्ञान इन छात्रों को भी सुलभ था—तब हम यह स्वीकार करने में संकोच नहीं करते कि मूसा के समय के या उसके हजारों साल बाद के लोगों में शिक्षा-दीक्षा की परम्परा एकदम वाहियात थी। फिर भी हमने दृढ़ इच्छा से इस विषय का अध्ययन किया।

हमारी सारी शरद् ऋतु उत्पत्ति-खण्ड के प्रथम अध्याय में ही बीत गई। छात्रों ने पुस्तकालय में जा जाकर ऐसी पूर्णता के साथ निबन्ध तैयार किये कि एक अध्यापक सामन्यतया उसका स्वप्न ही ले सकता है : सर्दियों के अन्त में पादरी ने मुझे अपने दफ्तर में बुलाया और मुझे बताया कि छात्रों के सारे वर्ग ने मुझ से आकर कहा है कि हम ईसाई बनना चाहते हैं।

अब मैं साफ साफ बात कहूं। इस समय तक मैं स्वयं भी एक ईसाई था, किन्तु अन्य अनेक लोगों की तरह मैं यह समझता था कि बाइबिल एक मुक्ति का रास्ता बताने वाली और आध्यात्मिक विषयों का उपदेश देने वाली पुस्तक है। हमें जो कुछ हासिल हुआ उससे मैं स्वयं भी उतना ही प्रभावित था जितने प्रभावित वे छात्र थे। तब से (१९१० से) मैं वैज्ञानिक विकास का बड़ी बारीकी से निरीक्षण करता रहा हूं और मैंने उत्पत्तिखण्ड के वर्णन से उसकी तुलना की है।

उत्पत्ति-खण्ड के प्रथम अध्याय का प्रथम पद ही ले लो : 'शुरू में परमात्मा ने पृथ्वी और आकाश को बनाया।'[1] चीनी छात्रों की श्रेणी को पढ़ाते समय हम यह समझते थे कि द्रव्य अविनाश्य हैं। हम उसका रूप बदल सकते हैं किन्तु फिर भी वह द्रव्य बना रहता है, और उसकी मात्रा ज्यों की त्यों रहती है। परिणाम-स्वरूप प्रचलित विचार यह था कि इस भौतिक विश्व का कोई आदि नहीं है और इसका अन्त भी नहीं होगा। उत्पत्ति-खण्ड की केवल इसी बात से हमारी सहमति सम्भव हो सकती थी कि यदि सचमुच विश्व की शुरूआत है तो वह शुरूआत करने वाला अवश्य परमात्मा ही होगा। कोई अन्य शक्ति इतनी समर्थ नहीं है।

---

[1] ऋग्वेद दशम मण्डल, सूक्त १९०, के इस मंत्र से तुलना करिए—

सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथा पूर्वमकल्पयत्।
दिवं च पृथिवीं चान्तरिक्षमथो स्वः॥

—परमात्मा ने सूर्य, चन्द्र, द्युलोक, पृथ्वी, अन्तरिक्ष और स्वर्लोक का पूर्व सृष्टि के समान ही निर्माण किया। —अनु०

किन्तु अब अणुशक्ति प्रकाश में आ गई है और हम सब जानते हैं कि द्रव्य को ऊर्जा में और ऊर्जा को द्रव्य में बदला जा सकता है। इस प्रकार अब सृजन का विचार अधिक अच्छा दिखता है। विज्ञान ने अब अनेक चीजों की आयु निर्धारित की है। उनमें से कुछ ये हैं : (१) पृथ्वी की आयु, (२) उल्का-पिण्डों की आयु, (३) पृथ्वी-चन्द्रमा प्रणाली की आयु, (४) सूर्य की आयु, (५) हमारी आकाश गंगा की आयु, (६) विश्व की आयु, (७) विभिन्न तत्वों के विकसित होने, विभक्त होने और उनकी मात्राओं के लिए आवश्यक काल। ये सब आयुएं लगभग आस पास ही बैठती हैं—कोई छह अरब वर्ष के निकट। अनेक ज्योतिषी तो खुल कर सृष्टि के प्रारम्भ के दिन की बात भी करने लगे हैं और वे छह अरब वर्ष पहले का कोई दिन निर्धारित करते हैं। निस्सन्देह चीनी छात्रों को या उनके अध्यापक को यह जानकारी नहीं थी।

उत्पत्ति-खण्ड के प्रथम अध्याय का दूसरा पद, जो श्रेणी में पठन-पाठन के समय हमारे सामने आया, अत्यन्त कठिन था : 'और पृथ्वी का कोई रूप नहीं था, और वह शून्य थी, और गहराई के चेहरे पर अन्धकार था।' [यहां भी इस वेद मंत्र से तुलना करिए—"तम आसीत्तमसा गूढमग्रे अप्रकेतं सलिलं सर्व मा इदम्।"—अनु०] १९१० में नीहारिका सम्बन्धी कल्पना वैज्ञानिकों के चिन्तन पर छाई हुई थी। इस-का कहना था कि सौर मंडल गोलाकार है, जबकि उत्पत्ति-खण्ड उसे आकारहीन बताता था। नीहारिकावाद (नेबुलर थ्योरी) यह मानता था कि सौर मण्डल एक सघन वाष्प था, जबकि उत्पत्ति-खण्ड उसे शून्य, या बहुत ही पतला बताता था। नीहारिकावाद यह कहता था कि सौर-मंडल बहुत गरम है और वह प्रकाश की अमित राशि छोड़ता है, जबकि उत्पत्ति-खण्ड कहता है कि वह अन्धकाराच्छन्न है। १९१० में हम इससे अधिक और कुछ नहीं कह सकते थे कि यह इतना अन्तर क्यों होना चाहिये, यह हम नहीं समझते और सम्भव है कि किसी दिन इस अन्तर का रहस्य खुल जाए।

जितनी हमें आशा थी उससे कहीं जल्दी यह परिवर्तन आ गया। जब सौ इंच वाली दूरबीन काम करने लगी तब डा० ई० पी० हब्बल ने आकाशीय नीहारिकाओं के सम्बन्ध में अध्ययन करना प्रारम्भ किया। हमें निश्चय था कि आकाशीय नीहा-रिकाएं बहुत सघन हैं, अत्यन्त गरम गैसों की गोलाकार पिण्ड हैं, तेजी से घूम रही हैं, और प्रत्येक नीहारिका के बाहरी हिस्से नक्षत्रों का निर्माण करने के लिए एकत्र हो जाएंगे और उनके केन्द्रीय भाग से सूरज का निर्माण होगा। इस प्रकार हमारे सौर-मण्डल जैसे और नये सौर-मण्डल अस्तित्व में आ जाएंगे।

डा० हब्बल ने देखा कि ये आकाशीय नीहारिकाएं हमारी अपनी आकाश-गंगा में गैस के बने पिण्ड बिल्कुल नहीं हैं, किन्तु वह तो तारों का एक भारी जमघट है, वस्तुतः वे हमारी आकाशगंगा की तरह की आकाशगंगाएं हैं और वे आकाश में इतनी दूर हैं कि वे उस दूरी से गरम गैस के गोलाकार पिण्ड सी लगती हैं। डा० हब्बल की इस खोज से नहारिकावाद के मत को भारी धक्का लगा। यह कल्पना

मुख्यतः इन आकाशीय पिण्डों के छाया—चित्रों पर आधारित थी। हम लगभग प्रत्येक नीहारिका के भागों को विभिन्न नक्षत्र बनने के लिए परिणत होते हुए प्रायः देख सकते थे और निश्चय ही उन नीहारिकाओं के केन्द्रीय भागों से हमारे सूरज जैसे सितारों का निर्माण होता।

इसके तुरन्त बाद यह फैसला किया गया कि यदि कोई गरम और घूमता हुआ गोलाकार गैस पिण्ड है, तो वह सम्भवतः सौर-मण्डल का निर्माण नहीं करेगा और लगभग दो बराबर के हिस्सों में विभक्त हो जाएगा। यदि सब नक्षत्रों को इकट्ठा कर दिया जाए तब भी वे सूर्य के एक प्रतिशत द्रव्य-मान (MASS) का दशमांश भी नहीं बनते। हेनरी नौरिस रसेल ने 'दि सोलर सिस्टम एण्ड इट्स ओरिजन' नामक अपनी पुस्तक में नीहारिकावाद के मत के विरुद्ध अन्य अनेक युक्तियां दी हैं। इस प्रकार यह मत समाप्त हो गया। इसके तुरन्त बाद ग्रहाणु-सिद्धान्त (प्लेनेटेसिमल थ्योरी) और ज्वार-भाटीय सिद्धान्त (टाइडल थ्योरी) आये किन्तु इनका भी जीवन लम्बा नहीं रहा।

एक महत्वपूर्ण प्रश्न अब भी बाकी है : उत्पत्ति-खण्ड के प्रथम अध्याय के दूसरे पद में किस बात की चर्चा है? क्या आज सुदूर आकाश में ऐसी कोई चीज है जो आकारहीन हो, विरल हो और अन्धकाराच्छन्न हो, किसी ज्योतिषी के पास इसका कोई उत्तर नहीं है। हम ऐसे किसी ज्योतिष्क पिण्ड को नहीं जानते। आकाश में कुछ काले धब्बे थे, जहां हम यह समझते थे कि वहां कोई तारे नहीं होंगे, इसलिए वह खाली स्थान काला दिखता है। हम समझते थे कि हमें रिक्त बाह्याकाश ही दिख रहा है।

डा० हब्बल ने फिर खोज प्रारम्भ की। उन्होंने इन छिद्रों पर कार्य किया और वास्तविक छायाचित्रों से संसार के सामने यह सिद्ध किया कि वे छिद्र नहीं हैं, बल्कि कृष्णवर्णी नीहारिकाएं हैं। उन्होंने सिद्ध किया कि वे अत्यन्त विरल और बहुत पतली हैं। वे काली जरूर हैं और उनकी वैसी ही विविध आकृतियां हैं जैसे कि ग्रीष्मकालीन आकाश में तैरने वाले बादल होते हैं। समस्या हल हो गई। उत्पत्ति-खण्ड के प्रथम अध्याय का दूसरा पद काली नीहारिका की ओर संकेत करता है।

ज्योतिष के समस्त वर्तमान सिद्धान्त यह मानते हैं कि हमारा सौर-मण्डल 'विसरित नीहारिका' से बना है और अधिकांश विसरित नीहारिकाएँ काली हैं। किसी उज्ज्वल और अनुज्वल नीहारिका में इतना ही अन्तर होता है कि उज्ज्वल नीहारिका में कोई प्रारम्भिक किस्म का तारा निहित होता है जो अपनी निकटता के कारण उसको प्रकाश फेंकने के लिए उत्तेजित कर सकता है।

दूसरा पद अब बहुत महत्वपूर्ण हो उठता है। जब विज्ञान ने प्रथम अनुज्ज्वल नीहारिका की खोज की, उससे भी हजारों साल पहले मूसा यह कैसे जानता था कि कृष्ण-नीहारिका का अस्तित्व है? और वह यह कैसे जानता था कि पृथ्वी उसी नीहारिका से बनी है?

उत्पत्ति-खण्ड के प्रथम अध्याय के अगले कुछ पद नीहारिका से सौर-मण्डल के निर्माण का वर्णन करते हैं। वे सूर्य के निर्माण के लिये एक बड़े भाग के एकत्र होने की रूपरेखा बताते हैं, जो बड़ा भाग सूर्य बन जाने के पश्चात् अपेक्षाकृत छोटे भाग, अर्थात् पृथ्वी, पर चमकता है और उससे दिन और रात उत्पन्न होते हैं। आज हम यह जानते हैं कि पृथ्वी इतनी छोटी है कि वह कभी तारा नहीं रही होगी, क्योंकि वह सूर्य के द्रव्यमान (MASS) का १।३३३,००० वां हिस्सा है। जो सबसे छोटा तारा है वह भी सूर्य के १।१०० वें हिस्से से बड़ा है। फिर भी हम यह जानते हैं कि पृथ्वी गरम हो जाएगी और उसका अधिकांश पानी भाप बन कर उड़ जाएगा और वायु-मण्डल को आर्द्र कर देगा। ज्यों-ज्यों पृथ्वी ठण्डी होती जाएगी त्यों-त्यों वायुमण्डल की अधिकांश नमी पृथ्वी पर गिरती जाएगी और शायद वह उसे पूरी तरह ढक ले। (भूविज्ञान यह मानता है कि अपने प्रारम्भिक काल में पृथ्वी पानी से ढकी हुई थी। बाद में पानी में से जमीन निकल आयी।)[१]

उत्पत्ति-खण्ड का वर्णन निश्चय ही आधुनिक विज्ञान के अनुकूल है। बादलों के फटने का जैसा वर्णन १४ से १८ तक के पदों में किया है, वनस्पतियों के आने के बाद और जलचरों के प्रकट होने से पहिले ठीक भूवैज्ञानिक काल में वैसा ही होता है। पहिले वनस्पति, फिर मछली, फिर पक्षी, फिर स्तन्यपायी जानवर और फिर मनुष्य—पृथ्वी पर जीवन के प्रकट होने का यह क्रम विज्ञान से बिल्कुल मेल खाता है।[२] यदि स्वयं मूसा ने या किसी अन्य सामान्य मनुष्य ने उस प्रारम्भिक युग में शुरू-आत की कथा लिखने का प्रयत्न किया होता तो वह जरूर भूलों से भरी होती। किन्तु अब प्रामाणिक लेख मौजूद है और इस उत्पत्ति सम्बन्धी अध्याय में ऐसा एक भी प्रकरण नहीं है जो हमारे आज के ज्ञान के मुताबिक विज्ञान से मेल न खाता हो। इस अध्याय के विभिन्न भागों के राष्ट्रप्रसिद्ध भाषाविज्ञों द्वारा किये गये अधिक टैक्निकल और विस्तृत अनुवाद मैंने प्राप्त किये हैं और हर हालत में विज्ञान के साथ उस अध्याय की संगति बढ़ती ही गई है।

परमात्मा की सत्ता और पवित्र लेख की विश्वसनीयता के सम्बन्ध में अनेक वैज्ञानिक प्रमाणों में से मैंने केवल एक प्रमाण दिया है। अविश्वासी लोगों ने हर एक युग में उत्पत्ति-खण्ड के प्रथम अध्याय पर हमला किया है किन्तु वह अभी तक ज्यों का त्यों अविकृत और सुरक्षित मौजूद है। मुझे निश्चय है कि भविष्य में भी किन्हीं सदाशयी किन्तु भ्रान्त सिद्धान्तवादियों द्वारा जो हमले किये जायेंगे उनको भी वह साहस के साथ झेल लेगा।

---

१. ऋग्वेद नासदीय सूक्त में वर्णित सृष्टि-रचना प्रसंग में 'सलिलं सर्वमा इदम्' से इसी का संकेत मिलता है।—अनु०

२. भारतीय पुराणों में वर्णित दशावतार की कथा क्या पृथ्वी पर जीवन के प्रकट होने का वैज्ञानिक क्रम ही संकेतित नहीं करती? (दस अवतार ये हैं: मत्स्य, कूर्म, वराह, नृसिंह, वामन, परशुराम, राम, कृष्ण, बुद्ध, और कल्कि)।—अनु०

क्लौड एम० हैथबे

महान् व्यवस्थापक

परामर्शदाता इंजिनीयर

वी० एस-सी०, एम० एस-सी०, कोलोराडो विश्वविद्यालय। कैंसल्टिंग इंजिनीयरिंग प्रयोगशाला में भूतपूर्व प्रोजेक्ट इंजिनीयर। जनरल इलैक्ट्रिक कम्पनी, शैनेक्टैडी, लैग्लेफील्ड की विमान सम्बन्धी राष्ट्रीय परामर्शदाता समिति के लिये "वैद्युतिक मस्तिष्क" का डिजाइन तय्यार करने वाले। हैमिल्टन वाच कंपनी के हैथवे उपकरण विभाग के विकास और गवेषणा के अध्यक्ष। वैद्युतिक और भौतिक नापों तथा नापने के औजारों के विशेषज्ञ।

\+ \+ \+

परमात्मा में विश्वास करने के सम्बन्ध में बुद्धियुक्त प्रमाणों पर टिप्पणी शुरू करने से पहिले मुझे यह कहने दीजिए कि फिलहाल मेरा ईश्वर-विश्वास मेरे जीवन की वर्तमान अवस्था में, बहुत कुछ उस चीज पर निर्भर है जिसे अनुभव कहा जा सकता है। अनुभव पर आधारित विश्वासों की हमें बहुत अधिक अवहेलना नहीं करनी चाहिए, न ही उन्हें बुद्धिविरुद्ध कोटि में रखना चाहिये, क्योंकि वैसा करना वैज्ञानिक विधि की अप्रतिष्ठा होगा। अच्छा हो कि इस प्रकार के विश्वासों को 'तर्क से परे' कहा जाय।

यद्यपि प्रारम्भिक वर्षों में ईश्वर का ज्ञान तर्कों पर, जिनका मैं अभी वर्णन करूंगा, अधिक आधारित था, पर अब यह परमात्मा की आन्तरिक अनुभूति पर अधिक आधारित है। यह अनुभूति ऐसी है जो तर्क-परक युक्तियों को महत्व-शून्य बना देती है। इस प्रकार के प्रमाण यद्यपि उन लोगों को निश्चायक नहीं लगेंगे जिन्होंने उनका अनुभव नहीं किया है। किन्तु जिन्होंने अनुभव किया है उनको वे सर्वथा तर्क-संगत लगेंगे। मैंने यह अनुभव किया है कि परमात्मा का विचार ही मनुष्य की आत्मा की विशिष्ट परिधि में पूरी तरह ठीक बैठ सकता है। औगस्टाइन के शब्दों में : "तूने हमें अपने लिए बनाया है और हमारी आत्माएं तब तक व्याकुल रहती हैं जब तक वे तुझ में विश्राम नहीं पा लेतीं।"

अब प्रकृति से परे परमात्मा में विश्वास के अपने तर्कसंगत आधार के बारे में संक्षेप से कुछ कहना चाहिये। सबसे पहिले मैं उस सरल तथ्य की चर्चा करूंगा, जिससे इन्कार नहीं किया जा सकता और जो सचमुच इस पुस्तक में अनेक बार दोहराया गया होगा, कि अभिकल्प (डिजाइन) के लिए अभिकल्पक (डिजाइनर) की जरूरत है। मेरे इश्वर-विश्वास के लिए यह अत्यन्त आधारभूत बुद्धियुक्त तर्क ऐसा है जिसको मेरे इंजिनीयरिंग सम्बन्धी अनुभव से बहुत सहारा मिला है। जटिल यंत्र-रचना के और इलैक्ट्रोनिक्स चक्रों के डिजाइन में तथा विकास में अनेक वर्षों तक परिश्रम करने के पश्चात् मेरी आदत बन गई है कि जहां भी कहीं कोई डिजाइन मैं पाता हूं, वहीं मेरी रुचि उसकी ओर दौड़ पड़ती है। इस पृष्ठभूमि के साथ, यह चिन्तन से परे की बात है कि हमारे चारों ओर के संसार में जो अकल्पनीय चमत्कारपूर्ण डिजाइन पाये जाते हैं वे किसी अनन्त बुद्धिमान डिजाइनर के सिवाय किसी और की कृति हो सकते हैं। निश्चय ही यह पुरानी युक्ति है, किन्तु यह ऐसी युक्ति है जिसे आधुनिक विज्ञान ने पहिले से कहीं अधिक शक्तिशाली बना दिया है।

एक इंजिनीयर नियमबद्धता का मूल्यांकन करना और उन कठिनाइयों को महसूस करना सीखता है, जो डिजाइन के साथ जुड़ी होती हैं और वह डिजाइन बलों, सामग्रियों और प्रकृति के नियमों को इस प्रकार एकत्रित करता है कि उससे वांछित उद्देश्य की पूर्ति होती है। डिजाइन की समस्याओं से सामना होने पर वह डिजाइन को महत्व देना सीखता है।

कुछ वर्ष पहले मैं इस धन्धे में लगा हुआ था कि मैं गणना करने वाली बिजली की एक मशीन का डिजाइन तैयार करूं जो जल्दी से जल्दी गणना सम्बन्धी कठिन सवालों को भी हेल कर दे। सैंकड़ों खाली ट्यूबों, इलैक्ट्रो मैकेनिकल उपकरणों, और जटिल चक्रों तथा प्यानो के आकार के तीन बड़े खोल में पूरे 'मस्तिष्क' को एकत्र करके यह समस्या हल की गई। लैंग्लेफील्ड में वैमानिक राष्ट्रीय परामर्श समिति द्वारा वह मशीन अब भी इस्तेमाल की जा रही है। इस गणना करने वाली मशीन पर एक या दो वर्ष तक परिश्रम करने के बाद, और उपस्थित होने वाली व डिजाइन सम्बन्धी अनेक समस्याओं का सामना करने और फिर उन्हें हल करने के बाद, मेरे लिये यह सोचना सर्वथा तर्क-विरुद्ध है कि इस प्रकार की मशीन किसी बुद्धिमान् डिजाइनर के माध्यम के बिना बन सकती है।

हमारे चारों ओर का यह संसार क्रम और अभिकल्प का विस्तृत संग्रह है, स्वतंत्र किन्तु अन्तः-सम्बद्ध, जो प्रत्येक सूक्ष्म विवरण की दृष्टि से मेरे 'बिजली के दिमाग' से बहुत अधिक दुरूह है। यदि गणना करने वाली मेरी मशीन को किसी डिजाइनर की आवश्यकता थी तो मेरे मानवीय शरीर की इस जटिल भौतिक-रासायनिक-जैविक मशीन के लिए—जो लगभग अनन्त ब्रह्माण्ड का एक अत्यन्त छोटा सा भाग है—डिजाइनर की कितनी अधिक आवश्यकता होगी ?

डिजाइन, क्रम, व्यवस्था, इसे जो मन चाहे सो कह लो। यह केवल दो कारणों का परिणाम हो सकता है : अकस्मात् का या डिजाइन का। क्रम जितना जटिल होगा, आकस्मिकता की उतनी ही कम सम्भावना होगी। हम क्योंकि लगभग अनन्त डिजाइनों के बीच में पड़े हुऐ हैं, इसलिये मैं परमात्मा में विश्वास किये बिना नहीं रह सकता।

मैं जो दूसरी बात कहना चाहता हूं वह यह है कि विश्व का डिजाइन बनाने वाला प्रकृति से परे की वस्तु होना चाहिए। मेरा विश्वास है कि परमात्मा प्रकृति से ऊपर है क्योंकि मेरे तत्त्व-चिन्तन में प्रकृति से परे की वस्तु निहित है, और क्योंकि एक भौतिकीवद् के नाते मैं प्रकृति से परे के प्रयम कारण की जरूरत को समझता हूं। मेरे दर्शन में प्रकृति से परे का तत्व इसलिये निहित है क्योंकि 'प्रकृति से परे' की परिभाषा ही यह है कि उसे प्राकृतिक इंद्रियों के द्वारा प्रदर्शित नहीं किया जा सकता। और क्योंकि विज्ञान उसे प्रदर्शित नहीं कर सकता इसलिये उसकी सत्ता से इन्कार कर दिया जाय, यह तो प्राक्मान्यता दोष होगा। इसके अलावा, आधुनिक भौतिक विज्ञान मुझे यह बताता है कि प्रकृति स्वयं अपने आप को क्रम में लाने में असमर्थ है।

सर आइजक न्यूटन ने पहचाना था कि विश्व व्यवस्था से अव्यवस्था की ओर चलता जा रहा है, कि यह एक समान तापमान की ओर पहुंचता जा रहा है, और इससे उसने किसी मूल व्यवस्था या डिजाइन की जरूरत अनुभव की थी। ताप के अध्ययन से यह विचार और स्पष्ट हो गया क्योंकि ताप ने उपलब्ध ऊर्जा और अनुपलब्ध ऊर्जा (एण्ट्रोपी) के बीच में भेद प्रकट कर दिया। यह पाया गया कि यदि किसी रूपान्तरण में ताप शामिल हो तो ऊर्जा की निश्चित राशि उपलब्ध से अनुपलब्ध अवस्था में परिवर्तित हो जाती है, किन्तु प्रकृति में यह परिवर्तन विरोधी दिशा में कभी नहीं होता। थर्मोडायनेमिक्स का यह दूसरा सिद्धान्त है।

इस विषय में बोल्टजमान ने रुचि दिखाई और उसने अपनी तीव्र अन्तर्दृष्टि और गणित-सम्बन्धी महान् योग्यता प्रदर्शित करते हुए बताया कि दूसरे सिद्धांत के द्वारा अभिव्यक्त उपलब्ध ऊर्जा की क्षति केवल एक खास हालत है जब कि अधिक आम सिद्धान्त यह बताता है कि प्रत्येक भौतिक रूपान्तरण में व्यवस्था बिगड़ जाती है। ताप के सम्बन्ध में उपलब्ध से अनुपलब्ध अवस्था में ऊर्जा का परिवर्तन वस्तुतः आणविक क्रम की क्षति, डिजाइन का विघटन है। सरल शब्दों में कहें तो बोल्टजमान के थर्मोडायनेमिक्स के दूसरे सिद्धान्त का अर्थ यह है कि प्रकृति स्वयं अपना डिजाइन नहीं बना सकती, क्योंकि प्रत्येक भौतिक रूपान्तरण के साथ डिजाइन की क्षति अवश्य होगी।

यह विश्व क्रम की एक विशाल 'संहति' है। इसलिये ऐसे महान् मूलकारण की आवश्यकता है जिस पर दूसरा नियम लागू न होता हो, अर्थात् जो प्रकृति से परे हो।

——

मर्लिन ग्राण्ट स्मिथ

विद्वानों की साक्षियां

गणितज्ञ और ज्योतिर्विद्

एम० ए०, पी-एच० डी०, इलिनोय विश्वविद्यालय। नौर्थ-वेस्टर्न विश्वविद्यालय में भूतपूर्व प्राध्यापक। ग्रीनविल कालेज में गणित और ज्योतिष के प्राध्यापक। स्प्रिंग आर्बर जूनियर कालेज के अध्यक्ष। १९३३ से रावर्ट्स वेसलेयन कालेज के अध्यक्ष। और गणित, भौतिकी तथा ज्योतिष के प्राध्यापक। ग्रीनविल कालेज से आनरेरी एल० एल० डी०। सीटल पैसिफिक कालेज से डी० एस-सी०। अवकल समीकरण (डिफरेंशल इक्वेशन) और एक विमिति (डाइमेंशन) की सीमा-समस्याओं के विशेषज्ञ।

× × ×

ईश्वर के अस्तित्व के प्रश्न का उत्तर इस बात से घनिष्ट रूप से सम्बद्ध है कि मनुष्य अपने साथी मनुष्यों और ईश्वर के साथ अपना क्या उत्तरदायित्व समझता है। इसलिए इस प्रश्न का उत्तर देते हुए अत्यन्त सावधानी की जरूरत है। यदि कोई ईश्वर है, तो वह केवल हमारा स्रष्टा ही नहीं है, किन्तु हमारा नियन्ता प्रभु भी है, इसलिए हमें यह जानना चाहिए कि वह स्वयं अपने प्रति तथा अन्य साथी मानवों के प्रति हमसे कैसे व्यवहार की कामना करता है।

यह महत्वपूर्ण बात है कि अपेक्षाकृत आधुनिक समय के महानतम विद्वानों में से अनेक ने अप्रत्यक्ष रूप से ईश्वर की सत्ता को स्वीकार किया है। मैं उनमें से कुछ के उद्धरण दूंगा।

सर जेम्स जीन्स ने कहा है : "हमारा विश्व किसी बड़ी मशीन के बजाय एक महान् विचार से अधिक मिलता जुलता है। किसी वैज्ञानिक तथ्य के रूप में नहीं, किन्तु एक अनुमान के तौर पर मैं यह कहूंगा कि विश्व किसी महान् विश्व-चेतना की कृति है जो हम सब की चेतना में निहित है और सबकी चेतनाओं में समन्वय स्थापित करती है।.....वैज्ञानिक चिन्तन भी इसी दिशा में गति करता प्रतीत होता है।"

इमेन्युअल काण्ट ने लिखा : "मैं ज्यों ज्यों अधिक देर तक और अधिक गम्भीरता से विचार करता हूं त्यों त्यों दो चीजों के प्रति मेरा प्रशंसा-भाव और संभ्रम बढ़ता जाता है—अपने बाहर यह तारों भरा आस्मान और अपने अन्दर नैतिक नियम की विद्यमानता।"

नोबल पुरस्कार विजेता डा० अलेक्सिस कारेल का कहना है : "अपनी विस्मयकारी विशालता के बावजूद, द्रव्य-जगत् मनुष्य के लिए बहुत ही छोटा है। मनुष्य की आर्थिक और सामाजिक परिस्थितियों की तरह इसकी मनुष्य के साथ संगति नहीं बैठती। गणितात्मक व्यवकलनों की सहायता से उसका मन इलेक्ट्रोनों और तारों का बोध ग्रहण करता है। पार्थिब पर्वतों, समुद्रों और नदियों के से पैमाने पर उसका निर्माण हुआ है। किन्तु उस का सम्बन्ध है दूसरी दुनियां से, एक ऐसी दुनिया से जो यद्यपि उसके अन्दर बन्द है, फिर भी देश और काल की सीमाओं के परे तक फैली हुई है।"

विद्वान् प्राणिशास्त्री जार्ज रोमेन्स ने कहा है कि जीव-जगत् में हरेक जाति अपने अन्दर विद्यमान जीवन की किस्म के कारण अपने परिवेश में भिन्न प्रकार से प्रतिक्रिया करती है। मनुष्यों और स्त्रियों के व्यवहार के प्रकार को देखने के परिणामस्वरूप उसने यह निष्कर्ष निकाला है कि उनमें भिन्न प्रकार का जीवन है। मानव जीवन में यह चमत्कार केवल परमात्मा ही कर सकता है।

और अन्त में, अमेरिका के महान् दार्शनिक और मनोविज्ञानवेत्ता विलियम जेम्स ने इस बात को यों कहा है : "हम और परमात्मा दोनों का दोनों से वास्ता है और दोनों का ही कारोबार दोनों से चलता है—और इस कारोबार में मनुष्य की उच्चतम नियति पूरी हो चुकी है।"

यह कहना सर्वसाधारण बात है कि जहां कहीं कार्य होगा वहां कारण भी अवश्य होगा। वैज्ञानिक-गण कारणों की, और उन कारणों के पीछे मूल कारण की, लगातार खोज करते रहते हैं। कुछ हालतों में कारण तुरन्त मिल जाते हैं, जबकि अन्य उदाहरणों में दृश्यमान कारणों के निराकरण और वास्तविक कारण के विनिश्चय के लिए विद्वत्तापूर्वक कष्टसाध्य अनुसंधान की आवश्यकता पड़ेगी। बाद के उदाहरण का चिकित्साशास्त्र में व्यापक रूप से प्रयोग हुआ है। आन्त्रज्वर या टाइफायड का लगभग पूरी तरह उन्मूलन हो चुका है। श्वास-प्रश्वास की छूत से होने वाले रोगों के निराकरण में भी भारी प्रगति की गई है। गत चौथाई शताब्दी में लोगों की औसत आयु काफी बढ़ी है। पौधों और प्राणियों के क्रिया-व्यापार में सुधार करने के लिए जीवविज्ञान के क्षेत्र में अन्य अध्ययन जारी है। नए नियमों और उनके प्रयोगों की खोज से रसायनशास्त्र में अभूतपूर्व उपलब्धियां हुई हैं। इधर कार्यक्षम प्रसुप्त ऊर्जा के क्षेत्र में परमाणु कणों ने इतनी महत्ता प्राप्त कर ली है जितनी का कभी स्वप्न

भी नहीं था। ज्योतिष सम्बन्धी खोजों ने नए गणितात्मक उपकरणों और नई आणविक जानकारी की सहायता से यह सम्भव कर दिया है कि हम भौतिक विश्व की विशालता पर, और जिन अनन्त क्रियाओं और प्रतिक्रियाओं का निरीक्षण किया जा रहा है उन पर, अपना ध्यान केन्द्रित कर सकें।

दिखने वाले कामों के पीछे और उनकी तह में विद्यमान कारणों की लगातार वैज्ञानिक खोज के कारण ही यह सब सम्भव हुआ है। कारण और कार्य को एक दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता। कार्य और कारण आन्तरिक रूप से एक ही हैं। मानव प्राणी के रूप में हम और हमारे चारों ओर की दुनिया कार्यों का एक समुच्चय ही है, और उस कार्य-समूह के पीछे तथा उसकी तह में एक ऐसा अदृश्य, मूल आदि कारण है, जिसे मैं ईश्वर कहता हूं।

इस कार्य-कारण के 'नियम' के अलावा, हम अन्य नियमों की भी चर्चा करते हैं। सारी प्रकृति ही निर्धारित नियमों के अनुसार कार्य करती है। नए नियमों की लगातार खोज हो रही है। उप-आणविक नियम हैं, और ऐसे नियम हैं जो आकाश गंगा के बाहर के आकाशीय पिण्डों की परस्पर-निर्भरता को नियन्त्रित करते हैं। उनकी खोज के लिए अनेक कृतविद्य लोगों के सम्मिलित प्रयत्नों की जरूरत पड़ी है। किन्तु हम उन नियमों को केवल खोज भर रहे हैं—उनके ऊपर से केवल आवरण ही हटा रहे हैं। वे नियम स्वयं उतने ही पुराने हैं जितना यह विश्व। क्या यह सिद्धान्त हम स्वीकार करेंगे कि उन नियमों का मूल द्रव्य ही है? उन नियमों की जितनी विशाल संख्या है, उनमें परस्पर जैसा तालमेल है, और जैसा उनका स्वभाव है, उसके कारण यह असम्भव है कि वे जड़ द्रव्य से ही निकले हों। उन नियमों का मूल, जिस विश्व में वे काम करते हैं उससे, कहीं अधिक ऊंचा है। मेरी साधारण बुद्धि के अनुसार इसका एक ही ग्राह्य उत्तर हो सकता है कि इन नियमों का तकाजा है कि कोई नियमप्रदाता होना चाहिए—और मैं जिसे पुनः परमात्मा कहता हूं।

और मेरी दृष्टि में यह परमात्मा कोई अवर्णनीय, वाष्पीय या हवाई सत्ता नहीं, न ही अनेक युगों और अनेक स्थानों के अत्युत्साही मनों से निकला कोई खयाली पुलाव है, बल्कि वह धर्मशास्त्र का ऐसा परमात्मा है जिसका सन्तों और पैगम्बरों ने वर्णन किया है। बाइबिल में कहा गया है कि मनुष्य परमात्मा की अनुकृति पर बनाया गया है। मनुष्य क्योंकि परमात्मा की अनुकृति है, इसलिए इस योग्य है कि वह परमात्मा के विश्व और विश्वपालक रूप को पहचान सके। परमात्मा मनुष्य को ज्ञान दे सकता है और मनुष्य अपनी प्रार्थना उस तक पहुंचा सकता है। और परमात्मा ने मनुष्य को सबसे पहला ज्ञान यह दिया है कि उसी ने हम मानवों को और हमारे चारों ओर के इस अद्भुत, असीम, विश्व को बनाया है।

इनके अतिरिक्त, हरेक युग के साक्षर या निरक्षर—जिनमें वैज्ञानिक भी शामिल हैं—उन लाखों लोगों की यह साक्षी है कि हमने अपनी आत्मा में ईश्वर की

सत्ता का अनुभव किया है। उस साक्षी का हम क्या करें ? क्या उसे परे फेंक दें ? उसकी उपेक्षा कर दें ? लाखों लोगों ने 'जिस अवर्णनीय और गौरवपूर्ण आनन्द' का अनुभव किया है, क्या उसे हम आंखों से ओझल कर दें ? हुतात्माओं मिशनरियों के उस विश्वास पर, जिसने उन्हें तनहाई, सख्तियों, कैद और मृत्यु तक का साहस से सामना करने की शक्ति दी, क्या हम दांत किटकिटाएं, निर्लज्ज होकर उनका उपहास करें, और अपने आप से कहें कि वह सब एक गलती थी ?

जहां तक मेरा सम्बन्ध है, मेरा विश्वास है कि 'परमात्मा है (उसकी सत्ता है) और जो परिश्रमपूर्वक उसको खोजते हैं उन्हें वह पुरस्कृत करता है।'

धर्मग्रन्थ के चार प्रथम शब्द ये हैं : "शुरू में परमात्मा था।"[1] अपने निजी जीवन-दर्शन की बुनियाद के रूप में मैं भी इन चारों शब्दों को प्रस्तावना के शब्द मानता हूं।

---

१. वेद के इस मंत्र-खंड से तुलना करिए—
"हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे०"—
स्वर्ण-सदृश चमकीले ग्रह-नक्षत्रों को अपने उदर में धारण करने वाला ईश्वर स्वयं सृष्टि की रचना से पहले विद्यमान था।

एड्विन फास्ट

'प्राकृतिक नियमों' की एक झांकी

भौतिकीविद

फ्रेंड्स विश्वविद्यालय से विज्ञान-स्नातक। ओकलाहामा विश्वविद्यालय से एम० एस-सी०, और पी-एच० डी०। ओकलाहामा विश्वविद्यालय के भौतिक विभाग में कार्य। १९४५ से फिलिप्स पेट्रोलियम कम्पनी के साथ। अणुशक्ति कार्य में लगे निम्न शक्ति के टैस्ट रिएक्टरों के अध्यक्ष। स्पैक्ट्रोसकोपी, रेडियो ऐक्टिव ट्रेस वर्क और अणु शक्ति के विशेषज्ञ।

× × ×

इस पुस्तक में सबसे महत्वपूर्ण जिस प्रश्न की चर्चा की गई है, इस लेखक की सम्मति में उस पर लम्बी बहस की जरूरत नहीं है। उत्तर संक्षिप्त हो सकता है, और साथ ही, लेखक की राय में, पर्याप्त भी।

भौतिकी के क्षेत्र में किसी घटना का अत्यन्त सही के लगभग स्पष्टीकरण सामान्यतया ऐसा सरलतम स्पष्टीकरण समझा जाता है जो परीक्षणात्मक पर्यवेक्षणों के लिए पर्याप्त हो। कुछ अनुमानों को इसलिए स्वीकार किया जा सकता है क्योंकि उनसे थ्योरी के विकास में सहायता मिलती है और क्योंकि वे स्पष्ट या युक्तियुक्त प्रतीत होते हैं। उन्हें आधारशिला मान कर ढांचा खड़ा किया जाता है। यदि वे अपर्याप्त हों या गलत हों, तो सारा ढांचा गिर पड़ता है।

सम्भाव्यता का सिद्धान्त गणित की दृष्टि से काफी विकसित हो चुका है और भौतिकी में उसका काफी प्रयोग होता है। यदि परीक्षण में कोई बाहरी प्रभाव काम न करें, तो बहुत बार सिक्के को झटके से उछालने पर यह पता लगेगा कि जितनी बार सिक्के का सीधा सिरा ऊपर आता है, प्रायः उतनी ही बार सिक्के का उल्टा सिरा ऊपर आता है। जब कोई डाई फेंकी जाती है तो वह इस तरह गिरती है कि उसके छहों सिरों में से हरेक लगभग उतनी ही बार ऊपर आता है। यदि किसी खास स्थिति से और अंगूठे को खास स्थिति में रखकर हम सिक्के को उछालने का अभ्यास करें तो हम उसके उस सिरे को सदा ऊपर ला सकते हैं जिसे हम ऊपर

लाना चाहते हैं। इसी प्रकार डाई को भी यदि खास अन्दाज से फेंका जाए और उसका खास वजन रखा जाए तो उसका एक ही सिरा बारम्बार ऊपर आ सकता है। इन दोनों हालतों में अन्तर यह है कि प्रथम उदाहरण बिना किसी पक्षपात के अकस्मात् का उदाहरण है, जबकि दूसरे के पीछे क्रिया का संचालन करने वाली कोई बुद्धि है जो परिणाम पर प्रभाव डालती है।

इन अकृत्रिम और सरल उदाहरणों से ऐसे उदाहरण तैयार किये जा सकते हैं जिनमें जटिलता बढ़ जाती है। व्यवहार के किसी नमूने की स्थापना के लिए दस, सौ, या दस लाख इकाइयां एक साथ काम कर सकती हैं। जब पूर्णतः यादृच्छिक परिणाम से कोई थोड़ा सा भी भिन्न परिणाम दृष्टिगोचर होता है तो हरेक यह सोचने को बाधित होता है कि इसके पीछे अवश्य कोई संचालक असर है। इस प्रकार के 'संचालित' व्यवहार को ही सामान्यतया 'प्राकृतिक नियम' (नेचुरल लॉ) कहा जाता है। उदाहरण के लिए, यदि कोई किसी वैद्युतिक या चुम्बकीय क्षेत्र में न्यूट्रोन, इलेक्ट्रोन और प्रोटोन के व्यवहार पर विचार करता है तो वह यह पाता है कि हरेक के व्यवहार का पर्याप्त रूप से वर्णन किया जा सकता है और 'प्राकृतिक नियमों' के आधार पर उनके व्यवहार की भविष्य वाणी की जा सकती है। उनकी विशेषता ही यह है कि वे ऐसे ढंग के काम करते हैं जिनकी भविष्यवाणी की जा सकती है। या यदि सोडियम इलेक्ट्रिक आर्क से निकलती हुई रोशनी किसी त्रिकोण प्रिज्म में से और संकीर्ण झिरी में से गुजारी जाए, तो यों पास पास रखी नारंगी-पीले रंग की रेखाएं प्रकट होंगी। प्रकाश के रूप में मुक्त ऊर्जा परमाणु में किसी इलेक्ट्रोन के उच्चतर से निम्नतर ऊर्जा स्थिति में संक्रमण से आती है। गणित के फार्मूलों में इस बात को संक्षेप से बताया जा सकता है।

और अब यहां खास बात आती है,—प्रश्न की जड़ के रूप में विद्यमान ये 'प्राकृतिक नियम' जो भी कुछ देखा गया है उसका केवल वर्णनमात्र हैं, कोई बुद्धियुक्त, नियामक कानून नहीं हैं।

विश्व के मूल की खोज करते हुए विज्ञान ने यह बताया है कि कैसे, आणविक भौतिकी के वर्तमान ज्ञान के आधार पर, बुनियादी कणों की अन्तःक्रियाएं समस्त ज्ञात तत्वों के ढांचे की व्याख्या कर सकती हैं। प्रोटोन और उसके गुणों से, तथा अवयवों को एकत्र करने वाली किसी शक्ति से, शुरू करके वर्तमान विश्व के समस्त ज्ञात तत्वों का निर्माण किया जा सकता है। अलबत्ता इस बात की व्याख्या नहीं की जा सकती कि प्रोटोन का उद्गम कैसे हुआ और उसमें ये विशेष गुण कहां से आए ?

काफी दूर तक पीछे लौटने पर मनुष्य अन्त में इस परिणाम पर पहुंचेगा कि कि 'प्राकृतिक नियमों' की विद्यमानता, जो विश्व में क्रमबद्धता का वर्णन करती है, किसी ऐसे बुद्धिमान् की सूचक है जिसने विश्व के कार्यकलाप को उस ढंग से स्थापित करने का निर्णय किया, जैसा कि हम देखते हैं। जब एक बार इलेक्ट्रोन, प्रोटोन और न्यूट्रोन की रचना हो गई और उनकी विशिष्टताएं भी उनके अन्दर आ गई, तब उनके व्यवहार का ढंग भी स्थापित हो गया।

काल की दृष्टि से पीछे की ओर चलते हुऐ हमारे सीमित दिमागों की मांग यह है कि एक शुरूआत होनी चाहिए—कोई ऐसा समय होना चाहिए जब द्रव्य का निर्माण करने वाले अवयवों की प्रथम रचना हुई। इन भौतिक इकाइयों के निर्माण के साथ ही वे गुण भी उनमें आने चाहिएं जिनसे उनके व्यवहार का निर्णय होता है। जिस कारण ने उन अवयवों को पैदा किया उसी ने उन गुणों को भी पैदा किया जो उन अवयवों में आने थे। अत्यन्त जटिल पर्यवेक्षणों द्वारा यदि प्रतिभाशाली से भी प्रतिभाशाली वैज्ञानिक मस्तिष्कों ने सदियों तक अध्ययन करने के पश्चात् इन विभिन्न अवयवों के व्यवहार और उनकी सत्ता को पहचाना है, तो उससे सीधा परिणाम यह निकलता है कि जिस एक की बुद्धि ने इन सबकी पहले पहल रचना की, वह आजतक की मानवीय बुद्धि के एकत्रित मूल्य से भी कहीं अधिक मूल्यवान् और उन सबसे कहीं अधिक बड़ी है।

आज के अत्यन्त ग्रहणशील मस्तिष्क भी यह बात तुरन्त स्वीकार करेंगे कि प्रकृति-प्रपंच के सम्बन्ध में जितना कुछ जानने को है, उसका श्रीगणेश ही अब तक मुश्किल से हो पाया है।

जब हम जैव क्षेत्र में आते हैं, तो व्यवहार की जटिलता खूब बढ़ जाती है, और इसलिए केवल अकस्मात् के आधार पर उस प्रकार के व्यवहार को तर्क-संगत सिद्ध करने की सम्भावना बहुत ही कम हो जाती है। जैव या कार्बनिक द्रव्य के प्रासाद को बनाने वाली बड़ी ईंटें हैं हाइड्रोजन, ऑक्सीजन, और कार्बन, कुछ थोड़ी मात्रा में नाइट्रोजन तथा अन्य तत्व। जीवन का कीई सादा रूप बनाने के लिए भी इन परमाणुओं को लाखों की संख्या में एकत्र होना पड़ता है। और जब कोई इनसे बड़ी और अधिक जटिल जातियों के बारे में सोचता है तब केवल अकस्मात् के आधार पर उन लाखों परमाणुओं के एकत्र जमा हो जाने की सम्भावना अकल्पनीय हो उठती है।

जब हम जीवन के उच्चतर रूपों पर आते हैं तब हम देखते हैं कि किसी कार्य-विधि को पूरा करने में या उसकी योजना बनाने में वे ऐसी बुद्धि का प्रदर्शन करते हैं जो 'प्राकृतिक नियमों' के विपरीत भी हो सकती है। तत्वों के एक स्थान पर एकत्र हो जाने से अकस्मात् ही ऐसा हो गया, या इस प्रकार के प्राणियों का निर्माण और योजना किसी सृजनशील कर्ता के बिना ही हो गयी और उनमें तर्क, बुद्धि और अपने वंश को बढ़ाने के लिए प्रजनन क्रिया आदि बातों का स्वयं समावेश हो गया—यह सर्वथा असम्भव है। उस एक शक्ति को मानने से इनकार करके उक्त कल्पना को प्रश्रय देने से कभी किसी क्रियात्मक प्रयोजन का सिद्ध होना असम्भव है। उत्पत्ति-खण्ड के लेखक ने इसीलिए असंदिग्ध शब्दों में लिखा है : 'आदि में परमात्मा.....।'

कैसे सरल शब्द हैं !

परन्तु इन शब्दों की सरलता में भी कितनी महानता छिपी है, नित्य सत्य दिव्य शक्ति में लेखक के विश्वास के अनुरूप महानता।

—o—

जान एडोल्फ ब्यूलर

रासायनिक नियम और ईश्वर

रसायनविद्

पेन्सिलवानिया विश्वविद्यालय से बी० ए० आनर्स। इण्डियाना विश्वविद्यालय से एम० ए० और पी-एच० डी०। ऐण्डर्सन कालेज में रसायन के प्राध्यापक। ऐण्डर्सन नगर और निजी औद्योगिक निगमों के रसायन-सम्बन्धी परामर्श-दाता। इण्डियाना विज्ञान अकादमी में टैकनीकल विषयों के व्याख्याता। ऐमिनो-एसिड के संलेषण, विशिष्ट धातुओ के मात्रा-निर्धारण के लिए कार्बनिक अणुओं के प्रयोग, और कोबाल्ट की खोज के विशेषज्ञ।

× × ×

रासायनिक नियमों का ईश्वर के साथ सम्बन्ध कैसे है, यह समझने के लिए, मनुष्य के मानसिक क्षितिज की अत्यन्त सीमितता को समझने के लिए, और यह स्वीकार करने के लिए कि आधुनिक युग के अत्यन्त प्रतिभाशाली विद्वानों के लिए भी विनम्रता ही उचित है, मैं अपने पाठकों से यह निवेदन करूंगा कि वे रासायनिक विज्ञान के संक्षिप्त ऐतिहासिक सर्वेक्षण की अनुमति दें। क्योंकि वही मेरा विशेष क्षेत्र है। मैं तकनीकी परिभाषाओं में उलझे बिना उसका सरल भाषा में वर्णन करने का प्रयत्न करूंगा।

सभ्यता के उषाकाल से मनुष्य लगातार अपने चारों ओर की दुनिया में होने वाले परिवर्तनों को समझने का प्रयत्न करता आया है। शुरू-शुरू में द्रव्य के सम्बन्ध में उसकी समझ अस्पष्ट और अपूर्ण थी। ईसा से चार सौ वर्ष पहले, डेमोक्रिटस नाम का पहला व्यक्ति था जिसने यह अनुमान लगाया कि हरेक वस्तु छोटे-छोटे कणों से बनी है और उन कणों का अपना अस्तित्व है। द्रव्य के स्वभाव के सम्बन्ध में उस समय जो विचार प्रचलित था, उक्त अनुमान उससे भिन्न था और एक साहसपूर्ण कदम का द्योतक था। इससे देखने का काम करने वाली चक्षु-इन्द्रिय का खण्डन होता

था। चक्षु-इन्द्रिय की प्रामाणिकता की अवहेलना होती थी। इसलिए उस समय चारों ओर फैले रहस्यवाद के अन्तर्गत ही इस अनुमान को भी समझ लिया गया।

दो हजार वर्ष तक अपने रहस्यवाद और जादूगरी के साथ कीमियागिरी द्रव्य का अर्थ समझाने का प्रयत्न करती रही। किन्तु सत्रहवीं शताब्दी के मध्य में राबर्ट बोयल ने डिमोक्रिटस के अनुमान को स्वीकार किया और उसने उस सरल पदार्थ को, जिसको प्रयोगशाला की विधियों से और अधिक छोटे पदार्थों में विभक्त नहीं किया जा सकता, 'ऐलिमेंट' या तत्व की संज्ञा दी। अरस्तू ने पृथ्वी, अग्नि, वायु और जल के जिन चार तत्वों का वर्णन किया था, यह उससे भिन्न बात थी।[1] १७७४ में जान प्रीस्ट ली ने आक्सीजन का और सन् १७७६ में लार्ड हैनरी कैवेन्डिश ने हाइड्रोजन का आविष्कार किया। कुछ समय के बाद एण्टोइन लैवोइज़ियर ने यह पता लगाया कि हवा आक्सीजन और नाइट्रोजन के मेल से बनी है। उसने यह भी दलील दी कि जल कोई तत्व नहीं हो सकता, क्योंकि हाइड्रोजन को हवा में जलाने से पानी बन सकता है।

वस्तुतः रासायनिक विज्ञान प्रगति कर रहा था। सन् १७९९ में एक फ्रांसीसी रसायनविद् जोसेफ प्राउस्ट ने कहा कि खाने के काम आने वाले नमक की तरह रासायनिक पदार्थ हमेशा वही होंगे फिर चाहे वे कहीं से भी प्राप्त किए जाएं। किंतु बर्थोलेट का कहना था कि पृथ्वी पर के विभिन्न स्थानों से प्राप्त किया गया नमक एक जैसा न होकर अलग-अलग किस्मों का होगा। आठ वर्षों तक परीक्षण करने के पश्चात् प्राउस्ट की बात ठीक मानी गई। इस प्रकार यह सिद्ध हुआ कि यौगिकों की रचना अपरिवर्तनीय है।

सन् १८०८ में जान डाल्टन ने, जो एक क्वेकर स्कूल अध्यापक था, अपने समय तक प्राप्त रसायन सम्बन्धी ज्ञान को संगृहीत करने का और तत्वों और यौगिकों के सातत्य की व्याख्या करने का प्रयत्न किया। उसने द्रव्य के आणविक सिद्धान्त की कल्पना की। वह तत्वों को सूक्ष्म कणों के रूप में देखता था और उन्हें परमाणु कहता था। किसी एक तत्व के परमाणु वही के वही रहेंगे। भिन्न तत्वों के परमाणु भिन्न होंगे। उसने यह भी सोचा कि परमाणु नष्ट नहीं किया जा सकता। उसने कहा कि तत्वों का भौतिक और रासायनिक व्यवहार परमाणुओं के गुणों और भार में अन्तर की वजह से होता है। उसने यौगिकों की अपरिवर्तनीय रचना की इस आधार पर व्याख्या की कि तत्व किसी एक यौगिक का निर्माण करने के लिए ठीक निश्चित संख्या के अनुपात में मिलते हैं। इस प्रकार स्पष्ट हो गया कि रासायनिक जगत भी नियमों का, जैसे कि 'सम्मात्रा की अविनाशिता का नियम' (ला आफ दि

---

१. भारतीय दर्शनशास्त्रों में पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि और आकाश—इन पांच तत्त्वों की चर्चा है और इनको पञ्चभूत कहा गया है।—अनु०

कन्जर्वेशन आफ मास), सतत रचना का नियम (ला आफ दि कान्सटैंट कम्पोजीशन), और ऊर्जा अविनाशिता का नियम (ला आफ दि कन्जर्वेशन आफ एनर्जी)—पालन करता है।

अपने साहसिक अभियानों में वैज्ञानिकों को इस प्रकार की खोज से सहायता मिलती गई और धीरे-धीरे रसायन-विज्ञान ऐसी स्थिति में पहुंच गया जहां ठीक-ठीक नाप-तोल आवश्यक हो उठे। जब एक बार सड़क खोल दी गई और दिशा की ओर संकेत कर दिया गया तब वास्तविक प्रगति प्रारम्भ हुई। जब यह तथ्य स्वीकार कर लिया गया कि द्रव्य में नियम और व्यवस्था काम करते हैं तब द्रव्य का अध्ययन विज्ञान का एक अंग बन गया। आगे लगभग आधी सदी तक रसायन विज्ञान बहुत कुछ न्यूटन के विचारों की दिशा में ही आगे बढ़ता रहा। डाल्टन के समय में जो तत्व केवल बीस की संख्या में थे वे सन् १९०० तक नब्बे की संख्या तक पहुंच गए—जो रसायन-विज्ञान की अभूतपूर्व प्रगति की निशानी है।

डाल्टन ने हमको यह विचार दिया था कि परमाणु द्रव्य का ऐसा अवयव है जो न्यूटन द्वारा वर्णित नियमों का पालन करता है। उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध में अनेक परीक्षणों के बाद डाल्टन द्वारा कल्पित सरल परमाणु के बजाय कहीं अधिक जटिल परमाणु का पता लगा। १८५३ में मैसन ने एक वायु-शून्य नलिका में से विद्युत् की धारा गुजारी, जीस्लर ने इसी का अनुगमन करते हुए अधिक सबल धारा का प्रयोग किया और अन्य कई प्रकार की गैसों पर परीक्षण किए। १८७८ में हम क्रुक्स के परीक्षणों तक पहुंचते हैं। क्रुक्स ने अपनी नलिका में और अधिक वायु-शून्यता पैदा की और जब उसमें से बिजली की धारा गुजारी गई तब उसे एक विचित्र चमक दिखाई दी। जे० जे० थामसन ने बताया कि ये किरणें रहस्यपूर्ण रूप से तेज गति से चलती हैं और लगभग बिल्कुल भार रहित हैं। ये किरणें कैथोड (ऋणाग्र) किरणें कहलाईं और जिस नलिका में ये पैदा हुईं वे कैथोड-किरण-नलिकाएं कहलाईं। बाद में इन्हीं किरणों को इलैक्ट्रोनों की धारा के रूप में जाना गया।

उसके बाद बेकेरल और क्यूरी-दम्पति ने रेडियो ऐक्टिविटी की खोज की। इस खोज ने अणुओं से भी अधिक सूक्ष्म अवयवों की एक सर्वथा नई दुनियां खोल दी। अब अणु ही द्रव्य का आभ्यन्तरिक क्रोड नहीं रहा। बल्कि वह एक छोटा-सा सौर-मण्डल बन गया, जिसका मुख्य पिंड क्रोड या केन्द्र में है, जहां समस्त धनात्मक प्रोटोन एकत्रित हैं, और इसी घनीभूत पिंड के चारों ओर ऋणात्मक इलैक्ट्रोन, जो कि ऊर्जा की इकाइयां हैं, अपने निश्चित नमूनों में चक्कर लगा रहे हैं। परमाणुओं के रासायनिक और भौतिक गुणों का सम्बन्ध न्यूक्लिअस (केन्द्र या नली) पर आवेशों में और न्यूक्लिअस के चारों ओर इलैक्ट्रोनों की व्यवस्था में अन्तर से जुड़ गया। शुरू में उप-आणविक अवयवों में न्यूटन के विचारों को लागू करने का प्रयत्न किया गया, किन्तु शीघ्र ही यह बात साफ हो गई कि स्थूल स्तर पर गतिशील अवयवों के व्य-

वहार को शासित करने वाले नियम उप-आणविक स्तर पर प्रयुक्त किए जाएं तो खरे नहीं उतरते। इस प्रकार क्वान्टम मैकेनिक्स या सम्भावनाओं के कलन (कैलकुलस आफ प्रोबैबिलिटीज़) का एक नया सिद्धान्त निकाला गया जिससे प्रोपेन, इलैक्ट्रोन और अन्य उप-आणविक अवयवों के व्यवहार की गणितात्मक ढंग से व्याख्या की जा सके।

सन् १९२७ में हीज़न बर्ग ने, उप-आणविक क्रियाओं में न्यूटन के नियम काम क्यों नहीं करते, इस बात की व्याख्या के लिये अपना 'अनिश्चयता का सिद्धान्त' निकाला। यह अनिश्चियता का सिद्धान्त बताता है कि 'किसी एक उदाहरण में किसी एक अवयव की स्थिति और वेग को विशिष्ट कर के बताना असम्भव है।' हर बार जब हम इलैक्ट्रोन को देखते हैं, हम उसकी हालत बदल देते हैं, हम उसकी स्थिति या वेग या दोनों को बदल देते हैं। इस प्रकार हम किसी होने वाली घटना की सम्भाव्यता की बात तो कह सकते हैं, किन्तु किसी एक घटना की बात निश्चयपूर्वक नहीं कह सकते। परिणामस्वरूप हम कहते हैं कि प्रकृति अकस्मात् के सांख्यिकीय नियमों का पालन करती है। रसायन-विज्ञान में पूर्व कथन करने योग्य कतिपय नियमों की विद्यमानता का कारण यही है कि ये नियम वस्तुतः सांख्यिकीय नियम होते हैं। हमें प्रयोगशाला में आयनों या अणुओं की भारी संख्या से वास्ता पड़ता है। अपने घोलों को मिलाने में हरेक आयन ऐसे अस्तव्यस्त ढंग से काम करता है कि उसकी क्रिया के बारे में कोई भविष्यवाणी नहीं की जा सकती। परन्तु प्रतिक्रिया के परिणाम के बारे में हम निश्चय की बहुत बड़ी सीमा तक भविष्यवाणी कर सकते हैं। यह सम्भव है कि हजारों आयन प्रतिक्रिया-शून्य ज्यों के त्यों पड़े हों, किन्तु हमारा विश्लेषणात्मक सन्तुलन आयनों की इतनी छोटी संख्या को तौलने में असमर्थ है इसलिये हम यह समझते हैं कि प्रतिक्रिया सौ प्रतिशत पूरी हुई है।

डू नूई का कहना है कि प्रत्येक चीज़ हमारे पर्यवेक्षण के स्तर पर निर्भर है। हमें जो सौ प्रतिशत प्रतिक्रिया हुई दीखती है, सम्भव है कि पर्यवेक्षण का स्तर बदल जाने पर वह उतनी पूर्ण प्रतीत न हो। इस प्रकार काले कार्बन का एक ग्राम जब आटे के एक ग्राम से मिलाया जाए तो वह हमें भूरा प्रतीत होगा, किन्तु यदि उस ढेर में कोई सूक्ष्म जीवाणु रेंग रहा हो तो उसे वह ढेर सफेद और काले गोल पत्थरों का ढेर प्रतीत होगा। उसके पर्यवेक्षण का स्तर हमारे पर्यवेक्षण के स्तर से भिन्न है।

जिन नियमों की हमने खोज की है, यदि रसायनशास्त्र उनका पालन करता प्रतीत होता है तो उसका कारण यह है कि हमें वस्तुतः सांख्यिकीय विज्ञान से वास्ता होता है। हमारे भौतिक-रासायनिक नियमों की जड़ में अव्यवस्था और क्रम-शून्यता स्पष्ट है, किन्तु इतनी बड़ी संख्याओं से हमें वास्ता पड़ता है कि सांख्यिकीय नियम उन पर लागू हो सकते हैं और ठीक परिणाम निकलते हैं। इस प्रकार अव्यवस्था में से व्यवस्था पैदा होती है।

सांख्यिकी के नियमों को संचालित करने वाली शक्ति कौन सी है ? जब कोई व्यक्ति प्रकृति में घटित होने वाली किसी घटना की सम्भाव्यता के सम्बन्ध में अकस्मात् के नियमों का प्रयोग करता है, जैसे कि तत्वों से प्रोटीन के एक अणु के बनने की घटना, तो यदि हम पृथ्वी की आयु के लिये तीन अरब या इससे भी अधिक वर्ष मान लें, तो भी इस घटना के घटित होने के लिये वह पर्याप्त समय नहीं है। अव्यवस्था और अस्तव्यस्तता में से जो क्रम और व्यवस्था जन्म लेती है, उसकी सुसंगत व्याख्या हम तभी कर सकते हैं जब हम किसी ऐसी संचालन-शक्ति को स्वीकार करें जिसका सृष्टि-रचना में कुछ विशेष प्रयोजन है।

यह हो सकता है कि हीज़न वर्ग के अनिश्चयता के सिद्धान्त की सत्ता केवल इसलिए हो कि अपने ज्ञान के वर्तमान स्तर पर हमें कोई ऐसा रास्ता नहीं मिला है जिससे हम किसी इलैक्ट्रोन को अपनी स्थिति या वेग पर प्रभाव डाले बिना देख सकें। किसी दिन, जबकि हम आज की अपेक्षा ऊर्जा के सम्बन्ध में और अधिक जानकारी हासिल करने में समर्थ हो जाएं, तो यह सम्भव है कि हम इलैक्ट्रोन को भी उतनी ही स्थिरता के साथ देख सकें जितनी स्थिरता के साथ हम मंगल ग्रह को देख सकें। फिलहाल हीज़न वर्ग का सिद्धान्त उप-आणविक अवयवों का अध्ययन करने में सहायता के लिए हमारे लिए वैसा ही उपयोगी है जैसा कि उन्नीसवीं सदी के रसायनविदों के लिए डाल्टन का परमाणु सम्बन्धी सिद्धान्त अकथनीय मूल्य का था। हमें यह स्वीकार करना चाहिये कि द्रव्य और ऊर्जा के सम्बन्ध में जितना हमें जानना चाहिये, उतना हम नहीं जानते। सच तो यह है कि हम अभी तक केवल सतह को ही कुरेद पाये हैं। यह सम्भव है कि उप-आणविक स्तर पर जिसे हम अव्यवस्था या क्रमशून्यता कहते हैं, वह अव्यवस्था या क्रमशून्यता न हो। इस क्रिया के अधूरे ज्ञान के कारण और पर्यवेक्षण के गलत स्तर के कारण यह सम्भव है कि हमारा विचार दोषपूर्ण हो।

प्रकृति में सर्वत्र क्रम और व्यवस्था नजर आती है। ऐसा प्रतीत होता है कि विश्व किसी निश्चित लक्ष्य की ओर बढ़ा जा रहा है। परमाणुओं में विद्यमान क्रम से यह बात स्पष्ट है। एक निश्चित क्रम है जिसका हाइड्रोजन से लेकर यूरेनियम तथा और आगे तक पालन होता है। विभिन्न तत्वों को पैदा करने वाले इलैक्ट्रोनों और प्रोटोनों के वितरण पर नियन्त्रण रखने वाले नियमों के सम्बन्ध में जितना ज्यादा ज्ञान हम प्राप्त करते जाते हैं उतनी ही अधिक क्रमबद्धता के अस्तित्व का हमें द्रव्य में पता लगता जाता है। किसी दिन हम यह जान जाएंगे कि द्रव्य का निर्माण करने वाली इन ईंटों को पैदा करने के लिए शक्ति कैसे एक स्थान पर एकत्रित की गई है। सब से पहला व्यक्ति आइन्सटीन था जिसने द्रव्य और ऊर्जा के मध्य पारस्परिक सम्बन्ध की विद्यमानता बताई। अणु-शक्ति के रहस्यों का पर्दा मनुष्य ने अभी खोलना शुरू ही किया है। फिलहाल हम द्रव्य से ऊर्जा प्राप्त करते हैं किन्तु एक दिन ऐसा भी आएगा जब हम ऊर्जा से द्रव्य का निर्माण करेंगे।

ऐसा प्रतीत होता है कि रासायनिक दृष्टि से यह विश्व एक है। हमारे पास ऐसे उपाय और साधन हैं कि हम पृथ्वी पर पाये जाने वाले अनेक तत्वों की अन्य ग्रहों में भी परीक्षा कर सकते हैं। और वे सब एक जैसे हैं। और तो और, सुदूर नक्षत्रों में भी पृथ्वी पर पाये जाने वाले तत्वों को हम पहचान सकते हैं। आज-कल के वैज्ञानिकों का यह विश्वास है कि हमारे इस ग्रह पर प्रकृति के जो नियम काम करते हैं, सुदूर अन्तरिक्ष के बाह्य आकाश में भी वही नियम काम करते हैं। जहां भी कहीं हम देखें, हमें सर्वत्र विशिष्ट प्रयोजन, क्रम और व्यवस्था, नजर आते हैं। मुझे अपने मन में कोई सन्देह नहीं है कि किसी सर्वोच्च बुद्धिमान शक्ति ने ही इस विश्व की योजना बनाई और उसका निर्माण किया और उसी के हाथों में इस विश्व की नियति खेल रही है।

यदि समय और स्थान अनुमति दें तो क्रम और व्यवस्था के चमत्कारपूर्ण तथ्यों पर अधिक जोर देने के लिए मैं पाठक का ध्यान जलचक्र, कार्बन डायोक्साइड चक्र, अमोनिया चक्र और आक्सीजन चक्र की ओर खींचूंगा। ये सब किसी नियोजक मस्तिष्क और किसी निर्माणकर्त्री शक्ति की ओर संकेत करते हैं।

यद्यपि प्रकृति में अब भी ऐसी अनेक बातें हैं जिनकी फिलहाल हम व्याख्या नहीं कर सकते, और वे रहस्य के पर्दे से ढकी हुई हैं, किन्तु हम वही गलती नहीं करेंगे जो हमारे पूर्वज करते आए हैं, जबकि उन्होंने अव्याख्येय की व्याख्या के लिए 'देवताओं', की कल्पना की थी और हरेक देवता के लिए अलग-अलग शक्ति और कार्यकलाप निर्धारित किये थे। बाद में ज्यों ज्यों विज्ञान का विकास होता गया और प्रकृति की अनेक रहस्यपूर्ण घटनाएं समझ में आने लगीं, और जब उन घटनाओं पर नियंत्रण करने वाले नियमों की खोज हो गई, तब वे 'देवता' आवश्यक नहीं समझे गए। किन्तु तब बहुतों के लिए देवाधिदेव परमात्मा भी अनावश्यक हो उठा।

जहां तक परमात्मा का सम्बन्ध है, उसको या उसके विचार को अनावश्यक मानने के बजाय, या उसे तथाकथित अज्ञेय वस्तुओं की कोटि में रखने के बजाय, हमें विश्व के नियमों और व्यवस्था में उसका दर्शन करना चाहिये, और उसका आदर करना चाहिये। प्रकृति के नियमों की खोज करके मनुष्य 'अज्ञेय' की व्याख्या करने में समर्थ हो सकता है, किन्तु मनुष्य प्रकृति के नियमों को पैदा करने में कभी समर्थ नहीं हो सकता। परमात्मा नियम-प्रदाता है, मनुष्य उन नियमों की खोज करता है और धीरे-धीरे प्रकृति की व्याख्या करना सीखता है। वह प्रत्येक नियम, जिसकी भी मनुष्य खोज करता है, मनुष्य को परमात्मा को समझने के और निकट ले आता है। परमात्मा हम पर अपने आपको प्रकट करने के लिये यही तरीका अपनाता है। अपने आपको प्रकट करने का केवलमात्र यही तरीका नहीं है, किन्तु यह अत्यन्त महत्वपूर्ण अवश्य है।

—०—

एल्बर्ट मैंकोम्स विन्चेस्टर

विज्ञान मेरे विश्वास को विचलित नहीं कर सका

प्राणिविद्

टैक्सास विश्वविद्यालय से बी० ए० आनर्स, पी-एच० डी०। शिकागो विश्वविद्यालय में ग्रैजुएट स्टडी। वेलोर विश्वविद्यालय में प्राणिविज्ञान के भूतपूर्व प्राध्यापक। १९४६ से स्टेटसन विश्वविद्यालय में प्राणि-विभाग के अध्यक्ष। प्राणि-विज्ञान, जीव-विज्ञान, आनुवंशिकी सम्बन्धी अनेक पाठ्य-पुस्तकों और "हैरेडिटी एण्ड यौर लाइफ" नामक ग्रन्थ के रचयिता। फ्लोरिडा की विज्ञान-अकादमी के भूतपूर्व अध्यक्ष। आनुवंशिकी, ड्रोसोफिला पर एक्स-रे के प्रभाव के विशेषज्ञ।

× × ×

क्या किसी वैज्ञानिक का परमात्मा की सत्ता में वैसा ही विश्वास है और वैसी ही गम्भीर आदरबुद्धि है जसी कि उस व्यक्ति की होती है जो विज्ञान के अध्ययन में नहीं लगा ? क्या विज्ञान की खोजों में कोई ऐसी चीज़ है जो उस सर्वोच्च शक्ति की सत्ता और महत्ता को कम कर सके ? ये कुछ ऐसे प्रश्न हैं जो कभी-कभी उन लोगों के मन में आते हैं जो यह समझते हैं कि वैज्ञानिक लोग अपने विस्तृत गवेषणा-कार्य में ऐसे तथ्यों का उद्घाटन करते हैं जो धर्मशास्त्रों के उपदेश के विपरीत पड़ते हैं।

एक व्यक्तिगत अनुभव से बात साफ हो जाएगी। जब एक कालेज के छात्र के रूप में मैंने विज्ञान के क्षेत्र में पदार्पण करने का निश्चय किया तो मुझे वह दिन बखूबी याद है जब मेरी चाची ने मुझे अलग ले जाकर अपना इरादा बदल देने को कहा, क्योंकि उसे डर था कि, 'विज्ञान से परमात्मा के प्रति तेरा विश्वास शिथिल पड़ जाएगा।' अन्य अनेक लोगों के समान वह भी यह समझती थी कि विज्ञान और धर्म परस्पर विरोधी शक्तियां हैं और एक को स्वीकार करने का अर्थ है दूसरे को अस्वीकार करना।

आज मुझे यह कहते प्रसन्नता होती है कि विज्ञान के क्षेत्रों में अनेक वर्षों तक अध्ययन और कार्य करने के पश्चात् परमात्मा के प्रति मेरा विश्वास विचलित नहीं

हुआ, बल्कि और अधिक दृढ़ हो गया तथा उसको एक सबल आधार मिल गया। विज्ञान सर्वोच्च सत्ता की सर्वशक्तिमत्ता और महत्ता के प्रति एक अन्तर्दृष्टि प्रदान करता है जो प्रत्येक नई खोज के साथ और अधिक सबल होती जाती है। विज्ञान उन आदिमकालीन अन्धविश्वासों को, जो प्रायः हमारे धार्मिक विश्वासों में किसी प्रकार घुस आते हैं, हटा कर उनके स्थान पर ऐसे ठोस तथ्यों की स्थापना करता है जिन्हें बाकायदा सिद्ध किया जा सकता हैं। जैसे कि विज्ञान की खोजों ने खून बहने देने और सुगन्धित द्रव्य जलाने के दिनों की चिकित्सा-पद्धति को बदल कर हमें रोग के निदान और उपचार के आधुनिक साधन प्रदान किये हैं, ठीक वैसे ही, मनुष्य के साथ परमात्मा का क्या सम्बन्ध है, इस बारे में भी हमारे पुराने विचारों को वैज्ञानिक खोजों ने बदल दिया है। आज हम जानते हैं कि यदि कोई व्यक्ति बीमार पड़ता है तो उसका अर्थ यह नहीं है कि परमात्मा ने उसके पापों के लिये उसको दण्ड दिया है, बल्कि किन्हीं ऐसे सूक्ष्म जीवों ने शरीर पर हमला किया है जो समस्त जीवित प्राणियों पर लागू होने वाले सभी प्राकृतिक नियमों का पालन करते हैं। इन तथ्यों के ज्ञान के कारण परमात्मा के प्रति हमारा विश्वास दुर्बल नहीं पड़ा है, बल्कि परमात्मा के प्रति और उसके रचे इस संसार के प्रति हमारी जानकारी और बढ़ गई है।

कोई व्यक्ति किसी कारीगर की रचनाओं को तब तक नहीं समझ सकता जब तक वह उनके रचयिता कारीगर के सम्बन्ध में बहुत कुछ न जान ले। ठीक इसी प्रकार संसार के और उसके निवासियों के स्वभाव की जटिलताओं में ज्यों-ज्यों हम उतरते जाते हैं त्यों-त्यों इन सब के रचयिता उस सर्वोच्च शिल्पी के स्वभाव की हम अधिकाधिक प्रशंसा करते जाते हैं। मेरे अध्ययन का क्षेत्र जीव-विज्ञान या जीवन का अध्ययन करने वाले विज्ञान का क्षेत्र है। परमात्मा की जितनी भी शानदार कृतियां हैं उनमें से ऐसी कोई नहीं है जो इस हमारे ग्रह—पृथ्वी—पर रहने वाले जीवित पदार्थों को मात कर सके।

सड़क के किनारे उगने वाली तिनपतिया घास के छोटे पौधे पर जरा विचार करिये। मनुष्य के द्वारा बनाई गई चमत्कार-पूर्ण मशीनों में से ऐसी कौन-सी मशीन है जो इस घास के पौधे की तुलना में ठहर सके? यहां हम एक ऐसी जीवित "मशीन" पाते हैं जो विनम्रतापूर्वक किन्तु लगातार, दिन-प्रतिदिन, प्रोटोप्लाज्म के—जिससे समस्त भौतिक जीवन बना होता है—निर्देशन के अनुसार, हजारों जटिल रासायनिक और भौतिक प्रतिक्रियाएं करती रहती है।

यह जटिल जीवित 'मशीन' कहां से आई? परमात्मा ने स्वयं अपने हाथों से इसको नहीं घड़ा और इसकी जड़ और इसके ऊपर एक-एक पत्ती को नहीं बनाया। न ही उसने जीवन में आत्म-सातत्य की योग्यता प्रदान की है, ऐसी योग्यता जिससे पीढ़ी-दर-पीढ़ी वह इस प्रकार की नस्ल तैयार करती रहे, जिसमें वे सब विशेषताएं मौजूद हों जिनके कारण उसे घास के पौधे के रूप में पहचाना जा सके। मेरे लिये

जीव-विज्ञान की यह शाखा अत्यन्त आकर्षक है और मैं इसे परमात्मा की महत्ता की सबसे बड़ी अभिव्यक्ति समझता हूँ। यहां हमें एक अत्यन्त सूक्ष्म दुनियां से वास्ता पड़ता है, क्योंकि घास के नये पौधे की रचना का जो नमूना होगा वह उस छोटे से कोष के, जो इतना छोटा है कि उसे शक्तिशाली सूक्ष्मवीक्षण यन्त्र से ही देखा जा सकता है, एक छोटे से हिस्से में ही निहित होना चाहिये। प्रत्येक शिरा, प्रत्येक तन्तु और तने पर प्रत्येक डाली, जड़ों और पत्तियों का निर्माण, उन छोटे-छोटे इंजीनियरों के निदेशन में एक ही कोष के अन्दर हुआ है जिससे पौधा बढ़ता है।

इसके अतिरिक्त इन छोटे-छोटे इंजीनियरों में यह भी ताकत है कि वे कभी-कभी अपनी रचना के नमूने में परिवर्तन कर दें और एक ऐसा पौधा पैदा कर दें जो अपने पूर्ववर्तियों की अपेक्षा कहीं अधिक क्षमताशाली हो। एक समय था, जब अनेक लोग यह सोचते थे कि यह समझना पवित्र आदेश का उल्लंघन है कि पृथ्वी पर जीवन के जितने भी रूप हैं वे सब यथार्थतः उसी रूप में नहीं हैं जैसा कि परमात्मा ने उनको मूलतः बनाया था।

आज अधिकांश विचारवान् व्यक्ति यह स्वीकार करने लगे हैं कि जीवित पदार्थों में जो आत्म-विस्तार की जटिल व्यवस्था है और जिसमें परिस्थितियों के बदलने के साथ अपना रूप बदल लेने की छूट है, वह केवल अपनी हूबहू नकल पैदा करने वाले जीवों की रचना से कहीं अधिक महान् उपलब्धि है।

इस समय वैज्ञानिक लोग एक अन्य अत्यन्त महत्वपूर्ण खोज की दहलीज़ पर खड़े नजर आते हैं—और वह है, परीक्षण नलिका में वास्तविक जीवन का उत्पादन। यह ठीक है कि यह परीक्षण अभी अत्यन्त आरम्भिक अवस्था में है, किन्तु वे रासायनिक द्रव्यों को ऐसे अनुपात में मिलाने में सफल हो गए हैं जिनसे डैसआक्सीरि-बोन्युक्लिइक अम्ल नामक द्रव्य तैयार हो जाता है। यह ऐसा रासायनिक द्रव्य है जो इससे पहले केवल जीवित कोषों में ही पैदा होता था। यही जीवन का असली सार है, यह ऐसा वंशानुगत द्रव्य है जो एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में जाता है और उससे निकलने वाले जीवन में अपनी छाप छोड़ता जाता है।

जीवन के एक रूप से प्राप्त किया गया यह अम्ल सफलतापूर्वक दूसरे प्रकार के जीवन के प्रोटोप्लाज्म में डाल दिया गया है और इससे वंशानुगत विशेषताओं को बदलने की दिशा में सफलता प्राप्त की गई है। इस मनुष्य-निर्मित-अम्ल के बारे में क्या कहोगे—क्या इसे भी अपनी इच्छा के अनुसार मिलाया जा सकता है? यदि ऐसा हो जाए, तो प्रारम्भिक जीवन को उत्पन्न करने के लिए जो कुछ आवश्वक है, वह मनुष्य के हाथ आ जाए।

इस प्रयत्न का अन्तिम परिणाम अभी तक अधर में है। अनेक वैज्ञानिकों को इसमें सन्देह है और बहुत से इसे असम्भव समझते हैं। किन्तु यदि इस प्रकार के परीक्षण में सफलता मिल भी जाए, तो क्या यह किसी के ईश्वर-विश्वास को विचलित

कर सकेगी ? यदि किसी का विश्वास केवल उथली और ऊपरी सतह पर ही आधारित हो, तभी ऐसा सम्भव है। जिन लोगों का विश्वास गम्भीर चिन्तन पर आश्रित है उनके लिए यह एक और कदम होगा जिससे वे उस सर्वोच्च शिल्पी की, जिसने वे समस्त चमत्कार पैदा किये हैं जिन्हें मनुष्य अत्यन्त प्रयत्नपूर्वक अनावृत करने का प्रयत्न कर रहा है, कारीगरी को समझ सकेंगे।

सत्य के प्रति और अधिक गहरी अन्तर्दृष्टि प्राप्त होने का परिणाम केवल यही हो सकता है कि मनुष्य का परमात्मा के प्रति विश्वास अधिक गहरा और अधिक दृढ़ होता चला जाए।

——

ओलिन कैरोल काकैंलिट्ज़

जड़वाद को आस्तिकवाद के सामने झुकना होगा

रासायनिक इंजिनीयर

बी० एस-सी०, राइस इन्सटीटयूट। एम० एस-सी०, पी-एच० डी०, मिशिगन विश्वविद्यालय। पहले शैल आयल कम्पनी के गवेषणा रसायनविद्, उसके बाद मिशिगन विश्वविद्यालय के कर्मचारी मण्डल में कैमिकल इंजिनीयर। अमेरिकन सियानामिड कम्पनी के प्रौसेस डवलपमेंट विभाग के अध्यक्ष। कैमिकल इंजिनीयरों की अमेरिकन संस्था के सदस्व। कैमिकल इंजिनीयरिंग कैटैलिसिस के विशेषज्ञ।

× × ×

मानव इतिहास के सभी युगों में मनुष्य सदा से ये तीन महत्वपूर्ण प्रश्न पूछता आया है : मैं कहां से आया ? मैं यहां क्यों हूं ? मैं कहां जा रहा हूं ?

दर्शन और अध्यात्मविद्या सम्बन्धी सैंकड़ों पुस्तकों में इन प्रश्नों पर विचार किया गया है। सत्ता की पहेली युगों पुरानी समस्या है। इस अध्याय का विषय यह है कि आस्तिकवाद युक्तियुक्त मन को अत्यन्त सन्तोषजनक समाधान देता है। किसी अन्य वाद की अपेक्षा दृश्यमान सत्ता का यह अधिक सुन्दर समाधान देता है और अन्य किसी वाद की अपेक्षा आस्तिकवाद के द्वारा अनुत्तरित प्रश्न भी बहुत कम बचते हैं।

तत्वमीमांसीय विश्वासों की दृष्टि से हमारे आधुनिक युग के वैज्ञानिकों के स्पष्टत: दो वर्ग हैं। एक वर्ग, जो निस्सन्देह अपेक्षाकृत अधिक बड़ा है ,उसे 'जड़वादी' कह सकते हैं। अपेक्षाकृत जो छोटा वर्ग है, उसे 'आस्तिकवादी' वर्ग कह सकते हैं। पारिभाषिक दृष्टिकोण से यह बात को जरूरत से ज्यादा सरल कर देता है। यहां हम जड़वादी शब्द का प्रयोग सत्ता के उस दार्शनिक पहलू का वर्णन करने के लिये करते हैं जो यह मानकर चलता है कि 'जड़-प्रकृति ही अन्तिम सत्ता है।' 'प्रकृति' का अर्थ है देश और काल के अन्दर द्रव्य और ऊर्जा से निकलने वाली समस्त घटनाएं और

समस्त क्रिया-कलाप। जड़-प्रकृति-वादी कहते हैं कि समस्त सत्ता की व्याख्या प्रकृति में छिपे नियमों से की जा सकती है और उस सत्ता की व्याख्या के लिए आस्तिक-वादियों की तरह किसी परमात्मा को मानने की आवश्यकता नहीं है। इन भिन्न और एक दूसरे के विरोधी दृष्टिकोणों पर विचार करने से पहले हम यह विचार करें कि 'सत्ता' शब्द से क्या अभिप्राय है ?

'सत्ता' का क्या अर्थ है, इस पर दार्शनिकों ने खूब उच्च स्वर से बहस की है। प्रपंचवादी, प्रत्यक्षप्रमाणवादी, विचारवादी, यथार्थवादी, ईश्वरवादी—इन सब का परस्पर असहमत होना निश्चित है। लेखक यह समझता है कि एक औसत वैज्ञानिक इस समस्या पर 'सामान्य बुद्धि' (Common Sense) से विचार करना चाहेगा और जिसे हम 'सत्ता' कहते हैं उसके निम्न वर्णन पर गम्भीर रूप से आपत्ति नहीं करेगा :

हमारी इन्द्रियों से जो कुछ प्रत्यक्ष किया जाता है और मन से जो कुछ विचारा जाता है वह सब सत्ता जगत् में शामिल है। पृथ्वी, आकाश, जल, वृक्ष, प्राणी, मनुष्य, ये सब उन सब मानवों द्वारा देखे जाते हैं, जिनकी इन्द्रियां पूरी हैं और जिन-में सोचने विचारने की शक्ति है। कोई गरीब किरायेदार हमेशा किराया मांगने वाले अपने मकान मालिक की सत्ता के प्रति सन्देह नहीं करता (भले ही मन में वह चाहता हो कि मकान मालिक न रहे।) इस प्रकार की चीजों की—और उनकी सूची बहुत लम्बी हो सकती है—वास्तविक सत्ता है।

हमारे वस्तु जगत् में इन बाह्य पदार्थों के अलावा स्वयं मनुष्य के अन्दर कुछ ऐसे पदार्थों की सत्ता है जिन्हें हम किसी अन्य अच्छे शब्द के अभाव में 'आन्तरिक पदार्थ' कह सकते हैं। उन्हें कदाचित् अभ्यन्तर प्रत्यक्ष की, संज्ञान की, अनुभूति की और संवेदना की दुनिया कह सकते हैं। मनुष्य स्वयं अपने प्रति 'जागरूक' है, उसे अपनी सत्ता का भान है, वह निरपेक्ष रूप से सब से पृथक् होकर विचार कर सकता है। वह देश और काल की सीमाओं को पार कर सकता है, और अपने बारे में किसी ऐसी चीज़ के रूप में और ऐसे स्थान के रूप में सोच सकता है, जो वह नहीं है और जहां वह नहीं है। उसमें तर्क करने की शक्ति है। उसमें इन्द्रियों से अनुभव करने की शक्ति है और अतीत के अनुभवों को याद करने की शक्ति है। इसके अलावा अपने अतीत के अनुभवों के आधार पर वह भविष्य के अनुभवों की कल्पना करता है और यह भविष्यवाणी करता है कि सम्भावना की सीमा के अन्दर वह क्या रास्ता अप-नाएगा। उसमें संकल्प है, अध्यवसाय है, बुद्धि है और इच्छा है।[1]

मनुष्यों में भले और बुरे की, आचरण के एक स्तर की, भी समझ है। मनुष्य में एक अन्तश्चेतना है, एक नैतिक प्रवृत्ति है, अपने प्रति तथा अन्यों के प्रति एक

---

१. न्यायदर्शन में आत्मा का लक्षण किया गया है : "इच्छा-द्वेष-प्रयत्न-सुख-दुःख-ज्ञानान्यात्मनो लिंगम्"। इससे तुलना करिए।—अनु०

उत्तरदायित्व की भावना है और उसके अन्दर कोई ऐसी आन्तरिक शक्ति है जो उसके कार्यकलाप और प्रवृत्तियों का संचालन करती है। साहस, भक्ति, शौर्य, समर्पण, कृतज्ञता, मैत्री, प्रेम—ये शब्द मनुष्य की प्रकृति के, उसकी 'आन्तरिक सत्ता' के द्योतक हैं।

हम अभी बता चुके हैं कि जिसे हमने 'वस्तु जगत्' कहा है उसकी व्याख्या करने वाले हमारे इस वर्तमान संसार में प्रचलित दो विरोधी दृष्टिकोण हैं। हम यहां अत्यन्त संक्षेप से उन दोनों दृष्टिकोणों के बलाबल की जांच करें। उनमें से किसी एक को सब प्रकार के विवादों से परे, मिथ्या सिद्ध करने का या दूसरे को सत्य सिद्ध करने का प्रयत्न नहीं किया जाएगा। इस प्रकार का प्रयत्न करने का अर्थ तो होगा पहले से मान कर चलना। आस्तिकवाद इसलिए सत्य नहीं है क्योंकि आस्तिकों के खुदा की सत्ता युक्तियों से सिद्ध की जा सकती है। परमात्मा के सम्बन्ध में ईसाइयों का जो भी ख्याल है, या वे जैसे परमात्मा को मानते हैं, उसकी जानकारी हमें बाइबिल से मिलती है। परन्तु सत्य तो यह है कि बाइबिल को हम एक ओर छोड़ दें, तब भी आस्तिकवाद का विचार जड़वाद की अपेक्षा अधिक युक्तियुक्त, अधिक सुन्दर और अधिक बुद्धि-ग्राह्य है। हम यही दिखाने का प्रयत्न करेंगे।

पहले हम सत्ता की बाहरी दुनिया की व्याख्या करने के लिये जड़-प्रकृतिवादी को बुलाते हैं। उसकी बुनियादी मान्यता है द्रव्य की शाश्वतता (या कहना चाहिये—ऊर्जा की शाश्वतता, क्योंकि द्रव्य ऊर्जा का ही प्रकटीकरण है।) हमारी पृथ्वी और हमारे सौर मण्डल की आयु स्पष्टतः सीमित ही है, परन्तु जिन तत्वों से ये बने हैं वे तत्व सदा विद्यमान रहे हैं। विकास की अत्यन्त मन्द प्रक्रिया से निर्जीव पदार्थों से जीवन पैदा हुआ और अन्ततः मनुष्य बन गया। जड़प्रकृतिवादी के जितने भी अनुभव हैं वे भौतिक रासायनिक सिद्धान्तों के परिणाम हैं। भौतिक जगत् में जो क्रम और व्यवस्था नजर आती है, वे द्रव्य और ऊर्जा के अन्तर्निहित गुण हैं। उदाहरण के लिए, इन्द्रधनुष आकाश में इसलिए प्रकट होता है क्योंकि हवा में लटकी हुई पानी की बूंदों में से गुजरती हुई सूरज की किरण अपने संघटक भागों में विचलित हो जाती है। बाहर के दृश्य-जगत् की जितनी भी सत्ता है वह 'देश और काल में गति करते हुए द्रव्य और ऊर्जा की क्रिया' ही है।

आन्तरिक सत्ता की व्याख्या के लिए जड़प्रकृतिवादी को अधिक सूक्ष्मता का आश्रय लेना पड़ेगा। हमें स्पर्श का अनुभव क्यों होता है। इसकी व्याख्या यों की जाती है कि शरीर के जिस भाग का स्पर्श पदार्थ से होता है उससे कुछ विद्युत-तरंगें हमारे स्नायु संस्थान के माध्यम से हमारे मस्तिष्क तक पहुंचती हैं। मस्तिष्क एक विस्तृत वैद्युतिक जाल है और हमारे स्नायु-संस्थान का केन्द्र है। हमारी नैतिकता की भावना एक 'यूथ-वृत्ति' मात्र है या एक प्रबुद्ध 'निजी स्वार्थ' है जो हमारे इस अनुभव पर आधारित है कि इस प्रकार करने से हम और अच्छे हो जाते हैं।

बाह्य पदार्थों की दुनिया की तरह आन्तरिक वस्तुजगत् की प्रत्येक क्रिया की (थोड़ी या बहुत) जड़ प्रकृतिवादी व्याख्या भी उपस्थित की ही जा सकती है।

अब हम जड़वाद की दुर्बलता पर जरा गौर करें। प्रथम तो इस विश्व या ब्रह्माण्ड के उद्गम के सम्बन्ध में वह कोई सन्तोषजनक समाधान पेश नहीं करता। विश्व की शुरूआत के सम्बन्ध में अनेक वैज्ञानिक वाद उपस्थित किये जाते हैं। इस फैलते हुए विश्व के सम्बन्ध में जो ज्योतिष सम्बन्धी समाधान है, उसकी सबसे अच्छी व्याख्या यह मानकर ही की जा सकती है कि शुरू में एक ऐसा समय था जब कि संघटक अवयव घनीभूत (या बंधी हुई) अवस्था में थे। समस्त आकाशगंगाएं या ग्रह-नक्षत्र बहुत तेज गति से एक दूसरे से बहुत दूर वापिस जाते नजर आते हैं। अनेक आकाशीय नीहारिकाएं ऐसी प्रतीत होती हैं जैसे कि वे दो या ढाई हिस्से तक विरल हो चुकी हैं या खुल चुकी हैं। इसके अतिरिक्त थर्मोडायनेमिक्स का दूसरा सिद्धान्त इस बात का बहुत प्रबल प्रमाण है कि इस विश्व का प्रारम्भ किसी निश्चित समय पर हुआ था। भौतिक विज्ञानों के पर्यवेक्षणों पर आधारित यह नियम इस बात का संकेत करता है कि विश्व की एण्ट्रोपी बढ़ रही है, जिसका अर्थ यह है कि यह नियम भविष्य में किसी ऐसे नियम का संकेत करता है जब विश्ववर्ती समस्त पिण्डों का सारतः एक ही तापमान होगा। यह तब ही सच हो सकता है जबकि अतीत में एक ही तापमान न रहा हो, या अब एक तापमान न हो। यह सच है कि उनका एक समान तापमान कभी नहीं होगा, क्योंकि ज्यों-ज्यों तापमान समानता पर पहुंचने लगता है त्यों त्यों चालक शक्ति घटने लगती है। किन्तु इससे युक्ति के व्यावहारिक निष्कर्षों में कमी नहीं आती। यदि द्रव्य और ऊर्जा शाश्वत हैं और विश्व की कोई शुरूआत नहीं है तो इस 'एण्ट्रोपी चक्र' की कोई सन्तोषजनक व्याख्या नहीं हो सकती।

आन्तरिक वस्तु-जगत् की व्याख्या करने में भी जड़वाद को कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। हमारे शरीर के अंग तथा हमारा मस्तिष्क कैसे काम करता है, इसकी व्याख्या के लिए बहुत हद तक भौतिक-रासायनिक सिद्धान्तों का प्रयोग किया जा सकता है, किन्तु वे 'क्यों' की व्याख्या नहीं करते। मनुष्य अन्य प्राणियों से इतना भिन्न क्यों है? केवल मनुष्य में ही यह 'ईश्वर चेतना' क्यों है? मनुष्य ने आज तक जितनी भी खोज की है उसमें एक भी उदाहरण ऐसा नहीं मिला जिसमें पशुओं और पक्षियों ने परमात्मा की पूजा करने के लिये कोई वेदी बनाकर खड़ी की हो। मस्तिष्क को मन के समकक्ष करने के लिये क्या यह पर्याप्त है? हम स्मृति, कल्पना, विचारणा और तर्क-शक्ति की व्याख्या कैसे कर सकते हैं? जड़वाद के पास इसका कोई पर्याप्त समाधान नहीं है।

आस्तिकवादी दृष्टिकोण इन सब प्रश्नों का अत्यन्त युक्तियुक्त ढंग से उत्तर देता है। विश्व की योजना, क्रम और व्यवस्था के पीछे एक 'अति चेतना' है। इसी

शक्ति ने समस्त द्रव्य और ऊर्जा को किसी निश्चित समय में पैदा किया है। उसी ने आकाशीय ग्रह नक्षत्रों को इस प्रकार 'बांध' दिया और उनमें उसने ऐसी मूलप्रेरणा भर दी है कि वे विश्व का विस्तार करने के लिये 'खुलते रहें।' उसने पृथ्वी को बना कर उसमें ऐसी स्थितियां पैदा कर दीं जो जीवन के अनुकूल हों। एडिंगटन का कहना है कि इस प्रकार की घटना अकस्मात् हो जाए, इस प्रकार की सम्भावना करोड़ों बार में एक बार भी शायद ही है। इसी सत्ता ने मनुष्य को बुद्धिमत्ता में अपने अनुरूप बनाया है और उस मनुष्य में ऐसी आत्मा का आधान किया है जिसका अपना व्यक्तित्व है, और इच्छा है। उसी ने मनुष्य के अन्दर ईश्वर के अस्तित्व का बोध पैदा किया है। उस ने मनुष्य में नैतिक स्वभाव पैदा किया है जो स्वयं परमात्मा के स्वभाव के अनुकूल है। उसी के आदेश से नियम और क्रम की सत्ता है। सौन्दर्य, सत्य, साहस, ईमानदारी, भलाई, प्रेम तथा अन्य गुण स्वयं परमात्मा के इन्हीं गुणों से मनुष्य के अन्दर आते हैं। मनुष्य की बुद्धि भी परमात्मा की बुद्धि से ही आई है और वह भौतिक मस्तिष्क से कहीं अधिक है, क्योंकि भौतिक मस्तिष्क तो बुद्धि का एक उपकरण मात्र है।

जो बुनियादी तीन प्रश्न थे उनका उत्तर ईश्वरवाद इस प्रकार देता है: (१) परमात्मा ने मनुष्य को और समस्त वस्तु जगत को बनाया है, (२) मनुष्य को बनाने में परमात्मा का प्रयोजन यह है कि मनुष्य परमात्मा का साथी बन सके और परिपूर्ण आत्मसमर्पण और सेवा के जीवन से उसका आदर कर सके, (३) परमात्मा यह चाहता है कि यह साहचर्य, यह समर्पण, और सेवा की भावना इस जीवन के बाद भी सदा सदा के लिए जारी रहे।

—०—

एडमण्ड कार्ल कौर्नफैल्ड

ईश्वर ही आदि और अन्त

गवेषणा रसायनविद्

वी० ए० आनर्स, टैम्पल विश्वविद्यालय। एम० ए०, पी-एच० डी०, हारवर्ड विश्वविद्यालय। १९४३ से इण्डियाना पौलिस की एलिलिली एण्ड कम्पनी की लिली रिसर्च लैबौरेटरी में कार्य, उसके बाद आरगैनिक कैमिकल डिवीजन के अध्यक्ष। रबर कैमिस्ट्री, सिंथटिक आरगैनिक मैडिसिनल और कार्बनिक रासायनिक विकास के विशेषज्ञ।

× × ×

प्रिंस्टन विश्वविद्यालय के जीव-विज्ञान्विद् प्रोफेसर एडविन कोंकलिन ने अक्सर कहा है, 'जीवन सम्भवत : अकस्मात् ही पैदा हुआ है यह कहना ठीक ऐसा ही है जैसे कि किसी छापेखाने में विस्फोट हो जाने से कोई वृहत् शब्दकाश तैयार हो गया हो।' मैं इस वक्तव्य का बिना किसी हिचक के समर्थन करता हूं।

मेरा यह दृढ़ विचार है कि परमात्मा एक ऐसी सत्ता है जिसने इस विश्व की योजना बनाई हैं, उसको रचा है तथा धारण किया हुआ है।

परन्तु मैं कुछ और खास बात कहने का इच्छुक हूं। इतना तो स्पष्ट है कि 'परत्मामा' शब्द का लाखों लोगों के लिए अलग अलग अर्थ है और उन्होंने पृथ्वी की विभिन्न भाषाओं में उस शब्द का प्रयोग किया है। जब हम 'ईश्वर' शब्द का उच्चारण करते हैं तब क्या हमारा मतलब यह होता है : कि (१) विश्व-रचयिता ऐसा बुद्धिमान् है जो प्रकृति के सिद्धान्तों का समन्वय करता है, (२) यहूदियों का व्यक्तिगत ईश्वर जो अपनी प्रजा का रचयिता और नेता दोनों ही है, अथवा (३) हम उसकी परिभाषा ईसाइयों के व्यक्तिगत परमात्मा के रूप में करते हैं, जिसने अपने पुत्र ईसामसीह (जिसके माध्यम से उसने संसार को बनाया है) को पृथ्वी पर इसलिए भेजा कि वह न केवल मनुष्य जाति का रचयिता है अपितु पथ-भ्रष्ट मानव जाति का मुक्तिदाता भी है ? क्योंकि संसार के अन्य धर्मों में ये परिभाषाएं अनन्त हैं, अतः इस

प्रश्न के उत्तर भी बहुत अधिक भिन्नता लिये हुए होंगे। परस्पर विरोधी और विभिन्न उत्तरों से बचने के लिए अच्छा यही है कि हम उक्त तीन परिभाषाओं पर ही विचार करें।

वास्तव में यह भली-भांति ज्ञात है कि बहुत से तो केवल पहली परिभाषा में, परमात्मा के बुद्धिमान रचयिता होने में ही विश्वास करते हैं, जबकि दूसरे, उदाहरण के लिए, पुरातनपन्थी धर्मावलम्बी यहूदी पहली और दूसरी दोनों परिभाषाओं को मानते हैं। दूसरी ओर, ईसाई इन तीनों विचारों से सहमत हैं, और उनके विचार ऐसे नास्तिकों से बिल्कुल मेल नहीं खाते जो तीनों बातों में से किसी को भी नहीं मानते।

ईसाई होने के नाते मैं ऊपर बताई गई तीसरी परिभाषा को विशेष महत्व देता हूं। मैं ऐसे ईश्वर में विश्वास करता हूं जिसका पुराने और नये दोनों अहदनामों (टैस्टामैण्टों) में चित्रण किया गया है। दोनों अहदनामों में परमात्मा को विश्व का रचयिता और पालक कहा गया है। फिर भी बाइबिल के अधिकांश भाग में इस बात का वर्णन किया गया है कि परमात्मा अपने तथा अपने द्वारा रचित मनुष्य के बीच व्यक्तिगत सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयत्न किस प्रकार करता रहा है। इस सिलसिले में यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि बाइबिल में कहीं भी ईश्वर की सत्ता को सिद्ध करने का रंचमात्र प्रयत्न नहीं किया गया। केवल इस सीधे सादे वक्तव्य के साथ वर्णन प्रारम्भ हो जाता है : "शुरू में परमात्मा था—" और किंग डेविड का यह कथन उद्दृत किया गया है 'मूर्ख लोग अपने हृदय में कहते हैं कि कोई परमात्मा नहीं है।' जब स्वयं बाइबिल में ही बिना सिद्ध किये परमात्मा की सत्ता को मानकर चला गया है तो फिर वैज्ञानिकों के लिए या किसी और व्यक्ति के लिए परमात्मा की सत्ता को सिद्ध या असिद्ध करने के लिये मनुष्य-निर्मित तर्कप्रणालियों को अपनाना क्या महज धृष्टता ही नहीं होगी ? फिर भी कार्बनिक रसायन विज्ञान ने ईश्वर में मेरे विश्वास को प्रभावित किया है और उसे सबल बनाया है। इस सम्बन्ध में मैं संक्षेप से कुछ कहूंगा।

हम यह स्वीकार करेंगे कि हमें प्रकृति में सर्वोच्च बुद्धिमत्ता में विश्वास करना होगा। या हमें यह विश्वास करना होगा कि हमारा यह दृश्यमान जगत अकस्मात्, और केवल अकस्मात् ही, पैदा हो गया है, क्योंकि और कोई विकल्प नहीं। जिस व्यक्ति ने कार्बनिक रसायन विज्ञान में—खास तौर से जीवित प्रणालियों में—व्याप्त क्रम और चमत्कारपूर्ण जटिलता को देखा है वह व्यक्ति तो अकस्मात् के इस विचार को कभी स्वीकार नहीं कर सकता। आणविक रचना के और आन्तरिक क्रिया-प्रतिक्रिया के विज्ञान का मनुष्य ज्यों ज्यों अध्ययन करता जाता है, त्यों त्यों उसकी यह धारणा बद्धमूल होती जाती है कि उस सब के योजयिता और रचयिता की आवश्यकता है।

मेरा अनुभव यही है। प्रयोगशाला के अत्यन्त सूक्ष्म अवयवों में जटिल रचनाओं के अध्ययन में श्रम करते हुए मैं प्रायः ईश्वर के अनन्त बुद्धिचातुर्य की भावना

से हतप्रभ हो गया हूं। प्राणधारी जीवों में काम करने वाली कार्बनिक और जीव-रासायनिक (बायो-कैमिकल) प्रक्रियाएं इतनी अधिक जटिल होती हैं कि कभी-कभी उनके व्याघात के कारण होने वाली व्याधि पर आश्चर्य नहीं होता। बल्कि आश्चर्य तो इस बात पर होता है कि इतनी जटिलता से भरा वह सब यन्त्र-विन्यास इतनी परिपूर्णता से काम करता ही कैसे हैं। इस सब के लिए अनन्त बुद्धि-युक्त योजयिता और धारयिता की आवश्यकता है। ज्यों ज्यों मेरा अध्ययन जारी रहता है, त्यों त्यों परमात्मा के प्रति मेरी आस्था लगातार बढ़ती जाती है, और नास्तिकों का, फिर चाहे वे संसार में कहीं भी हों, रवैया अधिकाधिक अबूझ पहेली बनता जाता है। जब किसी मनुष्य-निर्मित सरलतम यन्त्र-विन्यास के लिए भी किसी निर्माता और योजयिता की आवश्यकता होती है, तब उससे हजारों गुणा बड़े और जटिल यन्त्र-विन्यास के लिए यह कल्पना करना कि वह स्वयं निर्मित हो गया और स्वयं विकसित हो गया, मेरी समझ से सर्वथा परे की बात है।

अनेक वैज्ञानिक शायद यह तो स्वीकार कर लेंगे कि भौतिक विश्व में किसी सृजनशील बुद्धिमान् शक्ति की सम्भावना है, परन्तु फिर भी इस स्वीकृति में और बाइबिल द्वारा वर्णित ईश्वर में निश्चित विश्वास के बीच खाई को भरने का बहुत कम लोगों ने प्रयत्न किया है। इस लेखक का यह विश्वास है कि इस खाई को भरने का काम वैज्ञानिक विधि की प्रक्रियाओं द्वारा नहीं, किन्तु श्रद्धा के प्रयोग से ही सम्भव है। इस प्रकार की श्रद्धा से यह प्रकट हो जाएगा कि परमात्मा केवल 'मुक्ति की योजना' का ही नहीं, प्रत्युत समस्त विश्व का भी 'आदि और अन्त' है। श्रद्धा से ही रोबर्ट ग्रांट के ये गरिमाशाली शब्द सत्य सिद्धि होंगे कि 'परमात्मा हमारा निर्माता, त्राता, मुक्ति दाता, प्रेम कर्त्ता मित्र' है। ईसाई लोग जिस परमात्मा में विश्वास करते हैं और जो सृष्टिकर्ता और मुक्तिदाता दोनों है, वह न तो अयुक्तियुक्त है और न ही युक्तिहीन। बल्कि व्यापक दृष्टि से कहें तो वह सम्भवतः युक्तियों से परे है—जो मनुष्य-निर्मित तर्क प्रणाली के बन्धन में नहीं आता और उसकी सीमाओं से बाहर है। परन्तु यह विश्वास भी बुद्धिपूर्वक ही होना चाहिए क्योंकि 'जो परमात्मा के निकट आता है उसको यह विश्वास करना चाहिए कि प्रभु का अस्तित्व है और जो उस प्रभु की परिश्रमपूर्वक खोज करता है वह उसको पुरस्कृत भी करता है।'

——

अर्ल चेस्टर रेक्स

विश्व केन्द्रीय नियंत्रण के अधीन

गणितज्ञ और भौतिकोविद्

वी०एस-सी०, नौत्रेदाम विश्वविद्यालय। एम० एस-सी०, वाशिंगटन विश्वविद्यालय। दक्षिणी कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय में गणित शास्त्र के भूतपूर्वक प्राध्यापक। जार्ज पैपरडाइन कालेज में भौतिकी शास्त्र के सह प्राध्यापक। "वैक्टर अनैलिसिस" नामक टैक्नीकल ग्रंथ के रचयिता। अमेरिका के गणितज्ञ एसोसिएशन, अमेरिकन भौतिकी अध्यापक संघ तथा अन्य अनेक संस्थाओं के सदस्य। (वैक्टर अनैलिसिस) के विशेषज्ञ।

× × ×

लोगों में प्रचलित आम धारणाएं अक्सर भ्रामक होती हैं। उसका उदाहरण यह है, कि आम तौर पर यह समझा जाता है कि विज्ञान एक ऐसे प्रतिभाशाली और वाचाल वृद्ध सज्जन की तरह है जो सब प्रश्नों का उत्तर जानता है। परन्तु बात ऐसी नहीं है। विज्ञान तो एक ऐसे युवक के सदृश है जो प्रश्न पूछता चला जाता है। वह खूब सोच विचार करता है, और सावधानी के साथ वर्गीकृत टिप्पणियां रखने का प्रयत्न करता है। एक आम वैज्ञानिक यह कभी नहीं समझता कि उसे किसी भी चीज का अन्तिम उत्तर प्राप्त हो गया है और इसीलिए वह अपने ज्ञान से कभी सन्तुष्ट होकर नहीं बैठता।

फिर यह भी समझा जाता है कि निगमनिक तर्क (डिडक्टिव लॉजिक) की शृंखला में विज्ञान एक सीधा पथ-निर्देश करता है। वस्तुतः विज्ञान की तुलना एक अंगूर की बेल से की जा सकती है जो सदा ऊँचा और ऊँचा पहुंचने का प्रयत्न करती है। विज्ञान का रास्ता चक्करदार है जो लगातार घूमता जाता है। उदाहरण के लिए कार्बन १४ की अब पुनः परीक्षा की जा रही है। इस प्रकार विज्ञान का दिशा-पथ लगातार बदलता रहता है और कभी-कभी यह जरूरी होता है कि वापस लौट कर कोई भिन्न पथ बनाया जाए।

गणितशास्त्र, जिससे मेरा थोड़ा बहुत वास्ता है, ऐसी तेज रोशनी की तरह है, जो रास्ते को रोशन कर देने का प्रयत्न करता है, किन्तु विज्ञान के दिशापथ के साथ तालमेल रखने के लिए उस रोशनी की किरण की दिशा लगातार बदलती रहनी

चाहिए। दो या अधिक परस्पर विरोधी मतों में से किसी एक को चुनने के लिए विज्ञान में जो सिद्धान्त स्वीकार किया जाता है, मैं उसी का इस्तेमाल करता हूँ। इस सिद्धान्त के अनुसार जो वाद समस्त प्रसंगागत तथ्यों की सरलतम ढंग से व्याख्या कर सके, उसी वाद या थ्योरी को स्वीकार कर लिया जाता है। चिरकाल पहले, टालमी के इस वाद में कि पृथ्वी सब ग्रहों का केन्द्र है, और कोपरनिकस के इस वाद में कि सूर्य ही सौरमण्डल का केन्द्र है, फैसला करने के लिए इसी उसूल को इस्तेमाल किया गया था। कोपरनिकस की अपेक्षा टालमी की थ्योरी इतनी अधिक उलझी हुई थी कि पृथ्वी को केन्द्र मानने का विचार छोड़ देना पड़ा।

यद्यपि विज्ञान की अपनी सीमाएं हैं, परन्तु उसकी थ्योरियां और निष्कर्ष अपरिमित मूल्य के सिद्ध हुए हैं और विश्व के तथा विश्वात्मा के सम्बन्ध में भी उसका बहुत महत्व है। वैज्ञानिक विषयों का निष्पक्ष अध्ययन करने से मुझे निश्चय हो गया है कि परमात्मा की सत्ता है और वही इस विश्व को नियन्त्रित तथा संचालित करता है। एक 'केन्द्रीय नियन्त्रण' हैं और वह नियन्त्रण-कर्त्ता ही परमात्मा है।

इस बात का सबूत है कि जो घटनाएं देखने में परस्पर असम्बद्ध लगती हैं उनकी भी कोई साझी व्याख्या होती है। विद्युत् के दो आवेशों में या दो चुम्बकीय ध्रुवों के बीच आकर्षण या विकर्षण के लिए कूलम के नियमों में यह बात देखी जा सकती है। न्यूटन के सार्वत्रिक गुरुत्वाकर्षण के नियम के साथ तुलना करने पर इन दोनों नियमों की समानताओं को देखकर में स्तब्ध हो गया। प्रत्येक में दोनों आवेशों, ध्रुव-बलों या पिण्डों के गुणनफल के अनुपात में, और दूरी के वर्ग के विलोमानुपात की ताकत होती है। निश्चायक बात यह है कि उनमें अन्तर हैं। जैसे एक यही बात लो, जब कि दो सदृश आवेश या ध्रुव एक दूसरे से परे जाते हैं, तब दो पिण्ड परस्पर आकर्षित होते हैं। साथ ही यह भी, जबकि विद्युत्-चुम्बकीय तरंगें प्रकाश की गति से यात्रा करती हैं, गुरुत्वाकर्षण अनन्त गति से यात्रा करता है। किन्तु ये अन्तर बताते हैं कि वे भिन्न वस्तुओं से सम्बद्ध हैं, और हमको इस बात के लिए बाधित करते हैं कि हम इस सारे मामले का और अधिक गम्भीर अध्ययन करें।

अन्य खोजों में इसका परिणाम अत्यन्त चमत्कारपूर्ण सिद्ध हुआ है। इसी प्रकार समानता संधारण सिद्धान्त (पैरिटी कन्जरवेशन प्रिंसिपल) उद्देश्य की ओर संकेत करता प्रतीत होता है। इस सिद्धान्त के अनुसार किसी नाभिकीय प्रणाली से निकलने वाले इलेक्ट्रोन नाभिक से खास कोण बनाते हुए समरूपता लिए हुए ही निकलते हैं।

उसके बाद जब हम न्यूट्रिनों का अध्ययन करते हैं, तो यह पैटर्न टूट जाता है। वह समानता के सिद्धान्त का पालन नहीं करता। ऐसा लगता है कि न्यूट्रिनो बाएं से दाएं को जाता है और यह सूचना वह उन अवयवों तक पहुंचा देता है जिनसे वह क्षय-प्रक्रियां में सम्बद्ध है। ये तथा अन्य अनेक उदाहरण यह संकेत करते हैं कि इस विश्व का नियन्त्रण एक ही ईश्वर के हाथ में है न कि उसके प्रतिद्वन्द्वी देवताओं के हाथ में, जैसा कि आदिमकालीन लोग माना करते थे।

जहां तक नियन्त्रण और व्यवस्था का सम्बन्ध है, जीव-विज्ञान-वेत्ता भी हमें ऐसी ही कथा सुनायेंगे। भौतिक पिण्डों की रचना में उन्हें महानतम कुशलता के दर्शन होते हैं। मनुष्य के शरीर में जो रक्तकण हैं, उनका आकार और उनकी शक्ल ठीक वैसी ही है, जैसी इस काम को करने के लिए होनी चाहिए। अन्य अंगों, हिस्सों और कामों के बारे में भी यही वात ठीक है। कीड़े-मकोड़ों की दुनियां में, अन्य हजारों चीजों की अपेक्षा हमें केवल शहद की मक्खी के छत्ते को ही देखने की जरूरत है और हमें उसमें वही परिपूर्ण व्यवस्था और समानता नजर आएगी। संसार भर के लाखों छत्तों में यह बात दिखाई देगी कि अत्यन्त सूक्ष्मता के साथ ज्यामिती के ढंग से उनकी रचना हुई है जिसके लिए महानतम कुशलता की आवश्यकता है। यदि ये सब किसी एक सृष्टिकर्त्ता की बुद्धिमता और सर्वोच्च सत्ता के नियन्त्रण और दिशा-निर्देश को संकेतित नहीं करते, तो वैज्ञानिक होने के नाते जो भी कुछ मैं दावा कर सकता हूँ उस सबको मैं गंवाने को तैयार हूँ।

एक वैज्ञानिक के रूप में परमात्मा और इस विश्व के सम्बन्ध में जो मेरे निष्कर्ष हैं, उनकी पुष्टि पवित्र धर्मग्रन्थों से होती है और मैं इन धर्मग्रन्थों पर विश्वास करता रहा हूं और इस विश्व के उद्गम और संचालन के सम्बन्ध में जो भी कुछ वे कहते हैं उस सब में मैं विश्वास करता हूं। धर्मग्रन्थ और विज्ञान में कोई मतभेद नहीं है। शर्त केवल यही है कि धर्मग्रन्थ की व्याख्या बुद्धिमत्तापूर्वक ठीक ढंग से की जाए। जो आलोचक यह कहते हैं कि बाइबिल में ऐतिहासिक और पुरातत्व सम्बन्धी जो विवरण की बातें कही गई हैं वे अविश्वसनीय हैं, और इसीलिए हम सृष्टि की उत्पत्ति और परमात्मा की दिव्य शक्ति के सम्बन्ध में बाइबिल की उक्तियों में विश्वास नहीं ज़र सकते, मेरा उन लोगों से मतभेद है। इसके अलावा, इन भद्र पुरुषों को यह किसने बताया कि वे ऐतिहासिक और पुरातत्वीय विवरण विश्वसनीय नहीं हैं? अक्सर उन आलोचकों की भूलें बाद में पकड़ी गई हैं जिसके कारण हम उनके अनर्गल प्रलाप को स्वीकार नही कर सकते। प्राचीन मिस्र के लोग फूस से ईंटें बनाते थे—क्या बाइबिल का यह वर्णन इसलिए गलत है क्योंकि खुदाई में फूस के इस्तेमाल किये जाने का कोई प्रमाण नहीं मिला! अब पुरातत्वज्ञ स्वयं यह कहने लगे हैं कि फूस को पहले सड़ाया जाता था और उसके बाद मिट्टी में मिलाया जाता था और इस प्रकार ईंटों को सख्त बनाने के लिए उसको इस्तेमाल किया जाता था। बाइबिल के आलोचकों की आलोचना का आधार समाप्त करने के लिए अनेकानेक उदाहरणों में से केवल यह एक उदाहरण है।

विश्व के सृजन और धारण के सम्बन्ध में धर्मग्रन्थ के वर्णन की अवहेलना करने वाला कोई भी वर्तमान सिद्धान्त या तो समस्त प्रसंगागत तथ्यों की व्याख्या नहीं कर पाता, या वह इतना उलझन भरा होता है कि स्पष्ट समझ में नहीं आता। मैं अपने तईं ऊपर वर्णित, स्वीकृत और पुराने सिद्धान्त को ही पसन्द करता हूं। बाइबिल के उत्पत्ति खण्ड (जैनेसिस) की सरलता और सादगी पर मैं तो मुग्ध हूं।

—०—

मालकम डन्कन विन्टर, जूनियर

धर्म भी विज्ञान-सम्मत है

मैडिकल इन्टरनिस्ट

व्हीटन कालेज से प्राणिविज्ञान में बी० ए० । नार्थ वैस्टर्न यूनिवर्सिटी मैडिकल के स्कूल से एम० डी० । रोचेस्टर के मेयो फाउण्डेशन में तीन साल तक कार्य । मेनेसोटा विश्वविद्यालय से चिकित्सा-शास्त्र में एम० एस-सी० । ऐल्सवर्थ वायु सैनिक अड्डे की अमेरिकन वायु सेना के कप्तान । एल्सवर्थ के उनतीसवें टी-ए० सी० अस्पताल के चिकित्साध्यक्ष । इण्टरनल मैडिसिन के विशेषज्ञ ।

⊠ ⊠ ⊠

धर्म की वैज्ञानिक दृष्टि से वैधता की समस्या को इस प्रश्न के रूप में अधिक ठोस ढंग से पेश किया जा सकता है : "क्या परमात्मा है और क्या व्यक्तिगत रूप से मनुष्य में उसकी रुचि है ?" मैं इस प्रश्न को बुनियादी सवाल समझता हूं—और यह प्रश्न हमारे अस्तित्व की दृष्टि से भी बुनियादी है ।

परमात्मा क्यों होना चाहिए, और उसमें अमुक अमुक विशेषताएं क्यों होनी चाहिएं, और क्यों नहीं होनी चाहियें, इस सम्बन्ध में यद्यपि दार्शनिक तर्क हैं, फिर भी इस प्रश्न पर विचार करने के लिए केवल दो ही मुख्य मार्ग हैं । पहला मार्ग प्रकृति-विज्ञान का है और दूसरा मार्ग ऐतिहासिक और पुरातत्व सम्बधी है ।

जहां तक पहले मार्ग का सवाल है : अपनी समस्त जटिलताओं के साथ यह पृथ्वी और यह विश्व, विभिन्न रूपों में जीवन और अन्तत : अत्युत्कृष्ट चिन्तनशक्ति वाला स्वयं मनुष्य—ये सब इतनी उलझन भरी चीजें है कि इनकी रचना अकस्मात् नहीं हो सकती । इसलिए इन सब के पीछे कोई सर्जनहार अथवा महान् बुद्धिमान, अर्थात् परमात्मा, होना ही चाहिए । मनुष्य के चारों ओर जो भी कुछ है, उस सब का ऊर्ध्व बिन्दु मनुष्य ही है । इसलिए यह भी समझ में आता है कि मनुष्य के रचयिता परमात्मा की मनुष्य में रुचि अवश्य ही होनी चाहिए ।

जहां तक दूसरे मार्ग का प्रश्न है, वह उस चीज़ से पहचाना जा सकता है जिसे सदियों से लोग बाइबिल के नाम से जानते आए हैं। बाइबिल वस्तुतः लेखों या उन पुस्तकों का संग्रह है जो मूलतः धर्मग्रन्थ कहलाती थीं। 'बाइबिल' नाम बिना किसी विशेषण के एक ऐसा समूहवाची नाम है जो इस बात का संकेत करता है कि वह साधारण साहित्यिक रचना से पृथक् और ऊपर की चीज है। बाइबिल में छियासठ पुस्तकें (बुक्स) हैं जो विभिन्न लेखकों द्वारा लगभग चौदह सौ वर्षों के अन्दर लिखी गई हैं। लेकिन फिर भी कुल मिलाकर वह एक क्रमबद्ध रचना है और उन सबका केन्द्र एक ही है—ईसामसीह। बाइबिल के विभिन्न खण्डों को लिखने में यद्यपि चौदह सौ वर्ष लगे हैं और विभिन्न देशों के रहने वाले लेखक, जो एक दूसरे को शायद ही जानते हों, इनकी रचना में लगे रहे, फिर भी हमें इन खण्डों में कहीं परस्पर-विरोधी विचार नहीं मिलते, बल्कि सर्वत्र विचारों की ऐसी एकता मिलती है जो चमत्कार से कम नहीं है। इतना ही नहीं, इन खण्डों के सम्बन्ध में वैज्ञानिक दृष्टि से पुष्ट होने वाली जो सामग्री मिली है, उसे इतिहास और पुरातत्व की खोजों ने आश्चर्यजनक सीमा तक परिपुष्ट ही किया है। जहां तक वैज्ञानिक सामग्री का संबंध है, बाइबिल युगों से एक दृढ़ प्राचीर की तरह खड़ी है। इस बाइबिल में आदि से अन्त तक इसी बात की स्थापना की गई है कि एक ईश्वर रूपी महान् सत्ता है।

दूसरी ओर मनुष्य जो भी कुछ विश्वास करता है, वह वैसा बिश्वास क्यों करता है, इसका बहुत कुछ फैसला उसकी अपनी समझ और परिस्थति पर निर्भर होता है। उदके विश्वासों को 'तथ्यात्मक' और 'बौद्धिक' इन दो भागों में विभक्त किया जा सकता है। उसके तथ्यात्मक विश्वास सही हैं, इस बात का पूरा निश्चय करने के लिए उसे अपने प्रत्येक विश्वास पर वैज्ञानिक विधि का प्रयोग करना होगा। स्पष्टतः यह असम्भव है, क्योंकि ऐसे विश्वासों की संख्या बहुत अधिक होती है और इसके अलावा वे अत्यन्त दुर्बोध भी होते हैं। वह उनको इसलिए सही समझ लेता है क्योंकि जिस समाज में वह रहता है उस समाज में, और जिन पुस्तकों को वह पढ़ता है उन पुस्तकों में, वे विश्वास स्वीकृत होते हैं। इसके अलावा अपने दैनिक जीवन में प्रयोग करके भी वह उन विश्वासों को सही समझ लेता है।

बौद्धिक या सैद्धान्तिक विश्वास प्रायः उपयोगी होते हैं और जिस रूप में वे प्रयुक्त होते हैं उस रूप में सामान्यतया सही भी होते हैं। परन्तु इनको हरेक स्वीकार नहीं करता। इसके अनेक कारण हो सकते हैं। जिनमें से एक कारण यह है कि उनकी यथार्थता सिद्ध करने के लिए बुनियादी सामग्री के अभाव में वैज्ञानिक विधि का पूरी तरह प्रयोग नहीं किया जा सकता।

इन परिभाषाओं के अनुसार परमात्मा की व्यक्तिमत्ता में विश्वास एक सैद्धान्तिक विश्वास है, क्योंकि इस विश्वास को सिद्ध करने के लिए वैज्ञानिक विधि का पूरी तरह प्रयोग नहीं किया जा सकता। इसलिए ऐसे भी कुछ लोग हैं जो इस विचार

को तिरस्कार भरी दृष्टि से देखते हैं कि किसी परमात्मा रूपी व्यक्ति की सत्ता है। इससे पूर्व जिन दो मार्गों का वर्णन किया गया है, वे एक ईश्वर रूपी व्यक्ति की ओर संकेत करते हैं, किन्तु उनमें से कोई भी वैज्ञानिक विधि से उनकी स्थापना नहीं करता। इसलिए (१) विश्वास, (२) अज्ञेयवाद, और (३) नास्तिकता में से किसी एक को चुनने का अन्तिम उत्तरदायित्व स्वयं व्यक्ति पर ही निर्भर होता है।

चिकित्सा के क्षेत्र में मनुष्य के उस रूप पर विचार किया जाता है जो अस्वस्थ होने के कारण तनाव और दबाव में रहता है। चिकित्सा शास्त्र उसके रोग का निदान करने का प्रयत्न करता है और इस बात का विश्लेषण करता है कि अस्वस्थ स्थिति में मनुष्य के शरीर की प्रतिक्रिया क्या होती है? इसलिए परमात्मा में मनुष्य के विश्वास का अध्ययन करने के प्रसंग में चिकित्सा-सम्बन्धी निर्देश भी मूल्यवान् हो सकते हैं।

समस्त बीमारियों को दो घटकों की रोशनी में आंका जा सकता है, एक शारीरिक और एक मानसिक। किसी बीमारी के प्रति बीमार की प्रतिक्रिया या उसका रुख क्या होगा, इसका बहुत कुछ निर्णय इस बात पर निर्भर है कि बीमार की मानसिक स्थिति या मानसिक दृष्टिकोण कैसा है। इस मानसिक प्रवृत्ति को बदलना मुश्किल है और अनेक लोगों में तो मानसिक प्रवृत्तियों को बदलना लगभग असम्भव ही होता है। जिस मनुष्य का मन सब परिस्थितियों के अनकूल अपने आपको ढाल लेने की प्रवृत्ति वाला होता वह आमतौर पर व्याधियों से दूर रहता है। जिस मनुष्य के मन में मानसिक आधियां (आधि=मानसिक रोग, व्याधि=शारीरिक रोग) होती हैं वह प्रायः मानसिक आधियों से ग्रस्त ही रहता है। मनश्चिकित्सा किसी मनुष्य के मानसिक रुझान को केवल ऊपरी सतह तक ही बदल सकती है, इससे अधिक वह और कुछ नहीं कर सकती, और यदि किसी व्यक्ति की पृष्ठभूमि बहुत आघातजनित हो तो मनश्चिकित्सा कुछ नहीं कर सकती। यदि किसी व्यक्ति का व्यक्तित्त्व अत्यधिक बाध्यतापूर्ण हो तो लगातार मनश्चिकित्सा से उसकी स्थिति में थोड़ा बहुत सुधार किया जा सकता है, किन्तु पूर्ण नहीं। यदि किसी व्यक्ति में हिस्टीरिया के लक्षण नजर आवें तो मनश्चिकित्सा की सुझाव-पद्धति (सजेशन सिस्टम) से उसके जहां एक रूप का उपचार होगा वहां हिस्टीरिया का कोई दूसरा रूप उठ खड़ा होगा।

बाइबिल में कहा गया है, "जिस ढंग से भी आप बच्चे का पालन-पोषण करेंगे और उसको प्रशिक्षण देंगे, बूढ़ा होने पर भी वह उस ढंग से जुदा नहीं हो सकेगा"—यह उक्ति खूब खरी उतरी है। मनुष्य के विचारों के ढंग को बदलना बहुत मुश्किल है। मनुष्य बहुत कुछ अपने पालन-पोषण के ढंग की पैदावार होता है—या उस ढंग का एक तरह से शिकार होता है। अधिकांश बच्चे विश्वासों के जिस ढांचे में पाले जाते हैं वे उन्हीं विश्वासों से चिपके रहेंगे। यदि उनका किसी नास्तिक समाज में पालन-पोषण हो तो सम्भावना यही है कि वे भी नास्तिक बनेंगे। यदि

वे आस्तिक वातावरण में पलें तो उनके आस्तिक बनने की सम्भावना है। यदि किसी को विश्वासों का कोई खास ढांचा अपनाने की शिक्षा दी गई हो तो यह जरूरी नहीं है कि वे विश्वास ठीक ही हों, भले ही वह मनुष्य उन विश्वासों को ठीक समझता हो। इस बात को बुनियादी आधार-वाक्य समझा जाना चाहिए। हम सब पूर्व-ग्रहों से युक्त होते हैं, किसी का इस ओर झुकाव होता है, किसी का उस ओर।

अपने सामने आने वाली अनेक समस्याओं के सम्बन्ध में यद्यपि हम निष्पक्ष रुख अपना सकते हैं, किन्तु जब इस प्रश्न का उत्तर देना हो कि "क्या कोई ईश्वर रूपी व्यक्ति है ?"—तब निष्पक्ष दृष्टि रखना असम्भव होता है। इस प्रश्न का हम सब पर इतना अधिक प्रभाव होता है कि हम बचपन से ही अपनी तरह तरह की धारणाएं बनाए होते हैं। हम उन धारणाओं से बच नहीं सकते, न ही उन धारणाओं से बचने की जरूरत है। हमारे अपने अस्तित्व के लिए भी जो प्रश्न बुनियादी महत्व का है, उसका उत्तर दिया ही जाना चाहिए।

मैं स्वयं व्यक्तिगत रूप से इस परिणाम पर पहुंचा हूं कि आत्मिक श्रद्धा के द्वारा ही इस प्रश्न का उत्तर दिया जा सकता है। आगमनिक तर्क (इण्डक्टिव लाजिक) के पश्चात् जब यह कदम उठाया जाए तो यह व्यक्ति को इसी परिणाम पर पहूंचाता है कि व्यक्ति रूप में परमात्मा की सत्ता है। जब मनुष्य एक बार इस परिणाम पर पहुंच जाता है तब परमात्मा स्वयं मनुष्य को इसकी वैधता का आश्वासन देकर उसकी पुष्टि करता है और तब उसका निराकरण नहीं किया जा सकता। आप चाहें तो भले ही इसे पूर्व-ग्रह कह लें, किन्तु मैं अपने व्यक्तिगत अनुभव के आधार पर इसे उससे कुछ अधिक समझता हूं। ईश्वर की व्यक्तिमत्ता में विश्वास व्यक्तिगत ही होता है। आगमनिक तर्क के द्वारा इस विश्वास तक पहुंचा जा सकता है, किन्तु उसे सिद्ध करने के लिए प्रकृति से ऊपर के साधनों की आवश्यकता है। परमात्मा में विश्वास का आधार परमात्मा में श्रद्धा ही है।

बाइबिल में श्रद्धा को 'प्रत्याशित वस्तुओं का सार और अदृष्ट वस्तुओं की साक्षी' कहा गया है। कनाडा के प्रसिद्ध चिकित्सक, जो अमरीका और इंग्लैंड दोनों में 'प्रेक्टिस' किया करते थे, सर विलियम ओसलर ने श्रद्धा के बारे में कहा है कि 'वह एक ऐसी महान् शक्ति है जिसे न हम तराजू पर तोल सकते हैं और न परीक्षा नलिका द्वारा उसका परीक्षण कर सकते हैं।' ईश्वर की व्यक्तिमत्ता में विश्वास बिना श्रद्धा के प्राप्त नहीं किया जा सकता।

डेल स्वार्तजेन दुबर

मिट्टी के कमाल

मृदा भौतिकी विद्

आयोवा स्टेट कालेज से एम० एस-सी०, पी० एच-डी०। कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय में पहले मिट्टी विज्ञान के सहायक प्राध्यापक, फिर परड्यू विश्वविद्यालय में मिट्टियों के सह-प्राध्यापक। अमेरिका जियोफिजिकल यूनियत के और अमेरिकन सोसायटी आफ़ एग्रोनोमिस्ट्स के सदस्य। मिट्टी की रचना और मिट्टी में विद्यमान पानी की गति के विशेषज्ञ।

\+ \+ \+

शहरों में रहने वाले लोग जब गाड़ी में बैठकर किसी देहाती क्षेत्र से गुजरते हैं तब वे खेत में खड़ी फसलों की ओर प्रशंसा भरी दृष्टि से देखते हैं और यह भी जानते हैं कि ये फसलें मिट्टी से ही पैदा हुई हैं, किन्तु आम तौर पर वे स्वयं उस मिट्टी की ओर कोई ध्यान नहीं देते। दूसरी ओर, अच्छे किसान विभिन्न किस्मों और गुणों की ओर बहुत बारीकी से ध्यान देते हैं, तथापि उनसे यह आशा नहीं की जा सकती कि वे उस पदार्थ का पूर्ण रूप से वैज्ञानिक अध्ययन करेंगे जो उनकी आय और जीविका का इतना बड़ा साधन है।

मिट्टी भी अपने आप में चमत्कारों की एक दुनिया है। परन्तु वे चमत्कार वैज्ञानिक अध्ययन से ही सामने आते हैं। मैं पाठकों से अनुरोध करूंगा कि वे सरसरी तौर से किये गये मेरे आगामी संक्षिप्त विवरण पर गौर करें। यह सम्भव है कि आगे अध्ययन किये बिना वह प्रत्येक वाक्य को या कुछ रासायनित नामपद्धति को न समझ सकें, किन्तु वह इतना अवश्य समझ जाएंगे जिससे वह मेरी इस बात से सहमत हो सकें कि मिट्टी चमत्कारों की एक दुनिया है। इसके अलावा इस चमत्कारपूर्ण दुनिया में उस व्यवस्था और प्रयोजन का भी पाठकों को थोड़ा-बहुत ज्ञान हो जाएगा जो उन्हें अनिवार्य रूप से किसी महान् व्यवस्थापक की दिशा में सोचने को बाध्य करे।

हम मिट्टी पर एक क्षीण होने वाली उपज के रूप में दृष्टि डालें। भू-वैज्ञानिक क्षीण होने वाली उपजों को (१) अवशिष्ट आवरण (रेजिड्यूअल मैंटल),

(२)अवशिष्ट गोलाश्म(रेजिड्यूअल बोल्डर्स), और (३)मिट्टी(सॉयल)—इन तीन वर्गों में विभाजित करते हैं। छीजन की प्रक्रिया में होने वाली टूट-फूट और विघटन का यह परिणाम है, परन्तु पृथ्वी पर जीवन को धारण करने में महत्वपूणं भाग अदा करने के कारण मिट्टी अन्य दोनों वर्गों से बिलकुल भिन्न है। मिट्टी का हम यहां पृथ्वी की सतह पर, जिसमें कि पौधे उगते हैं, केवल एक खनिज मिश्रण के रूप में विचार कर रहे हैं। इस दृष्टि से जहां वह पौधों को पोषण देने का स्रोत है वहां भूमि-स्थित पौधों को भौतिक रूप से टिकाए रहने के लिए भी आवश्यक है। जब आग्नेय चट्टानें छीजने लगती हैं तब उनके कैल्शियम मैग्नेशियम और पोटाशियम जैसे घुलनशील आधारभूत द्रव्य काफी कुछ हट जाते हैं और पीछे सिलिकोन एल्यूमीनियम और लोहे के आक्साइड छोड़ जाते हैं—मिट्टी का अधिकांश भाग इन्हीं से बनता है। उसमें फास्फोरस का अंश बहुत अधिक नहीं घटता, किन्तु नाइट्रोजन का अंश आमतौर पर वढ़ जाता है।

मूल सिलिकेट खनिजों के छीजन से मृत्तिका बनती है। मिट्टियों का जो अंश मृत्तिका बनता है उसमें समशीतोष्ण और शीत प्रदेशों में स्फटिकीय सिलिकेट की बहुत अधिक मात्रा होती है, जबकि गैर सिलिकेट द्रव्यों की मात्रा उसमें बहुत कम रहती है। उष्ण प्रदेशों में लोहे और एल्यूमीनियम के हाइड्रस-आक्साइडों की तथा अन्य आक्साइडों की मात्रा अधिक रहती है।

मृत्तिका का एक खास गुण है उसकी धनायन विनिमय क्षमता। इस गुण के कारण उसके घुलनशील आधार द्रव्य बने रहते हैं और वह उन द्रव्यों को बिलकुल शून्य हो जाने से रोकता है। विनिमय के द्वारा होने वाला यह धनायन पौधों के उपयोग में आता है। इस प्रकार जिस छीजन की प्रक्रिया से पौधों में पाये जाने वाले घुलनशील आधार द्रव्यों की हानि होती है वही प्रक्रिया ऐसी अजैव (अनौर्गेनिक) व्यवस्था भी करती है जिसके कारण वे पौधे कायम रहते हैं।

स्थानाभाव से हम यहां पौधों के अन्य पोषक तत्वों पर विचार नहीं करते। उसके स्थान पर हम यह प्रश्न पूछें—किस महान् व्यवस्थापक ने भू-वैज्ञानिक समय में होने वाले प्रथम पौधों के बचे रहने और उनके बढ़ने के लिए व्यवस्था की थी और कैसे व्यवस्था की थी। जिस प्रकार आजकल के पौधों को पोषक द्रव्यों की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार उन पौधों को भी रही होगी। यदि हम यह मान लें तो यह स्पष्ट हो जाता है कि घुलनशील आधार-द्रव्यों की और फास्फोरस की मात्रा उस समय भी काफी रहनी चाहिए। नाइट्रोजन की स्थिति भिन्न थी। इस समय पौधे अपेक्षाकृत काफी मात्रा का उपयोग करते है। पर जब मिट्टी द्वारा अजैव संधारण बहुत दुर्बल था तब आदिम पौधों को नाइट्रोजल कहां से मिली होगी ?

इस बात का सबूत है कि अपरिवर्तित आग्नेय चट्टानों में अस्सी प्रतिशत तक अमोनियामय नाइट्रोजन का अंश रहा होगा। उस समय आक्साइडब बनाने वाली प्रतिक्रिया के अभाव में प्रथम पौधों ने इसी नाइट्रोजन का उपयोग किया होगा। किन्तु

उसके अन्य स्रोत भी हैं। उदाहरण के लिए एक स्रोत है तड़ित या बिजली। अनेक लोग इस तड़ित को केवल विनाश का साधन ही समझते हैं। किन्तु यह ज्ञात है कि तड़ित के आवेशों से नाइट्रोजन के आक्साइड बनते हैं और वे वर्षा या तुषारपात के द्वारा मिट्टी तक पहुंच जाते हैं। इस प्रकार जो तुरन्त उपलब्ध नाइट्रेट नाइट्रोजन बढ़ता था वह कम से कम प्रतिवर्ष प्रति एकड़ पांच पौंड तक था, जो सोडियम नाइ-ट्रेट के तीस पौंड के बराबर है ('दि नेचर एण्ड प्रोपर्टीज आफ सौयल्स' नामक पुस्तक का जो लियोन, वुकमैन और ब्रेडी द्वारा लिखी गई है, पंचम संस्करण।) क्योंकि इन्हीं लेखकों का यह कहना है कि मिट्टी में होने वाली फसल के जारी रहने के लिए जितनी नाइट्रोजन आवश्यक है उससे कहीं अधिक नाइट्रोजन इस प्रकार उपलब्ध हो जाती है, इसलिए यह मानना युक्तियुक्त प्रतीत होता है कि आदिकालीन मिट्टी के द्रव्यों में इस प्रकार मिली हुई नाइट्रोजन ही पौधों की वृद्धि की शुरूआत करने के लिए काफी थी।

तड़ित गर्जन का एक खास पहलू यह भी है कि आर्द्र-समशीतोष्णप्र देशों में गिरने वाले नाइट्रोजन की अपेक्षा उष्ण प्रदेशों में अधिक नाइट्रोजन गिरती है जो अर्ध शुष्क प्रदेशों के लिए निर्धारित नाइट्रोजन से भी कहीं ज्यादा होती है। इस प्रकार वह महान् व्यवस्थापक भौगोलिक प्रदेशों की, उनकी आवश्यकताओं के अनुसार, विविध रूप से सहायता करता है।

मिट्टी और पौधे के बीच अभी जिस आन्तरिक सम्बन्ध की चर्चा की गई है, क्या उसे सचमुच इस बात का सबूत समझा जाए कि स्वयं प्रकृति में ही कोई इस प्रकार की सप्रयोजन व्यवस्था विद्यमान है? इस प्रश्न को विज्ञान से अलग करके उत्तर नहीं दिया जा सकता।

यह बात संदिग्ध है कि वैज्ञानिक लोग, वैज्ञानिक विधि क्या है, इसकी किसी एक परिभाषा पर सहमत हो सकें। परन्तु सम्भवतः अधिकांश लोग टर्नर के 'साइंस' नामक पत्रिका के छः सितम्बर १९५७ के अंक के अग्रलेख में प्रकट किए गए इस विचार से सहमत होंगे, कि विज्ञान की मोटी रूपरेखा यह है कि वह प्रकृति के साधा-रणीकरणों (जिन्हें नियम कहा जा सकता है) की खोज करना चाहता है। तर्क का तकाजा यह है कि जो वैज्ञानिक इस प्रकार के नियमों की खोज करता है उसको उन-की विद्यमानता में विश्वास करना जरूरी होता है। और कुल विज्ञान ने मिलकर अब तक जिन नियमों की खोज की है उनको दृष्टि में रखते हुए उन नियमों की विद्यमानता से इन्कार करना असम्भव है। उन्मुक्त जिज्ञासा-वृत्ति की दृष्टि से यह पूछना भी तर्कसंगत है कि ये नियम मौजूद क्यों हैं। और ऐसा क्यों होता है कि वे नियम, जैसे कि मिट्टी और पौधे तथा अन्य संख्यातीत वैज्ञानिक आन्तरिक सम्बन्धों में, इतने उपकारक और लाभदायक होते हुए परस्पर इतने अनुकूल जंचते हैं।

इस स्तर पर पहुंच कर यह स्वीकार करना होगा कि हम विज्ञान और दर्शन के मध्य सीमान्त प्रदेश पर पहुंच रहे हैं। इस व्यवस्था की व्याख्या हम कैसे कर

सकते है ? बुनियादी तौर से केवल दो ही विकल्प प्रतीत होते हैं। एक विकल्प तो यह हैं कि दृश्यमान व्यवस्था और क्रम केवल उस दिशा की अभिव्यक्ति है जिस दिशा में विकास हुआ है, और वह मूलतः अव्यवस्थित और अस्त-व्यस्त अवस्था से शुरू हुई है। किन्तु इस प्रकार की बात मानना सामान्य बुद्धि के अनुभवों के सर्वथा विपरीत है। और वैज्ञानिक दृष्टि से बोल्टजमान के 'थर्मोडायनेमिक्स के दूसरे नियम' के द्वारा, जिसे सब आधुनिक वैज्ञानिक स्वीकार करते हैं, इस बात को खण्डित कर दिया गया है। इसलिए यह लेखक दूसरे विकल्प को स्वीकार करता है। और वह दूसरा सीधा-सादा विकल्प यह है कि प्रकृति में व्यवस्था केवल इसलिए दृष्टिगोचर होती है, क्योंकि व्यवस्था के निदर्शन के लिए ही उसका निर्माण किया गया है। निस्सन्देह इसका अर्थ होता है किसी अनुभवातीत और परात्पर बुद्धिशक्ति की विद्यामानता को स्वीकार करना। किन्तु अव्यवस्था में से सहसा व्यवस्था उत्पन्न हो गई, यह निष्कर्ष निकालने के बजाय परात्पर शक्ति की विद्यमानता को स्वीकार करना कहीं अधिक युक्तियुक्त और समाधानकारक है। इसलिए यह कहा जा सकता है कि ऊपर मिट्टी और पौधे के जिन आन्तरिक सम्बन्धों की चर्चा की गई है वे प्रकृति में व्यवस्था होने के सबूत हैं। लेखक को यह मालूम है कि इस प्रकार की उद्देश्यपरक व्याख्या करने से उद्देश्यपरक नीतिशास्त्र (टीलियोलोजी) के विरोधी तुरन्त आलोचना पर उतर आयेंगे। यह बात तभी समझ में आ सकती है जब हम यह जानते हों कि आज के अधिकांश वैज्ञानिक अपनी शिक्षा-दीक्षा के बल पर ही न केवल यान्त्रिक परम्परा के अत्यन्त उग्र हामी हैं, प्रत्युत अनेक बार वे अपनी वैज्ञानिक उपपत्तियों को व्यवहार में वास्तविकता का पर्यायवाची समझते हैं। इस बारे में कोनांट ने अपनी 'साइंस एण्ड कामनसैंस' नामक पुस्तक में खूब जोरदार ढंग से लिखते हुए कहा है कि यदि कोई वैज्ञानिक उपपत्तियों और स्पष्टीकरणों को केवल अस्थायी और कामचलाऊ ही माने, तो उसे अनुचित नहीं कहा जा सकता। इस दृष्टि से विचार करने पर, यदि यान्त्रिक वैज्ञानिक मनोवृत्ति की उद्देश्यवाद विरोधपरक उक्ति का खण्डन करना पड़े, तो उस पर विशेष आपत्ति नहीं होनी चाहिए।

सच बात तो यह है कि सर्वत्र और सब स्थानों पर, यह उद्देश्य, प्रयोजन और व्यवस्था, दृष्टिगोचर होती है। ऊपर स्वर्ग में या नीचे रसातल में पहुंच कर भी इससे बचा नहीं जा सकता।

महान् व्यवस्थापक की सत्ता से इन्कार करना ठीक उतना ही तर्कविरुद्ध हैं जैसे किसी पीली पकी लहराती फसल से शोभायमान हरे-भरे खेत की तो तारीफ करना, किन्तु साथ ही सड़क के किनारे अपनी छोटी सी झोपड़ी में रहने वाले गरीब किसान की मौजूदगी से इन्कार करना।

—०—

लीस्टर जान जिमरमैन

मिट्टी, पौधे और ४००० वर्ष पुराना स्पष्टीकरण

मृदा विज्ञानविद् और वनस्पति-क्रिया-विज्ञानविद्

एम० एस-सी०, पी-एच० डी०, परड्यू विश्वविद्यालय। अमेरिका की सौइल कन्सर्वेशन सर्विस में विशेषज्ञ के रूप में कार्य। गोशेन कालेज में कृषि-विज्ञान और गणितविज्ञान के प्राध्यापक। अमेरिकन सोसायटी आफ एग्रोनोमी, सौइल साइन्स सोसायटी आफ अमेरिका, सौइल कन्सर्वेशन सोसायटी आफ अमेरिका और विज्ञान की प्रगति के लिए निर्मित अमेरिकन एसोसिएशन के सदस्य। रासायनिक मिट्टी गवेषणा और मिट्टी की उर्वरता क विशेषज्ञ।

× × ×

कभी कभी हम सब दार्शनिक बन जाते हैं।

हम अनाज बोए गये एक खेत के पास से गुजरते हैं, अपनी वनस्पति वाटिकाओं में विविध वनस्पतियां उगी हुई देखते हैं, अपने उद्यानों में पके फलों और अंगूर से लदी हुई लताओं का अवलोकन करते हैं, शरत् कालीन वनश्री का और उसमें विद्यमान नाना उज्ज्वल रंगों की शोभा का बखान करते हैं और अपने आप से पूछते हैं : ये सब कहां से और कैसे आ गये ?

ईसा ने एक अवसर पर अपने शिष्यों से कहा था : "जब तक एक गेहूं का दाना पृथ्वी में गिरकर मर नहीं जाता तब तक उससे अन्य गेहूं के दाने पैदा नहीं हो सकते।"

ईसा प्रथम कोटि का कृषिशास्त्री था। जीवन प्रारम्भ होने से पहले दाने को मृत्यु का वरण करना पड़ता है—यह कहकर उसने सरल भाषा में प्रकृति का एक अद्भुत तथ्य बता दिया।

मृत्यु और जीवन लाने के लिए उससे पहले पानी का होना आवश्यक है। वनस्पिति के पोषक तत्व के स्रोत का होना भी आवश्यक है। रासायनिक तत्व और यौगिक वह कच्ची सामग्री है जिससे नया जीवन रस ग्रहण करता है और वनस्पति

अपने भोजन के निर्माण में उसका प्रयोग करती है। बढ़ने की शक्ति देने के लिए प्रकाश और ऊर्जा पहले से होनी आवश्यक है।

जीवन मात्र अपनी सत्ता के लिए जल पर निर्भर है। जैसा कि पारसन ने 'कन्सर्विग अमेरिकन रिसोर्सज' नामक अपनी रचना में कहा है : 'पानी पृथ्वी का जीवन रस' है। जीवन और वृद्धि सम्बन्धी अधिकांश रासायनिक प्रक्रियाओं में अभिकारक के रूप में या पैदावार के रूप में जल होता है। जल एक विलायक के रूप में कार्य करता है ताकि आवश्यक रासायनिक प्रतिक्रियाएं घटित हो सकें। अधिकांश स्थानों पर पानी खूब पुष्कल मात्रा में है, और जिस चक्र से पृथ्वी को तथा उस पर पैदा होने वाली हरी भरी वनस्पतियों को पानी प्राप्त होता है वह चक्र लगातार चलता रहता है।

प्रत्येक द्रव्य रासायनिक तत्वों से बना है। पेड़ पौधों की बढ़ती के लिए जो खास तत्व आवश्यक हैं वे सामान्यतया मिट्टी और हवा में पाए जाते हैं। मिट्टी कहां से आई ? पौधों के पोषक द्रव्यों की पूर्ति वह कैसे कायम रखती है?

उर्वर मिट्टी में खनिज द्रव्य होते हैं। किन्तु जैव द्रव्य भी विद्यमान रहता है जो मूलत: अन्य पौधों और प्राणियों के जीवन से आता है। यह जैव द्रव्य विघटन की प्रक्रिया में है। किन्तु विघटन की प्रक्रिया में भी पौधों और प्राणियों का जीवन पुष्कल मात्रा में बना रहता है, यह चमत्कार की बात है। हवा और पानी के साथ मिलकर ये तत्व जीवनदायी प्रक्रियाओं को ठीक ढंग से काम करने में समर्थ बनाते हैं। केवल चट्टान के छिन्न होते हुए खण्डों से बनी मिट्टी उर्वरताशून्य होती है। उर्वर मिट्टी जीवन्त होती है। पौधों और प्राणियों के अत्यन्त सूक्ष्म जीवाणु मिट्टी के जैविक खण्ड के २० प्रतिशत अंश तक विद्यमान रह सकते हैं और यह संख्या इतनी अधिक हो सकती है कि मिट्टी के एक ग्राम में भी कई खरब जीवाणु हों। इस प्रकार पृथ्वी के ठोस हिस्से पर जलवायु के असर से और समय गुजरते-गुजरते उस पर जीवित पदार्थों की वृद्धि से मिट्टी बनी हुई है।

किन्तु ये प्रक्रियाएं कब और कैसे प्रारम्भ हुईं? यह काफी नहीं है कि प्रकाश, रासायनिक द्रव्य, हवा और पानी की उपस्थिति मात्र से पौधे बढ़ते रहें। बीज के अन्दर ऐसी एक शक्ति है जो अनुकूल परिस्थिति में सक्रिय हो उठती है और तब अनेक जटिल और समरस प्रतिक्रियाएं काम करने लगती हैं। दो सूक्ष्म कोषों की, जिनमें से प्रत्येक तत्त्वों और प्रक्रियाओं की उलझनों से भरा है, एकता से जो बीज प्रारम्भ हुआ था वह अब एक नए व्यक्ति को परिपक्व करने की दिशा में अग्रसर होता है। जब एक अनाज का बीज होता है तो अनाज का पौधा उगता है और जब एक बलूत का बीज होता है तब बलूत का पेड़ पैदा होता है। जब बीज मर जाता है तब वह चाहे छोटा हो या बड़ा, बहुत कुछ वैसा ही एक पौधा उससे पैदा होता है, किन्तु वह उस पौधे से हूबहू मिलता जुलता नहीं, जिस पौधे का वह बीज था। वनस्पतियों के बढ़ने की इन

नाना प्रक्रियाओं का कोई अवलोकन करे तो उसे वहां क्रम, सौन्दर्य, समरसता, और निर्भरता दिखाई देती है।

परिवर्तन की सम्भावना भी है। यदि टीक ढंग से बीज का चुनाव किया जाए तो उसी खेत में आस-पास मकई के लम्बे और छोटे वृन्त उगाए जा सकते हैं। उगने से लेकर परिपक्व होने तक के बीच के समय की लम्बाई को नियमित किया जा सकता है। अनेक नई किस्मों की, जिन पर वनस्पतियों के रोग असर न कर सकें, खोज जारी है, और ऐसी बहुत सी किस्में मिल भी गई है। (उदाहरणों के लिए कटलर की 'एग्रोनोमी हैण्ड बुक' नामक पुस्तक देखिए।) कार्यक्षम उत्पादकता भी बढ़ गई है। इस तथ्य का सबूत यह है कि एक एकड़ में तीन सौ बुशल तक मकई की फसल हासिल की जा चुकी है।

जितने भी उच्च प्रकार के पौधे हैं वे यद्यपि एक दूसरे से भिन्न होते हैं, फिर भी उनमें कुछ चीजें समान होती हैं। उनमें प्रकाश संश्लेषण होता है जिसके द्वारा प्रकाश की उपस्थिति में कार्बन डाइ-आक्साइड और पानी से पादप-आहार पैदा होता है। जड़ों, तनों, शाखाओं और पत्तों में रचना की समानता होती है। और उन सब में प्रयोजन की समानता की विशेषता भी निहित होती है। वाह्य उत्तेजनाओं से उनकी अनुक्रिया भी एक जैसी होती है, जैसे कि प्रकाश की ओर झुक जाना या प्रकाश और आक्सीजन के अभाव में मुरझा जाना आदि बातें सब वनस्पतियों में समानरूप से पाई जाती हैं।

वह कौन था जिसने प्रजनन के और वनस्पतियों के विकास के नियम बनाए और उन्हें चालू किया ? स्वभावतः ही यह प्रश्न एक और अत्यन्त आधारभूत प्रश्न की ओर ले जाता है, कि सब से पहले पौधे कहां से आए ? वे अकस्मात् ही पैदा हो गए, यह तो विचार कोटि से भी परे की बात है। और तब किसी बुद्धिमान मूल उद्भावक को मानना आवश्यक हो जाएगा। तब उस प्रश्न को यों कहना पड़ेगा : पहले पौधों को किस ने बनाया ?

इसके उत्तर के लिए मैं एक ऐसी पुस्तक का उद्धरण दूंगा जो कम से कम तीन हज़ार साल पहले लिखी गई थी और जिस पुस्तक में कम से कम चार हज़ार साल पहले हुई घटनाओं का वर्णन है। बाइबिल की 'बुक आफ जाब' के अड़तीसवें अध्याय में परमात्मा जाब से कहता है :

"जब मैंने पृथ्वी की नींव रखी थी तब तू कहां था...जब सुबह के तारे (देवदूत) मिल कर गाते थे और परमात्मा के सब पुत्र (देवदूत) हर्ष-विह्वल होकर चिल्लाते थे ?...या जब समुद्र उमड़ पड़ा तब किसने उसे दरवाजे लगाकर बन्द कर दिया...जब मैंने बादलों को उनकी पोशाक के रूप में बनाया...और आड़ और द्वार लगा दिये और कहा, यहां तक तू आ चुका है, किन्तु आगे नहीं, और तेरी गर्वोन्नत लहरें यहीं रुक जानी चाहिए ?...प्रकाश किस रास्ते से गया, जो पृथ्वी पर पूर्वी हवा को छितरा देता है ? बिजली की कड़क के लिए किसने पथ-विभाजन किया, ताकि उससे

पृथ्वी पर वर्षा हो सके·····ताकि निर्जन और सुनसान जमीन सन्तुष्ट हो सके, और कोमल बूटी की कली खिल सके ?···क्या तू कृत्तिका (वृषभ राशि में नक्षत्र-समूह) को बांध सकता है, या मृग (भूमध्य रेखा पर एक बड़ा तारामण्डल) के बन्धनों को खोल सकता है ? क्या तू ध्रुव (दक्षिणी आकाश में एक तारामण्डल) को उनके मौसम में ला सकता है, और क्या तू स्वाति नक्षत्र का उसके पुत्रों समेत (कक्ष-राशि में अत्यन्त चमकीले सात तारों का गुच्छा) पथ-प्रदर्शन कर सकता है ? क्या तू स्वर्ग के अध्यादेशों को जानता है और क्या तू उनका राज्य इस पृथ्वी पर स्थापित कर सकता है?···कौए को भोजन किसने दिया था जब उसके छोटे-छोटे बच्चे परमात्मा की ओर अभिमुख होकर चिल्लाए थे ?"

विश्व के उद्भव और धारण के प्रश्न का जो उत्तर बाइबिल ने दिया है (और उसमें स्वभावतः वनस्पति-जगत् शामिल है), वही मेरा उत्तर है। समस्त प्रकृति का नियंत्रणकर्ता परमात्मा है और वही इसको लगातार धारण करता है।

ज्यों-ज्यों मैं मिट्टियों और पौधों में प्रकृति के कार्य-कलाप को देखता हूं और उसका अध्ययन करता हूं, त्यों-त्यों ईश्वर के प्रति मेरा विश्वास लगातार बढ़ता जाता है और मैं प्रतिदिन उसके सामने आश्चर्य से अभिभूत होकर उसकी स्तुति करता हुआ नत-मस्तक हो जाता हूं।

—o—

राबर्ट हौर्टन कैमरोन

मनुष्य स्वयं भी एक प्रमाण है

गणितज्ञ

एम० ए०, पी-एच० डी०, कौर्नेल विश्वविद्यालय। प्रिंसटन विश्वविद्यालय में और प्रिंसटन की इन्स्टीट्यूट फौर एडवांस स्टडी में गवेषणा कार्य। मैसाचुसेट्स की इन्स्टीच्यूट आफ टैकनालौजी के कर्मचारी-मंडल में। गत बीस वर्षों से मिनेसोटा विश्वविद्यालय में गणित के प्राध्यापक। इन्स्टीच्यूट आफ न्यूमरीकल एनालिसिस और नेशनल ब्यूरो आफ़ स्टैण्डर्ड्स के विजिटिंग मैथेमेटिशियत। अमेरिका के मैथेमैटिकल एसोसिएशन की ओर से पुरस्कृत। मैथेमैटिकल एनालिसिस, खासकर पिरिओडिक फन्कशन्स, इन्टीग्रेशन इन फेंकशन स्पेस, मैयर यियोरी के विशेषज्ञ।

× × ×

इस गोष्ठी के सम्पादक ने जो प्रश्न उपस्थित किया है मेरे लिए ईश्वर की सत्ता का वह स्वयं एक अच्छा प्रमाण है।

'क्या परमात्मा है?' यह प्रश्न ही विचार का—सोचने की योग्यता का द्योतक है। मैं इस प्रकार की योग्यता की कल्पना तब तक नहीं कर सकता, जब तक किसी में विचार करने की शक्ति न हो।

मैं कोई स्वचालित मशीन नहीं हूं। और आधुनिक यान्त्रिक मस्तिष्क के रूप में जो भी कुछ बनाया जाता है, मेरा चिन्तन उससे बहुत परे तक जाता है। जहां तक तर्क को एक प्रणाली के रूप में बांधने का सवाल है वहां तक तर्क कों भी एक स्वचालित मशीन के रूप में इस्तेमाल किया जा सकता है। किन्तु विचार उससे भिन्न है क्योंकि इसमें नियमों का पालन करने की या उसका तिरस्कार करने की शक्ति निहित है। विचार में तर्क करने की शक्ति, न्याय, सौन्दर्यबोध, संगीत और काव्य का आनन्द और परिहासप्रियता शामिल है।

तर्क यह तो निर्णय कर सकता है कि कोई गणितात्मक युक्ति सिद्धि का काम कर सकती है या नहीं, परन्तु विचार अपनी ओर से नई युक्ति पैदा कर सकता है। वह

नई गणितात्मक कल्पनाओं का आविष्कार कर सकता है और नए साध्यों की खोज कर सकता है। विचार में आत्मविश्लेषण और आत्म-आलोचन की सम्भावना निहित है। एक ऐसी मशीन बनाई जा सकती है जो शतरंज खेल सके, किन्तु वह अपने प्रतिद्वन्दी की गलती पर हंस नहीं सकती, या अपनी गलती पर पछता नहीं सकती। विचार में कुछ ऐसी बात शामिल है जो यन्त्र-विन्यास से या यान्त्रिक नियमों से परे है। इससे मुझे यह संकेत मिलता है कि मनुष्य या मनुष्य जाति की व्याख्या करने के लिए यान्त्रिक दर्शन अपर्याप्त है। क्योंकि मैं सोच सकता हूं, चिन्तन कर सकता हूं।

मैं परमात्मा में इसलिए भी विश्वास करता हूं कि उसने मुझे भावावेग दिए हैं। जब मैं यह बात कहता हूं, तो क्या मैंने अपना सारा पक्ष ही खण्डित कर दिया? क्या मैं यह स्वीकार कर रहा हूं कि मेरे विश्वास में कोई तर्क नहीं है, और मैं इस लिए विश्वास करता हूं क्योंकि मैं विश्वास न करने से डरता हूं, या क्योंकि विश्वास करने से मेरे किसी भावावेग की तृप्ति होती है? ऐसी कोई बात नहीं है। हम जो मानसिक भावनाओं के प्रवाह में बहते हैं वह स्वयं सृष्टिकर्त्ता की बुद्धिमत्ता की निशानी है। यदि हममें भावावेग न होते तो हमारा जीवन कैसा होता? यदि हममें यौन प्रवृत्ति और उससे सम्बद्ध भावनाएं न होतीं तो मानव जाति कब तक जीवित रहती? ऐसा क्यों होता है कि शैशवावस्था में तब मृत्यु संख्या सबसे कम होती है जब बच्चों का प्यार से पालन किया जाता है?

मैं परमात्मा में इसलिए विश्वास करता हूं क्योंकि कि उसने मुझ नैतिक न्याय-बुद्धि प्रदान की है। मानव-जाति में भले और बुरे को पहचानने की एक सहज बुद्धि है जैसा कि सी० एस० लूइस ने अपनी 'दि केस फोर क्रिश्चियनिटी' नामक पुस्तक में स्पष्टता के साथ दर्शाया है। हममें विचार-भेद हो सकता है, किन्तु हम अपने न्यायोचित अधिकारों के लिए दलील देते हैं और यह समझते हैं कि हमारे विरोधियों के लिए भी निष्पक्षता और न्याय कोई निरर्थक शब्द नहीं है।

परमात्मा में मेरा विश्वास बौद्धिक अध्यवसाय—मानवीय संकल्प—पर भी निर्भर है जिसे 'किसी निर्णय पर प्रभाव डालने वाली परिपूर्ण जागरूक प्राक्रिया' कह कर उसकी व्याख्या की गई है। मनोवैज्ञानिकों ने मन की शक्तियों को जिन तीन विभागों में विभक्त किया है उनमें से संकल्प या इच्छा-शक्ति बहुत बड़ा विभाग है (अन्य दो विभाग हैं प्रत्यभिज्ञान और अनुभूति)। मैं इच्छा करता हूं, मैं किसी चीज़ के लिए लालायित होता हूं, मेरी बुद्धि अपना फैसला देती है, और मेरी इच्छा शक्ति उसे प्राप्त करके छोड़ती है।

इन सब गुणों और विशेषताओं की दृष्टि से मनुष्य अन्य सब पार्थिव वस्तुओं से खासतौर से भिन्न है, वह परमात्मा की अनुकृति के सिद्धांत से खूब सम्बद्ध है। 'इसलिए परमात्मा ने मनुष्य को अपनी प्रतिच्छवि के अनुसार बनाया—और इसी वक्तव्य को जोर देने के लिए दुहराया गया है: 'परमात्मा की अनुकृति में उसने मनुष्य को

बनाया' (जैनेसिस १ : २७)। निस्सन्देह पाल के मन में यही बात थी जब उसने मार्स की पहाड़ी पर यूनानी लोगों में प्रचार किया था। कुछ ग्रीक कवियों ने, उसी को उद्धृत करते हुए लिखा है 'मनुष्य परमात्मा की सन्तान है'—या ठीक ढंग से आधुनिक भाषा में कहें तो कह सकते हैं कि मनुष्य 'दिव्य वंश परम्परा का' है।

मैं इस सिलसिले में धर्मग्रन्थ का उद्धरण देने से नहीं रह सका। मेरी सम्मति में बाइबिल जो कुछ मूल रूप से और प्रामाणिक रूप से कहती है, वैज्ञानिक गवेषणा ईश्वर की सत्ता के सम्बन्ध में उससे केवल सहमति ही प्रकट कर सकती है। अपने गर्भ में आने और जन्म के सम्बन्ध में बच्चा कुछ नहीं जानता, बड़े होने पर उसे जो कुछ पता लगता है वह क्या तो उसे माता-पिता द्वारा बताए जाने से पता लगता है, या वह स्वयं जीवन और उसकी गतिविधियों के सम्बन्ध में जो कुछ देखता-सुनता है उससे उसे पता लगता है। इसी प्रकार मनुष्य का मूल उद्भव दिव्य शक्ति से हुआ है, यह स्वयं परमात्मा ने उसको बता दिया है। मनुष्य की अपनी गतिविधि पर्यवेक्षण के क्षेत्र में ही निहित होती है जहां कि वह विविध मानवीय विशेषताओं पर ध्यान देता है, जैसा कि मैंने अभी ऊपर बताया है। और वे विशेषताएं परमात्मा द्वारा मनुष्य की अपनी अनुकृति पर बनाए जाने के सम्बन्ध में धर्मग्रन्थ में वर्णित प्रामाणिक वक्तव्यों की परिपुष्टि करती हैं।

वैज्ञानिक लोग परीक्षण करने की महत्ता पर बहुत बल देते हैं। परमात्मा की सत्ता में मेरा विश्वास भी परीक्षणात्मक प्रमाण पर आधारित है। यद्यपि यह सर्वथा एक निजी मामला है, परन्तु मेरे लिए यह सबूत इतना सबल और निश्चायक है कि गणित का कोई साध्य भी उतना नहीं हो सकता। अब से बत्तीस साल पहले कार्नेल विश्वविद्यालय के एक शयन कक्ष में यह परीक्षण किया गया था और परमात्मा ने मुझे एक नया दृष्टिकोण, नए दिशा-निर्देश, और नए आनन्द (नए शोक भी) दिए। उसके बाद से परमात्मा की सत्ता का प्रश्न मेरे लिए इतना महत्त्वपूर्ण हो उठा कि मैं अपना पद, अपनी वैज्ञानिक प्रतिष्ठा और इस पृथ्वी पर जो भी कुछ मेरा है, अक्षरशः उस सब को छोड़ने को तैयार हो जाऊंगा, किन्तु आस्तिक बनने से पहले की अपनी अवस्था में जाने को तैयार नहीं होऊंगा।

और उस अत्यन्त निजी, घनिष्ठ, पवित्र परीक्षण में मुख्य परीक्षणकर्त्ता वही व्यक्ति था जिसने कभी शाश्वत सत्य की गरिमा और गम्भीरता के साथ यह कहा था : 'मैं आगे बढ़ा और परमात्मा की ओर से आया।' (जान ८ : ४२)

तभी तो मेरी यह दृढ़ धारणा है कि ईश्वर का अस्तित्व है।

——०——

एलमर डब्ल्यू मौरेर

प्रयोगशाला की सीख

गवेषणा रसायनविद्

आयोवा स्टेट कालेज से बी० एस-सी० । पेन्सिलवानिया विश्व-विद्यालय से एम० एस-सी० । अमेरिका के कृषि-विभाग में गवेषणा रसायनविद् के रूप में कार्य । संश्लेषणात्मक प्रक्षालकों के विशेषज्ञ । खास या आम मिट्टयों के लिए सुधरे हुए प्रक्षालकों (डिटरजेंट) की गवेषणा का कार्य।

× ⊠ ×

रसायनविद् के रूप में मैं ईश्वर—पुरुष में विश्वास करता हूं । मेरा विश्वास है कि एक 'दिव्य बुद्धिमान्' है जिसने संसार को और समस्त पदार्थों को बनाया है और मेरे लिए वह 'दिव्य बुद्धिमान्' या ईश्वर-पुरुष एक ही चीज़ है ।

मेरे लिए यह असम्भव है कि मैं विश्व के नियम और क्रम को केवल अकस्मात् का परिणाम कल्पना कर सकूं । गुत्थियां इतनी अधिक हैं कि केवल अकस्मात् को मानने से वे सुलझ नहीं सकतीं । नियम, क्रम, व्यवस्था और बुद्धिमत्ता ये सब साथ साथ चलते हैं ।

वैज्ञानिक के रूप में मैं यह भी विश्वास करता हूं कि ईश्वर का इस संसार पर स्थायी नियंत्रण है । ईश्वर यह जानता है कि प्रकृति के नियमों में भी निश्चितता और स्थिरता है। जब मैं अपनी प्रयोगशाला में कदम रखता हूं तब मैं यह जानता हूं कि जो नियम आज सत्य हैं, वे कल भी सत्य रहेंगे और परसों भी सत्य रहेंगे और जब तक यह विश्व विद्यमान है, तब तक भी सत्य रहेंगे । यदि ऐसा न हो तो प्रयोगशाला में मेरा जीवन परेशानियों की शृंखला बन जाए, ऐसा जीवन जो अनिश्चयों और सन्देहों से भरा हो, और जिसके कारण समस्त वैज्ञानिक गति भी व्यर्थ हो जाए, या सच कहूं तो असम्भव हो जाए । उदाहरण के लिए, मैं प्रयोगशाला में जाकर एक बीकर को पानी से भरकर उसे तब तक गर्म करता हूं जब तक पानी उबल नहीं

जाता। थर्मामीटर का प्रयोग विना किए भी मैं जानता हूं कि वायुमंडल का दबाव जब तक पारे का सात सौ साठ मिलिमीटर रहेगा तब तक उबलते हुए पानी का तापमान सौ अंश (सेंटीग्रेड) ही रहेगा। यदि दबाव सात सौ साठ मिलिमीटर से कम हो तो पानी के कणों को वाष्प बनने के लिए आवश्यक ताप के निमित्त कम शक्ति की जरूरत होगी, इसलिए पानी का उबाल बिन्दु उसी के हिसाव से सौ अंश से कम होगा, किन्तु इसके विपरीत, वायुमण्डल का दबाव सात सौ साठ मिलीमीटर से अधिक हो तो पानी का उबाल विन्दु सौ अंश से अधिक होगा। इस परीक्षण को मैं बार बार चाहे जब कर सकता हूं और जब तक मैं वायुमण्डल के दबाव को जानता हूं तब तक पानी के उबाल-बिन्दु की निश्चयपूर्वक भविष्यवाणी कर सकता हूं।

रसायनविद् लोग दबाव और तापमान के इस सम्बन्ध को बुद्धिमत्तापूर्वक प्रयुक्त करके प्रायः रोज ही चमत्कार पैदा करते हैं। दबाव को खूब घटाकर आसवन (डिस्टिल) करने से हम फलों के रस, निर्जलीकृत आलू, दुग्धचूर्ण इत्यादि प्राप्त कर सकते हैं। इस दबाव और तापमान के सरल सम्बन्ध का प्रयोग किए बिना हमारा गैसोलीन या तेल का उद्योग भी नहीं चल सकता। वस्तुतः हमारी बहुत कुछ गवेषणा और हमारी औद्योगिक प्रक्रियाएं, किसी न किसी रूप में, इस दबाव और तापमान के सम्बन्ध पर निर्भर हैं। यह सम्बन्ध स्थायी है और किसी आकस्मिक घटना का नतीजा नहीं है।

तत्वों की नियतकालिक सूची भी कोई आकस्मिक बात नहीं है। विश्व में नियम और क्रम की यह अत्यन्त सुन्दरता से तैयार की गई योजना है। जैसा कि नाम से ही पता लगता है, यह सूची अनुपम व्यवस्था के ढंग से सब मूल तत्वों का एक संग्रह है जिसमें नियत काल के पश्चात् सदृश गुण या विशेषताएं घटित होती रहती हैं। नियतकालिक चार्ट में तत्वों का उनके परमाणुओं की संख्या के हिसाब से वर्गीकरण किया गया है। आणविक संख्या किसी परमाणु के केन्द्र में विद्यमान प्रोटोनों की संख्या है। इस प्रकार जो सब से सरल तत्व हाइड्रोजन है, उसके नाभिक में केवल एक प्रोटोन होता है, हीलियम में दो, लीथियम में तीन, और इसी प्रकार यह क्रम आगे चलता जाता है।

बढ़ते हुए परमाणु भार के क्रम में रखे हुए इन तत्वों की विशेषताएं परिवर्तनों के एक दुहराए गए चक्र में से गुजरती हैं। किसी पड़ी रेखा में जितने तत्व हैं वे अपने पड़ौसियों से एक प्रोटोन और एक इलैक्ट्रोन से भिन्न होते हैं। इस वर्ग की खड़ी पंक्तियों में जो तत्व होते हैं उनमें इलैक्ट्रोनों की संख्या समान होती है। इलैक्ट्रोनों की समान संख्या के कारण ही खड़ी पंक्ति के तत्वों में समान गुण होते हैं। इस प्रकार लीथियम, सोडियम, पोटाशियम, रुविडियम, सीजियम और फ्रैंशियम इन सब के बाह्यतम कोष में एक-एक इलैक्ट्रोन होता है और इसी कारण उससे समान गुणों वाले तत्वों का परिवार बनता है। हीलियम, निओन, आर्गन, क्रिप्टोन, जेनोन और रेडोन

—इन छः तत्वों के बाहरी कोष स्थायी समाकृति से भरे होते हैं और इस कारण अन्य तत्वों के साथ मिलने की इनमें कोई प्रवृत्ति नहीं होती। ये छहों गैसें क्रियाशून्य हैं।

इसी प्रकार अन्य सब तत्वों का समान गुणों और समान इलैक्ट्रोनों की संख्या के आधार पर परिवारों में वर्गीकरण किया गया है। यह सुन्दर व्यवस्था अकस्मात् का परिणाम नहीं हो सकती। कल्पना करो कि मैं किसी विशाल भिट्टी में प्रोटोनों, न्यूट्रोनों और इलैक्ट्रोनों की अनन्त संख्या को गर्म करता हूं। सौ या दो सौ विभिन्न तत्वों को, जिनमें से हरेक के अपने विशेष गुण हैं, इस प्रकार मिलाकर गर्म कर देने से क्या परिणाम निकलेगा? हमारे नियतकालिक चार्ट में जैसी सुन्दर उनकी व्यवस्था है क्या वैसी सुन्दर व्यवस्था हम प्राप्त कर सकेंगे? मैं पूछता हूं कि यदि मैं आटा, पानी, चीनी, सेव, चेरी और आड़ुओं को मिलाकर इकट्ठा पका दूं तो उसका परिणाम क्या होगा? क्या हम सेव, चेरी और आड़ुओं को अलग अलग हासिल कर सकेंगे?

यदि मैं घूमता हुआ जंगल में चला जाऊं, और अचानक मुझे फूलों और सुन्दर लताओं से ढकी हुई कोई आरामदेह कुटिया नजर आए, तो मैं इस परिणाम पर पहुंचूंगा कि किसी व्यक्ति ने इस कुटिया को बनाया और इसके चारों ओर ये फूल, पौधे और लताएं लगाईं। मुझे अपने मन में यह विचार स्वयं उपहासास्पद प्रतीत होगा कि वे अकस्मात् हो गए। ठीक यही बात मूल तत्वों के साथ, उनके नियतकालिक चार्ट के साथ और प्रकृति के सब नियमों के साथ है। सामान्य तर्क का तकाजा यह है कि कोई व्यक्ति उनकी योजना बनावे, उनका निर्माण करे और फिर वहां स्थापित करे। मेरी दृष्टि में वह योजनाकर्त्ता और निर्माता ही ईश्वर है।

इसके अलावा चिरकाल पहले ही मैंने इस ईश्वर को बाइबिल-वर्णित ईश्वर के रूप में पहचान लिया है। बाइबिल के वर्णनों की वैज्ञानिक यथार्थता के सम्बन्ध में शुरू-शुरू में कुछ कठिनाइयां सामने आईं, किन्तु धीरे-धीरे वे स्वयं दूर हो गईं। उदाहरण के लिए मैं मैथ्यू ५ : १३ में ईसा के इस वचन पर विचार करता था—'तुम इस पृथ्वी के लवण हो। किन्तु यदि लवण की ही लुनाई नष्ट हो जाए तो उसमें लुनाई कहां से आ सकती है? यदि उस पृथ्वी में लुनाई न हो तो वह बेकार है, उसका कोई मूल्य नहीं और उसे लोगों के पांवों तले कुचला ही जाना चाहिए।' इसी प्रकार का एक वाक्य ल्यूक १४ : ३४, ३५ में आया है जो उतना ही परेशान करने वाला प्रतीत होता था : 'लवण अच्छा है, किन्तु यदि लवण में ही लुनाई न रहे तो उस में लुनाई कहां से लाई जाएगी? न वह भूमि के योग्य है, न ही घूरे के योग्य है, किन्तु वह तो फेंकने के योग्य है।'

एक रसायनविद् के रूप में मैं यह सोचा करता था कि लवण अर्थात् सोडियम क्लोराइड एक अत्यन्त स्थिर रासायनिक पिण्ड है। नमक पड़े-पड़े अपने आप खराब नहीं हो सकता। केवल दो ही सम्भव तरीके हैं जिनसे उसका नमकीनपना नष्ट हो

सकता है : (१) उसमें कोई ऐसी रासायनिक प्रतिक्रिया हो जाए कि वह सोडियम क्लोराइड ही न रहे, अथवा (२) उसमें गन्दगियां कहीं से इतनी आ मिलें कि उसका अपना मुख्य स्वाद ढक जाए। मैं प्रथम सम्भावना को स्वीकार नहीं कर सकता और उसके लिए मेरी दलील यह है कि ईसा इतना उत्तम गुरु था कि वह किसी ऐसी रासायनिक-क्रिया का वर्णन नहीं करता जिसे आम जनता न समझ सके। इसलिए प्रश्न का उत्तर गन्दगी ही हो सकता है। इस बीच मैं उस सुन्दर, स्वच्छ श्वेत नमक के बारे में सोचता रहा जिसका हम इतना अधिक उपयोग करते हैं। किन्तु थोड़े से अनुसंधान से समस्या हल हो गई।

रोमन लोग पवित्र भूमि (फिलस्तीन) के लोगों से टैक्स नमक के रूप में वसूल करते थे। फिलस्तीन-वासियों के लिए नमक का मुख्य स्रोत था मुर्दा सागर। ये टैक्स इतने दमनकारी थे कि लोग नमक में रेत या कोई और पार्थिव गन्दगी मिला देते थे (यह नमक वैसा साफ और स्वच्छ नहीं होता था जैसा साफ और स्वच्छ आजकल हमारी खाने की मेज पर रखा होता है।) उस नमक को बड़े-बड़े टैंकों में भर कर और उन टैंकों को पानी से भर कर सरकार नमक को साफ करती थी और उन टैंकों से नमक का खूब गहरा घोल या लवण-जल खींच लेती थी। पीछे जो कुछ बचता था वह मिट्टी से मिला ऐसा पदार्थ होता था जो घुल नहीं सकता था। इस प्रकार सचमुच उस नमक ने अपना नमकीनपना खो दिया, क्योंकि तब वह नमक नहीं रहा। बचा हुआ भाग तो पैरों से कुचले जाने योग्य ही था।

केवल यही एक तरीका नहीं है जिससे नमक अपना नमकीनपना खो सके। मुर्दा सागर की ऊपरी सतह के पानी में वाष्पीकरण होने पर लगभग इकत्तीस प्रतिशत सोडियम क्लोराइड, तेरह प्रतिशत कैल्शियम क्लोराइड और अड़तालीस प्रतिशत मैग्नेशियम क्लोराइड के रासायनिक लवण तथा अन्य गन्दगियां होती हैं। कैल्शियम क्लोराइड और मैग्नेशियम क्लोराइड हवा में से नमी को चूस लेते हैं, क्योंकि वे आर्द्रताशोषी हैं और इस प्रकार वे सोडियम क्लोराइड को अक्षरशः विलीन कर लेते हैं। इस प्रकार के द्रव का स्वाद कुछ तीखा होता है। इस प्रकार के नमक की विशाल राशि को ऐसे घरों में भर के रखने का रिवाज था जिनके फर्श मिट्टी के बने हों। समय पाकर फर्श के साथ लगा हुआ नमक फ़र्श की नमी के कारण खराब हो जाता था। उर्वर भूमि के लिए वह नमक हानिकारक होता इसलिए कोई मनुष्य उसे अपने खेतों में फेंकने को तैयार नहीं होता। केवल एक ही जगह बचती जहां उसे फेंका जा सकता था—वह होती गली या सड़क, जहां वह बार-बार लोगों के पांवों तले आता रहे और कुचला जाता रहे।

इस प्रकार बाइबिल के अनेक वर्णनों की वैज्ञानिक यथार्थता सूक्ष्म विस्तार की दृष्टि से भी सिद्ध हो गई। ऊपर उसका केवल एक उदाहरण ही दिया है। और

जब हम द्रव्य के अपेक्षाकृत बड़े पहलू पर सोचते हैं तो वही बाइबिल हमें इस विश्व के उद्‌गम, इसके संचालन और इसके धारण के लिए ऐसा सही विवरण पेश करती है जिस पर विश्वास किया जा सकता है। मुझे रसायनशास्त्र में या प्रकृति विज्ञान में ऐसी कोई बात नहीं मिली जिससे बाइबिल की किसी बात का खण्डन होता हो। न ही बाइबिल में मुझे कोई ऐसी चीज़ मिलती है जो विज्ञान के विरुद्ध हो। मुझे निश्चय है कि बाइबिल के उत्पत्ति-खण्ड में जिस परमात्मा का वर्णन किया गया है वही इस विश्व की 'उत्पत्ति' का और कभी विफल न होने वाली विपुल और विस्तृत व्यवस्था का सही उत्तर है।

—०—

वेने यू० आल्ट

विज्ञान और धर्म में संगति

भ-रसायनविद्

व्हीटन कालेज से बी० ए० । कोलम्बिया विश्वविद्यालय से एम० एस-सी०, पी-एच० डी। पैलीसेड्स (न्यूयार्क) भू-रासायनिक प्रयोगशाला के रिसर्च फैलो । कोलम्बिया विश्वविद्यालय से सम्बद्ध । अमेरिकन सरकार के भू-वैज्ञानिक सर्वेक्षण विभाग में कार्य । अमेरिकन जीयोफिजिकल यूनियन और जीयोलौजिकल सोसायटी आफ अमेरिका के सदस्य । भू-रासायनिक परियोजनाओं के विशेषज्ञ ।

\+ \+ \+

परमात्मा की सत्ता में मनुष्य तब तक विश्वास नहीं कर सकता, जब तक वह उसके बारे में कोई रचनात्मक दृष्टिकोण न अपनाए । परमात्मा के प्रति विश्वास अपने साथियों के साथ व्यवहार करने में, जीवन के प्रति अपना रुख निर्धारित करने में, और इस प्राकृतिक जगत् के प्रयोजन और उद्देश्य के सम्बन्ध में विचार बनाने में मनुष्य को प्रभावित करेगा । विश्वास करने के लिए वैज्ञानिक तर्कों का अर्थ यह होगा कि ईश्वर-विश्वास तक पहुंचने और उसकी पुष्टि करने में परिकल्पना, परीक्षण और निष्कर्ष की वही विधि अपनाई गई है जो विज्ञान में अपनाई जाती है ।

आजकल वैज्ञानिक अध्ययन का क्षेत्र लगातार बढ़ता जा रहा है और विद्या के अधिकाधिक क्षेत्रों को वैज्ञानिक आधार प्रदान किया जा रहा है । तथापि परमात्मा की सत्ता में विश्वास का कोई सीधा वैज्ञानिक आधार नहीं है, क्योंकि परमात्मा द्रव्य या ऊर्जा में से कोई चीज़ नहीं है । न ही वह ससीम है, जिसके बारे में सीमित मन और सीमित परीक्षण फैसला कर सकें। इसके विपरीत परमात्मा के प्रति विश्वास बहुत कुछ श्रद्धा पर निर्भर होता है, यद्यपि मूल कारण के सम्बन्ध में अप्रत्यक्ष साक्षियों से उस श्रद्धा का वैज्ञानिक समथन होता है।

मानव-ज्ञान के किसी भी क्षेत्र में श्रद्धा प्रसंग-बाह्य, कोई पराई चीज नहीं है, किन्तु भौतिक वैज्ञानिकों को उसे विज्ञान का अंग स्वीकार करना चाहिए । न जीवन

पर्याप्त लम्बा है, न ही प्रत्येक व्यक्ति को यह सुविधा है कि वह स्वयं प्रत्येक परीक्षण कर सके। आमतौर पर कोई आदमी कुछ सीधे-सादे ढंग के परीक्षण ही करता है और उसको अपने से पूर्ववर्ती वैज्ञानिकगण जो कार्य कर चुके हैं उसमें विश्वास पैदा करने के लिए और बुनियादी घटनाचक्र की समझ पैदा करने के लिए उतना ही काफी है। इसका अर्थ यह हुआ कि हमारा अधिकतम ज्ञान अतीत में किए गए परीक्षणों के लिखित इतिहास से प्राप्त होता है। उदाहरणार्थ, बहुत कम लोगों ने वस्तुतः प्रकाश की गति को नापा होगा किन्तु सर्वत्र उसे एक ज्ञात और आप्त-सिद्धान्त के रूप में माना जाता है। ठीक इसी प्रकार जिन चीजों को वैज्ञानिकों ने नहीं देखा है, कल्पना के आधार पर वे उनके माडल तैयार करते हैं और परिकल्पना (हाइपोथेसिस) की वैधता को स्वीकार करते हैं। किसी ने भी प्रोटोन या इलैक्ट्रोन को देखा नहीं है, किन्तु उनके प्रभाव को देखा है। बोहर ने परमाणु का जो माडल तैयार किया है वह ऐसी उपयोगी तसवीर है जिससे परमाणु के व्यवहार का लगभग पूरा अता-पता मालूम हो जाता है। इसके अतिरिक्त, सुदूर नक्षत्रों की रचना और आकाश-गंगाओं के मध्य अवकाश के सम्बन्ध में हमारा ज्ञान परोक्ष-साक्षी और परीक्षणों पर आधारित है। यह स्पष्ट है कि व्यक्ति के लिए इस प्रकार के ज्ञान का अधिकांश भाग विश्वास के आधार पर ही स्वीकार किया जाता है। इस प्रकार का विश्वास अन्धश्रद्धा नहीं है, क्योंकि विभिन्न पहलुओं पर वह अपनी जांच की अनुमति देता है और इस प्रकार उस विश्वास में और दृढ़ता आती है।

श्रद्धा की इसी प्रक्रिया से मनुष्य ईश्वर की सत्ता में विश्वास तक पहुंचता है। पूर्ववर्ती युगों के मनुष्यों के माध्यम से परमात्मा ने मनुष्य जाति के प्रति अपने इलहाम में ज्ञान का लिखित रिकार्ड दिया है। इस लेख से ईश्वर का और ईश्वर के प्रति मनुष्य का सम्बन्ध पता लगता है। उस लेख में मनुष्य की अवस्था, उनकी आवश्यकता और उसके उद्धार का उपाय वर्णित किया गया है। वह देश और काल के अर्थात् भूगोल और इतिहास के, ढाचे में बंधा है। इस दृष्टि से बाइबिल एक अद्भुत पुस्तक है क्योंकि उसमें पहले से ही भविष्य-वाणियां की गई हैं। अनेक सदियों बाद की घटनाओं से सूक्ष्म विवरण की हद तक उनकी पुष्टि होती है। जहां तक मैं जानता हूं, इतिहास और भूगोल ने उसके विवरण की किसी भी बात को ग़लत नहीं कहा, यद्यपि बहुत से क्षेत्र ऐसे हैं जिनके बारे में हमारी जानकारी अधूरी है। उसके दावों की महत्ता बताने के लिए इतना ही काफी है, यद्यपि जो काफी खण्डनात्मक आलोचना की गई है उसका निष्पक्षतापूर्वक विश्लेषण करने पर कोई भी यह देख सकता है कि इतिहास ने तथा पुरातत्व सम्बन्धी हमारी बढ़ती हुई जानकारी ने उन अनेक आलोचनात्मक आक्षेपों को गलत साबित कर दिया और यह दिखा दिया है कि वे आलोचनाएं स्थिति की सही जानकारी न होने के कारण की गई थीं। भविष्यवाणी, इतिहास और भूगोल—इन तीनों को वैज्ञानिक साहित्य का अंग माना जा सकता है

क्योंकि उनकी पुष्टि की जा सकती है।[1]

जैसे कोई मनुष्य अपनी सत्ता के लिए विश्वास को आवश्यक और जीवन का अंग मानता है, ठीक वैसे ही मनुष्य की हस्ती की पूर्णता के लिए ईश्वर का विचार भी आवश्यक है। मनुष्य के अनुभव के कई महत्वपूर्ण क्षेत्र इन्द्रियगोचर नहीं हैं, किन्तु वे वास्तविक हैं, इससे इन्कार नहीं किया जा सकता। हज़ारों बुद्धिमान्, प्रतिष्ठित और समाज में सुस्थापित मनुष्यों ने परमात्मा के साथ अपने चेतन व्यक्तिगत सम्बन्ध की और प्रार्थना की शक्ति की साक्षी दी है। इस प्रकार मनुष्य से, और सब मनुष्यों से, परे इस विश्वास के कारण मनुष्य की मनोविज्ञान सम्बन्धी, भावावेग सम्बन्धी और आत्मा सम्बन्धी आवश्यकताएं पूरी होती हैं।

समस्त भौतिक प्रकृति के पीछे किसी प्रयोजन को स्वीकार करना तर्क-संगत ही माना जाता है। समस्त वस्तुओं के सृजन-कर्ता और नियामक के रूप में परमात्मा का विचार उद्भव, व्यवस्था और प्रयोजन के सम्बन्ध में एक सुसंगत और पूरी तस्वीर पेश करता है। यान्त्रिक दृष्टिकोण मूल उद्गम पर विचार नहीं करता और सृष्टि की घटनाओं को अकस्मात् का परिणाम समझता है। अपने तत्व दर्शन को पूरा करने के लिए वह परमात्मा के स्थान पर अकस्मात् को लाकर रख देता है। किन्तु यदि धार्मिकेतर दृष्टिकोण से विचार किया जाए तो भी अकस्मात् की अपेक्षा ईश्वर का विचार अधिक समाधानकारक है और इस विश्व में जो चमत्कारपूर्ण व्यवस्था दृष्टि-गोचर होती है वह किसी अनियन्त्रित और यादृच्छिक अकस्मात् की अपेक्षा निश्चित रूप से परमात्मा की ओर अधिक संकेत करती है।

अनेक वैज्ञानिक लोग प्रकृति से भिन्न किसी वस्तु में विश्वास करना अवैज्ञानिक बात समझते हैं। किन्तु साथ ही उन घटनाओं को उन्मुक्त रूप से प्राकृतिक कहते हुए वे संकोच नहीं करते जिन घटनाओं के बारे में उन्हें बिलकुल कोई स्पष्ट समझ नहीं है। साफ बात यह है कि उन घटनाओं को 'प्राकृतिक' कहने का अर्थ तो केवल

---

१ यहां लेखक का साम्प्रदायिक पक्षपात स्पष्ट उभर आया है। जब कोई ग्रन्थ इतिहास के किसी निश्चित काल में और भू-मण्डल के किसी निश्चित प्रदेश में लिखा गया हो और ग्रन्थ का लेखक अपने ऊपर ईमान लाने को ही मोक्ष का एकमात्र साधन बताता हो, तब निश्चय ही वह ग्रन्थ सब कालों के लिए, समस्त संसार के लिए और समग्र मनुष्य जाति के लिए अभिप्रेत नहीं हो सकता। उस ग्रन्थ की उपयोगिता केवल सम्प्रदाय-विशेष के अनुयायियों के लिए ही हो सकती है। भविष्यवाणियों के सत्य सिद्ध होने की बात यदि सही मान भी ली जाए, तो भी ईसा के जन्म से पहले और बाइबिल की रचना से पूर्व जिन लोगों ने जन्म लिया उनके उद्धार का उपाय क्या था? बाइबिल को समस्त संसार के लिए एक मात्र धर्म-ग्रन्थ मानने वाले इस वैज्ञानिक के पास भी इसका क्या उत्तर है?—अनुवादक

इतना है कि वे घटनाएं बार-बार होती रहती हैं। किन्तु इससे उन घटनाओं की व्याख्या तो नहीं होती। इस प्रकार किसी स्थान-विशेष या समय-विशेष पर हुई किसी घटना को, चाहे वह प्राकृतिक हो चाहे अप्राकृतिक, स्वीकार करना विशुद्ध विश्वास का ही विषय होगा।

पुनः अपने वैज्ञानिक अनुभव की ओर मुड़ते हुए यह प्रश्न पूछा जा सकता है : अत्यन्त सीमित, स्वयंचालन की क्षमता वाले, रेडार यन्त्र के आविष्कार और निर्माण के लिए क्या अकस्मात् ही उत्तरदायी है ? क्या किसी बल्ले के—हां बल्ले के ही लिए, अकस्मात् ही उत्तरदायी है ? यदि बल्ला अकस्मात् नहीं बन सकता तो रेडार जैसा सूक्ष्म, जटिल और प्रभावशालीं यन्त्र, जिस पर ध्यान देने की और जिसकी मरम्मत की भी जरूरत नहीं, अपने आप कैसे बन सकता है ? वैज्ञानिक व्यक्ति का अनुभव सदा यह रहा है कि कार्य का कारण अवश्य होना चाहिए। इसलिए तर्क की दृष्टि से वैज्ञानिक पहला व्यक्ति होगा जो इस समस्त सृष्टि में और इसके सूक्ष्मतम अंश में निरन्तर रुचि रखने वाली सर्वशक्तिमान्, सर्वज्ञ और सर्वव्यापक परम सत्ता की परिकल्पना करेगा।

जिन घटनाओं की चर्चा की गई है उनके अलावा ऐसी अन्य घटनाएं भी हैं जिनका अर्थ आपाततः ईश्वर-विश्वास से ही समझ में आता है। ये चीज़ें है—अपने असंख्य तारों और आकाश-गंगाओं से भरा यह अनन्त आकाश, अन्तिम आधारभूत अवयवों में द्रव्य का विभाजन, समस्त ज्ञात जीवित पदार्थों में समानताएं, किन्तु फिर भी हरेक की अंगुली छाप की अपूर्वता, प्रत्येक पेड़ का पत्ता और प्रत्येक तुषार-खंड। इसके अलावा वह क्षेत्र भी छोटा नहीं है जिसके कारण मनुष्य अपनी चेतना में और दक्षता में अन्य समस्त पार्थिव प्राणियों से कहीं अधिक बड़ा है।

हमने संकेत किया है कि ईश्वर की सत्ता में विश्वास यद्यपि श्रद्धा का विषय है, किन्तु वह श्रद्धा और विश्वास किसी भी मनुष्य के लिए पराई या अनहोनी बात नहीं है, और यह कि सभी कोटियों के विश्वास अन्धश्रद्धा की कोटि में नहीं आते, किन्तु कुछ बुद्धिमत्तापूर्वक विश्वास की कोटि में भी आते हैं, और यह कि अनेक लोगों ने परमात्मा के साथ अपनी व्यक्तिगत अनुभूतियों की साक्षी दी है। भौतिक विज्ञान की कुछ प्राकृतिक घटनाओं से हमने अपने मन्तव्य को विशद किया है।

ज्ञान की खोज और मनुष्य की वह जिज्ञासु वृत्ति जो प्रकृति के सम्बन्ध में क्यों और कैसे को जानना चाहती है, मनुष्य के मन की ऐसी वृत्तियाँ हैं जो ईश्वर-प्रदत्त हैं। एक बार जब वैज्ञानिक विश्व के स्रष्टा में विश्वास करना प्रारम्भ कर देता है, तो किसी भी दिशा में अध्ययन के परिणामस्वरूप उसका वह विश्वास बढ़ ही सकता है, घट नहीं सकता।

—०—

पाल अर्नेस्ट एडोल्फ

डाक्टरी चिकित्सा में ईश्वर का स्थान

फिज़ीशियन और सर्जन

पेन्सिलवानिया विश्वविद्यालय से एम० एस-सी०, एम० डी०। चाइना इनलैण्ड मिशन के भूतपूर्व मिशनरी। शंघाई (चीन) के सेंट जान विश्वविद्यालय में एनाटमी के सहायक प्राध्यापक। अमेरिकन सेना की मैडिकल कोर के रिटायर्ड लेफ्टिनेंट कर्नल। शिकागो मैडिकल आफिस, अमेरिकन कालेज आफ सर्जन्स के फैलो और मैडिकल मिशन सम्बन्धी अनेक पुस्तकों के प्रणेता। सामान्य सर्जरी और मिशनरी मैडिसिन के, खास तौर से मिशनरियों के स्वास्थ्य के सम्बन्ध में, विशेषज्ञ।

× × ×

इस विचार-गोष्ठी में उपस्थित मुख्य प्रश्न का उत्तर देते हुए मैं यह कहूंगा कि मैं स्वयं परमात्मा की सत्ता और वास्तविकता को निश्चित रूप से स्वीकार करता हूँ। केवल आध्यात्मिक अनुभवों के आधार पर ही मैं इस परिणाम पर नहीं पहुंचा हूँ, बल्कि जिस बात को मैंने विश्वास के रूप में स्वीकार किया है, उसे डाक्टरी प्रैक्टिस ने भी काफी पुष्ट किया है।

जब मैं मेडिकल स्कूल में पढ़ता था तभी मैंने घाव हो जाने के कारण शरीर के तन्तुओं में होने वाले परिवर्तनों के सम्बन्ध में बुनियादी जड़वादी विचार पढ़ा था। ऊतक (टिशु) खंडों का सूक्ष्मवीक्षण यन्त्र से अध्ययन करते हुए मैंने देखा कि ऊतकों में विविध अनुकूल प्रभावों के कारण उनकी संतोषजनक मरम्मत स्वतः हो जाती है। जब डाक्टर के रूप में मैंने एक अस्पताल में अपना जीवन प्रारम्भ किया, तब मुझे कुछ हद तक अपने ऊपर यह विश्वास था कि घायल होने और फिर स्वस्थ होने की प्रक्रिया को मैं इस हद तक जानता हूं कि जब उपचार के लिए उचित यान्त्रिक और दवाई सम्बन्धी सुविधाएं उपस्थित कर दी जाएं तो उसका अवश्य ही अनुकूल परिणाम निकलेगा। किन्तु मुझे बहुत जल्दी ही यह पता लग गया कि मैंने चिकित्सा-सम्बन्धी

अपने विचारों में एक ऐसे विचार को शामिल करने की परवाह नहीं की थी जो उन सब विचारों की अपेक्षा सबसे अधिक महत्वपूर्ण था—और वह था ईश्वर का विचार।

जब मैं अस्पताल में काम कर रहा था तब वहां लगभग सत्तर वर्ष की एक ऐसी बुढ़िया मरीज के रूप में आई जिसकी कूल्हे की हड्डी टूट गई थी। जब मैंने एक के बाद एक उसकी ऐक्स-रे की तस्वीरों का अध्ययन किया तब मैंने देखा कि उसके टिशू अनुकूल क्रिया कर रहे हैं। वस्तुत : असामान्य तेजी से उसके स्वस्थ होते जाने के लिए उसको बधाई भी दी थी। वह पहियेदार कुर्सी के स्तर से आगे बढ़कर बैसाखियों के स्तर तक पहुंच चुकी थी और उनके सहारे चल लेती थी। जो सर्जन उसके केस का इन्चार्ज था उसने मुझे यह संकेत भी दे दिया कि उसे अगले चौबीस घण्टों में वापिस अपने घर जाने के लिए अस्पताल से मुक्त कर दिया जाएगा, क्योंकि उसके शीघ्र और पूर्णत: स्वस्थ होने की सम्भावना के बारे में वह पूरी तरह सन्तुष्ट था।

उस दिन रविवार था। उसकी लड़की अपनी मां से मिलने के लिए अपनी नियमित हफ्तेवारी भेंट के सिलसिले में अस्पताल आई और तब मैंने उसे कहा कि अगले दिन अपनी मां को घर ले जाने के लिए अमुक समय पर आ जाना, क्योंकि अब वह वैसाखियों के सहारे चल फिर सकती है। लड़की ने मुझे उसका कोई जवाब नहीं दिया और वह अपनी मां से बातचीत करने चली गई। उसने अपनी मां को बताया कि मैंने अपने पति से परामर्श कर लिया है और फैसला यह हुआ है कि हम तुम्हें वापिस अपने घर में नहीं लाएंगे, किन्तु वृद्ध जनों के एक आवास-गृह में तुम्हारे रहने की व्यवस्था कर दी जाएगी।

कुछ घण्टों के बाद जब मैं और मरीजों को देखता हुआ उस वृद्धा की शय्या के पास पहुंचा तो मैंने देखा कि उसकी हालत खराब होती जा रही है। अगले चौबीस घण्टों के अन्दर-अन्दर वह वृद्धा मर गई—अपने भंग नितम्ब के कारण नहीं, किन्तु अपने भग्न हृदय के कारण, यद्यपि उसकी हालत लगातार खराब होती हुई देखकर हमने वे सब तात्कालिक उपचार किए जो उसकी हालत सुधारने के लिए आवश्यक थे।

उसके नितम्ब की हड्डी जुड़ गई थी और उसमें कोई कसर बाकी नहीं रही थी, किन्तु उसका टूटा हुआ दिल नहीं जुड़ सका। उसकी हालत सुधारने के लिए विटामिनों, खनिज-द्रव्यों और उसके टूटे हुए स्थान को न हिलने देने के लिए जो कुछ हम कर सकते थे, वह सब हमने किया, किन्तु वह अच्छी नहीं हो सकी। उसकी हड्डी के सिरे जुड़ चुके थे और उसका नितम्ब भी सबल था, किन्तु वह स्वस्थ नहीं हो सकी। क्यों ? उसके स्वस्थ होने में जो सबसे अधिक आवश्यक तत्व था वह विटामिन नहीं थे, न ही खनिज द्रव्य थे, न ही उसकी टूटी हड्डी को जोड़ना था। सब से आवश्यक तत्त्व था—आशा। जब आशा चली गई तो उसके स्वास्थ्य ने जवाब दे दिया।

इस घटना ने मेरे मन पर गहरा असर डाला। मैं लगातार यह सोचता रहा कि इस महिला की यह नियति न होती यदि वह आशा के केन्द्र उस प्रभु में विश्वास करती जिसमें एक सच्चा ईसाई होने के नाते मैं विश्वास करता था। मेरा अन्तस्तल विचलित हो गया। चिकित्सा-वैज्ञानिक के रूप में ईश्वर में और उसे सृष्टिकर्त्ता मानने में मेरा जबर्दस्त विश्वास था, किन्तु येन केन प्रकारेण मैंने अपने भौतिक चिकित्सा-सम्बन्धी ज्ञान को एक ऐसे अलग-थलग कक्ष में बंद करके रखा हुआ था, जैसे कि उसका ईश्वर-विश्वास के साथ कोई सम्बन्ध न हो।

किन्तु क्या इस पृथक्करण को उचित कहा जा सकता है? यहां मुझे इस मरीज ने चिन्ताकुल कर दिया। वह मरीज शारीरिक दृष्टि से ऐसा स्वस्थ बनता जा रहा था जैसे कि सारे संसार की सम्पदा उसे मिलने वाली हो। किन्तु उसकी आत्मा मर चुकी थी, खास कर उसकी आत्मा में आशा की किरण बुझ चुकी थी (क्योंकि अपनी बेटी के साथ घनिष्ठ नाता जारी रखने के आधार पर ही उसकी सारी आशा टिकी हुई थी), इसलिए उसे जीवन के बजाय मृत्यु का वरण करना पड़ा। क्या ईसा के ये शब्द यहां बिल्कुल सही नहीं बैठते : "इससे मनुष्य को क्या लाभ होगा यदि उसे सारा संसार तो मिल जाए, किन्तु वह अपनी आत्मा को खो बैठे?"

तभी मुझे इस चीज का भान हुआ कि मुझे शरीर के उपचार के साथ-साथ आत्मा का भी उपचार करना चाहिए और डाक्टरी और शल्यक्रिया सम्बन्धी उपायों में विश्वास के साथ मुझे अपने ईश्वर-विश्वास का भी प्रयोग करना चाहिए, क्योंकि मैं यह समझता था कि इन दोनों विश्वासों का दृढ़ वैज्ञानिक आधार है। केवल इसी तरीके से, मैंने अपने मन में सोचा, कि मैं मरीज की वह पूर्ण चिकित्सा कर सकता हूं जिसकी उसे आवश्यकता है। इसके बाद और अधिक गम्भीर विचार करने पर मैंने देखा कि वर्तमान चिकित्सा सम्बन्धी उपचार में और परमात्मा में मेरा जो विश्वास है, वह आधुनिक चिकित्सा-दर्शन की जरूरतों को भी पूरा करता है।

हाल के वर्षों में ही डाक्टरों ने चिकित्सा-विज्ञान में मनोवैज्ञानिक तत्वों को महत्व देना शुरू किया है। वस्तुतः मेरा अपना अनुभव भी उसके पक्ष में है। उदाहरण के लिए, विश्वसनीय प्रमाणों के आधार पर आजकल यह माना जाता है कि अमेरिका के बड़े शहरों में जितनी बीमारियां होती हैं उनमें से अस्सी प्रतिशत का मूल कारण मानसिक होता है और इन अस्सी प्रतिशत में से आधी बीमारियों का कोई स्पष्ट शारीरिक कारण परिलक्षित नहीं होता। इस सिलसिले में यह बता देना उचित है कि आमतौर पर सब डाक्टर इस बात को स्वीकार करते हैं कि ये मानसिक बीमारियां, या तथाकथित स्नायविक बीमारियां, किसी भी हालत में काल्पनिक नहीं होतीं। उनके कारण भी काल्पनिक नहीं होते। परन्तु चिकित्सक लोग साधारण अन्तर्दृष्टि का उचित सीमा तक उपयोग करके उन कारणों को पहचान सकते हैं।

इन तथाकथित स्नायविक बीमारियों के बुनियादी कारण क्या हैं? मनश्चिकित्सक जिन महत्वपूर्ण कारणों का निर्देश करते हैं उनमें से कुछ ये हैं : अपराध,

आक्रोश, भय, चिन्ता, विक्षोभ, अनिश्चय, सन्देह, ईर्ष्या, द्वेष, स्वार्थ और उदासी। दुर्भाग्य की बात यह है कि अनेक मनश्चिकित्सक बीमारी पैदा करने वाले भावावेग की गड़बड़ियों के कारणों को तो तलाश कर लेते हैं, किन्तु उन गड़बड़ियों का इलाज करने में वे जिन विधियों का प्रयोग करते हैं उनमें ईश्वर-विश्वास जैसी बुनियादी चीज की उपेक्षा कर जाते हैं।

इसके अतिरिक्त ये मानसिक व्याधियां, जो रोगों को उत्पन्न करने का कारण बनती हैं, इसके सिवाय और क्या हैं जिनके बारे में यीशु ने बाइबिल में कहा है कि वह उनसे हमको बचाने के लिए आया है ? परमात्मा ने बहुत पहले ही हमारी मानसिक आवश्यकताओं को समझ लिया था और उनके लिए पूरे इलाज की व्यवस्था की थी। मनश्चिकित्सकों ने अत्यन्त-सूक्ष्म विस्तार के साथ उस ताले का वर्णन किया है जिसने हमारे लिए स्वास्थ्य का द्वार बन्द किया हुआ है। प्रभु ने अपने ही शब्दों में हमें वह चाबी सौंप दी है जो उस ताले को खोल सकती है।

केवल परमात्मा ही ऐसी कुंजी दे सकता है। अन्ध-परीक्षण ऐसी कुंजियां कभी नहीं बना सकता, जिनसे हमारे जटिल यान्त्रिक ताले खुल सकें, तब वह मनुष्य की आत्मा के द्वार को खोलने वाली कुंजी कैसे तैयार कर सकता है। केवल परमात्मा ही बिना भूलचूक के इस कुंजी की विशेषताएं भी प्रकट कर सकता है। कापर नाम के कवि ने इस बात को कैसे ठीक ढंग से कहा है :

अन्ध-विश्वास जरूर गलती करेगा,
और ईश्वर की कृतियों को वह नहीं जाँच सकता,
ईश्वर स्वयं अपना व्याख्याता है,
और वह उसे स्वयं स्पष्ट कर देगा।

'स्वयं अपने व्याख्याता' के रूप में परमात्मा हमें इस कुंजी के बारे में क्या बताता है ? संक्षेप में वह यह है : कि हम सब पापी हैं और हमें ईसा के माध्यम से परमात्मा की क्षमा की आवश्यकता है, ताकि हम भी पुन : परमात्मा के साथी बन सकें। इस प्रकार क्षमा किए गए पापियों के अन्दर परमात्मा यह शक्ति भर देता है कि वे भय और चिन्ता से मुक्त हो सकें और ऐसी परिस्थितियां तैयार कर सकें, जिनमें निराशा असम्भव हो जाए। जब ईश्वर का प्रेम हमारे हृदयों पर छा जाता है तब ईर्ष्या, द्वेष, स्वार्थ और बुराइयां चली जाती हैं। उदासी आनन्द में बदल जाती है। आशा एक जीवन्त सत्य बन जाती है—केवल जीवन्त ही नहीं, किन्तु औरों में भी जीवन फूंकने वाली।

चिकित्सा-वैज्ञानिक के रूप में अपने औषध शास्त्र के साथ इस आध्यात्मिक आयुधागार से सन्नद्ध होकर मैं वास्तविक आशीर्वाद के साथ अपनी डाक्टरी प्रैक्टिस में रोजमर्रा की बीमारियों से निपट सकता हूं। परमात्मा को अलग रख देने से तो प्राय: अधूरा इलाज ही होता है।

इस प्रकार पाचन अंगों में जो फोड़े हो जाते हैं, जिन्हें अल्सर कहा जाता है, वे मनुष्य जो कुछ खाता है उसके कारण नहीं होते, बल्कि मनुष्य को जो कुछ खाता है, उसके कारण होते हैं।[1] रोगी के आक्रोश का उपचार करना चाहिए। उन आक्रोशों का उपचार करने में हमें सूली पर चढ़े उस ईसा की बुनियादी क्षमा का सामना करना पड़ता है जिसने अपने शत्रुओं के लिए भी क्षमा की याचना की थी। यदि हम सचमुच ईसा के अनुयायी हैं तो आक्रोश, कटुता और ईर्ष्या-द्वेष हमें छोड़ जाएंगे। यदि हम सच्चाई से काम कर रहे हैं तो वे हमें छोड़कर जरूर चले ही जाएंगे। इससे पुनः स्वस्थ हो जाने का मार्ग प्रशस्त हो जाता है, खासतौर से तब जबकि इस आध्यात्मिक उपचार के साथ ऐंठन रोकने वाली और अम्लापहारी दवाइयां दी जाएं और अक्षोभकारक सुपच-सुपथ्य भोजन दिया जाए।

इसी प्रकार अन्य अनेक ऐसी स्नायविक बीमारियां हैं जिनमें काफी बड़ा कारण भय और चिन्ता होते हैं। जब भय और चिन्ता का उपचार ईश्वर-विश्वास के आधार पर किया जाता है, तो बहुत बार स्वास्थ्य नाटकीय ढंग से पुनः लौट आता है।

सीधे ईश्वर-विश्वास के कारण जो बीमारियां एकदम ठीक हो गई हैं उनके उदाहरण देने के लिए यहां स्थान का अभाव है। इस प्रकार के कुछ केसों के उदाहरण मैंने अपनी पुस्तक 'हैल्थ शैल स्प्रिंग फोर्थ' में दिए हैं।

जब शरीर अपने प्रणेता के साथ एकात्म हो जाता है तब शरीर की समस्त क्रियाएं भी सुव्यवस्थित रहती हैं। उसके बिना हम अव्यवस्था और अस्वस्थता के शिकार हो जाते हैं।[2]

हां, परमात्मा है, सचमुच है। मैं जानता हूं—मुझे उसका पुष्कल अनुभव हुआ है। टूटी हुई हड्डियों और टूटे हुए दिलों का उपचार उसी के माध्यम से होता है।

———

१. अन्न की परिभाषा की गई है—

अद्यते अत्ति च भूतानि तस्मादन्नं तदुच्यते।

—जो प्राणियों द्वारा खाया जाता है, किन्तु (अधिक मात्रा में ग्रहण करने पर) जो प्राणियों को खा जाता है, इसीलिए उसे 'अन्न' कहते हैं। अनु०

२. 'स्वस्थ' का शब्दार्थ है=अपने आप में स्थित, अर्थात् अस्वस्थता का अर्थ है अपने यथार्थ रूप में स्थित न रहना।

सेसिल बोइस हैमान

फूल, पक्षी, पानी की बूँद और तारे

जीव-विज्ञानविद्

टेलर विश्वविद्यालय से बी०एस-सी० । पर्ड्यू विश्वविद्यालय से एम० एस-सी०, पी-एच० डी० । पर्ड्यू विश्वविद्यालय में भूत-पूर्व ग्रेजुएट असिस्टेंट । ग्रीनविल कालेज की फैक्टरी के और सेंट लुई यूनिवर्सिटी मैडिकल स्कूल के सदस्य । १९४६ से एस्बरी कालेज में जीव-विज्ञान के प्राध्यापक और विज्ञान तथा गणित-विभाग के अध्यक्ष । आणविक अध्ययनों की ओकरिज संस्था में गवेषणा-कार्य । जीवोपजीवी जन्तुओं के वर्गीकरण के, ट्राइकिनोसिस के, और विष-विज्ञान के विशेषज्ञ ।

× × ×

मैं विज्ञान के साम्राज्य में जहां-कहीं भी पदार्पण करता हूं, वहीं मुझे नियम, व्यवस्था और क्रम का—सर्वोच्च सत्ता का—सबूत मिलता है ।

धूप में चमकती सड़क पर से गुजरो और किसी फूल की चमत्कारपूर्ण बारीकियों पर ध्यान दो, चिड़ियों के सुन्दर संगीत को सुनो और बया के घोंसले को देखो। क्या फूल में कृमियों को आकर्षित करने वाला मधुर-मधु बिना बात के ही पैदा हो गया, जिससे अगले वर्ष और अधिक फूलों का पैदा होना निश्चित हो जाता है ? क्या यह आकस्मिक घटना ही है कि केसर का छोटा-सा कण पुष्प-गर्भ में गिर पड़े और उसमें से एक बीज पैदा हो जाए ? क्या यह अधिक युक्तिसंगत नहीं है कि हम इस बात में विश्वास करें कि परमात्मा के अदृश्य हाथों ने उन नियमों के द्वारा इन चीजों की व्यवस्था की है जिन नियमों को सीखना हम शुरू ही कर रहे हैं ? क्या यह सम्भव नहीं है कि कोकिल अपने साथी को निमन्त्रित करने के लिए न गाती हो, बल्कि इसलिए भी गाती हो कि ईश्वर उसके गान का आनन्द लेता है और जानता है कि यह गान मनुष्य को भी कितना आनन्दित करेगा ? जैसे परमात्मा की स्तुति में पक्षी प्रतिदिन असंख्य ऐसे गीत गाते हैं जो कभी मनुष्य के कानों तक नहीं पहुंच पाते, वैसे ही परमात्मा ने अपने बच्चों को जो उपहार दिए हैं वे इस प्रतीक्षा में हैं कि कभी तो मनुष्य उनकी असलियत तक पहुंचेगा ।

और बया के घोंसले के बारे में क्या कहते हो ? यह सुन्दर कारीगरी उसको किसने सिखाई ? इसका बहुत आसान उत्तर है : 'सहज बुद्धी' परन्तु क्या यह उत्तर आसान है ? सहज प्रवृत्ति भी क्या है ? कुछ लोग कहते हैं कि वह ऐसा व्यवहार होता है जिसे सीखने की भी जरूरत नहीं पड़ती। परन्तु क्या यह मानना अधिक युक्तिसंगत नहीं है कि अपनी समस्त कृतियों में परमात्मा को ही काम करते हुए देखा जाए ? और वह परमात्मा उन सिद्धान्तों के अनुसार काम कर रहा है जिनकी हमें अभी तक बहुत कम जानकारी है ?

हां, मुझे ईश्वर में विश्वास है। मुझे ऐसे ईश्वर में विश्वास है जो केवल सर्व-शक्तिमान् देवता ही नहीं है, और जिसने इस विश्व की रचना ही नहीं की, एवं इसे धारण ही नहीं किया, अपितु वह ऐसा ईश्वर है जिसको अपनी सृष्टि के सर्वोत्कृष्ट प्राणी, मनुष्य, की चिन्ता भी है।

यह दृढ़ विश्वास ईसाई मतावलम्बी अमेरिका की संस्कृति से ही नहीं आया है, किन्तु प्रकृति के चमत्कारों के वैज्ञानिक पर्यवेक्षण से और मेरी आत्मा के अन्दर विद्य-मान ईश्वर की अनुभूति की परीक्षणात्मक जागरूकता से भी आया है।

मनुष्य के चारों ओर ऐसे सवाल बिखरे पड़े हैं जिनका जवाब नहीं मिलता। जब वह इनका उत्तर पाने का यत्न करता है तो अनेक परिकल्पनाएं करता है, किन्तु उत्तर मिलने से पहले उनमें से अधिकांश परिकल्पनाओं का परित्याग कर देना पड़ता है या उनमें आमूल परिवर्तन कर देना पड़ता है। तथापि, उत्तर प्राप्त किए गए हैं और गुजरने वाले प्रत्येक वर्ष के साथ-साथ वे प्राप्त किए जाते रहेंगे। दुर्भाग्य की बात यह है कि तथ्यात्मक ज्ञान में वृद्धि हो जाने का परिणाम यह नहीं हुआ कि ईश्वर के सम्बन्ध में मान्यता और बढ़ जाए। प्रत्युत प्रतीत यह होता है कि मनुष्य ने यह अनु-भव किया है कि किसी चीज की व्याख्या कर देने से जैसे उसने ईश्वर की आवश्य-कता को ही समाप्त कर दिया। काश, लोगों को यह बोध होता कि ये खोजें इस विश्व के पीछे विद्यमान किसी सर्वोच्च बुद्धिमान् सत्ता के समीप हैं।

जब हम प्रयोगशाला में जातें हैं और खुर्दबीन लेकर तालाब के पानी की बूंद की और उसमें गति करते सूक्ष्म जन्तुओं की परीक्षा करते हैं, तो हमारा प्रकृति के महान् चमत्कारों से सामना होता है। यहां एक अमीबा धीरे-धीरे चल रहा होता है और लगभग अदृश्य रूप से एक अपेक्षाकृत छोटा जीव-पिण्ड छा जाता है तथा हमारे देखते ही देखते वह पच जाता है और फुजला पीछे बच जाता है। जब हम देखना जारी रखते हैं तो देखते हैं कि वस्तुतः अमीबा अपने आप को दो भागों में विभक्त कर रहा होता है और वह प्रत्येक भाग एक पूर्ण प्राणी के रूप में पुनर्निमित हो रहा होता है। यहां हमने एक कोष को जीवन की वे सब महत्वपूर्ण हरकतें करते देखा जिनके लिए बड़े प्राणियों को हजारों और लाखों कोषों की जरूरत पड़ती है। यह बात स्पष्ट है कि इतने सूक्ष्म जीव की चमत्कारपूर्ण रचना के लिए अकस्मात् से बढ़कर ही कोई चीज उत्तरदायी है।

विज्ञान के विविध क्षेत्रों में भौतिक नियमों ने जीवन की घटना पर उतना सीधा और कहीं प्रभाव नहीं डाला जितना जीव-रसायन के क्षेत्र में। जहां पहले पाचन और स्वांगीकरण के रहस्यों को दिव्य शक्ति का हस्तक्षेप समझा जाता था, वहाँ अब उनकी व्याख्या रासायनिक प्रतिक्रियाओं के रूप में की जाती है और यह कहा जाता है कि प्रत्येक प्रतिक्रिया एन्ज़ाइम के नियन्त्रण में होती है। किन्तु क्या इस बात से विश्व में परमात्मा की आवश्यकता का निराकरण हो जाता है ? यह फैसला किसने किया कि ये प्रतिक्रियाएं होनी ही चाहिएं और एन्जाइमों के द्वारा इतना ठीक-ठीक उनका नियन्त्रण होना चाहिए ? विविध प्रतिक्रिया-चक्रों और उनकी परस्पर अन्तः-क्रियाओं के चार्ट पर दृष्टिपात करने से ही यह बात स्पष्ट हो जाती है कि अकस्मात् के द्वारा ऐसा नहीं हो सकता ? कदाचित् अन्य किसी स्थान की अपेक्षा मनुष्य यहां इस बात को और अधिक सीखता है कि परमात्मा उन सिद्धान्तों के अनुसार काम करता है जो उसने जीवन की प्रतिक्रियाओं के साथ स्थापित किए हैं।

यदि हम आसमान की ओर नज़र उठाएं तो तारों की क्रमबद्ध शृंखला को देखकर हम हैरान रह जाएंगे। रात के बाद रात, ऋतु के बाद ऋतु, वर्ष के बाद वर्ष, सर्दी के बाद सर्दी—और इस प्रकार बाह्य आकाश के ये अनेक लोक-लोकान्तर अन्तरिक्ष में अपने-अपने निर्धारित मार्ग पर चलते रहते हैं। अपने-अपने वृत्त में वे इतने नियमपूर्वक लौटते हैं कि चन्द्रग्रहण या सूर्यग्रहण की भविष्यवाणी सदियों पहले की जा सकती है। क्या अब भी कोई ऐसा व्यक्ति है जो यह कहने का साहस कर सके कि ये आकाशीय पिण्ड अकस्मात् ही इकट्ठे हो गए हैं और वे अस्त-व्यस्त रूप से इधर-उधर घूमते रहते हैं ? यदि वे किसी नियम के आधीन नहीं होते तो क्या मनुष्य समुद्रों को पार करते हुए उनकी ओर पथ-प्रदर्शन के लिए कभी देखता ? यद्यपि यह तो सम्भव है कि लोग परमात्मा की सत्ता और शक्ति को स्वीकार न करें, किन्तु वे यह स्वीकार करने के इच्छुक अवश्य हैं कि ये आकाशीय पिण्ड किसी न किसी नियम के आधीन हैं और किसी के नियन्त्रण में हैं, एवं साथ ही यह भी कि किसी अकस्मात् के इशारे पर चल कर आकाश में चक्कर लगाने में वे स्वतंत्र नहीं हैं।

हां, खुर्दबीन से देखी जाने वाली पानी की बूंद से लेकर दूरबीन से देखे जाने वाले सुदूर तारा-मण्डल तक मैं उस व्यवस्था को देखकर चकित होता हूं जो व्यवस्था इतनी सूक्ष्म और यथार्थ है कि उसकी संगति को प्रकट करने के लिए नियम बनाए गए हैं, क्योंकि इस प्रकार के नियम बनाए जा सकते हैं। इस बात का विश्वास करने के कारण ही लोग उन ग्रह-नक्षत्रों की खोज में अपना सारा जीवन लगाने को तैयार हो जाते हैं। यदि इस प्रकार का विश्वास और आस्था न होती तो गवेषणा-मात्र व्यर्थ होती। यदि प्रत्येक बार परीक्षण करने पर परिणाम भिन्न-भिन्न आते, क्योंकि वहां कोई भौतिक नियम काम नहीं करता, प्रत्युत नियन्त्रण शक्ति केवल अकस्मात् होती तो क्या कोई प्रगति की जा सकती थी ? इस व्यवस्था के पीछे कहीं-न-कहीं सर्वोच्च

सत्ता होनी चाहिए, क्योंकि किसी सर्वोच्च चेतना के बिना, सर्वोच्च मस्तिष्क के बिना, न कोई व्यवस्था हो सकती है और न कोई नियम हो सकता है। ज्यों ही किसी नए नियम की खोज होती है, त्यों ही क्या वह नियम चिल्लाकर नहीं कहता : 'मेरा निर्माता परमात्मा है, मनुष्य तो केवल खोज-कर्ता है ?'

जैसे विज्ञान की यह तथ्यात्मक साक्षी वास्तविक है, वैसे ही मेरे दैनिक जीवन में परमात्मा की सत्ता वास्तविक है। जैसे हम तारों की फोटो ले सकते हैं, और आकाश में उनके पथ का चित्रण कर सकते हैं, या किसी स्लाइड पर अमीबा को लेकर उसकी फोटो ले सकते हैं, वैसे परमात्मा की सत्ता को सिद्ध करने के लिए कोई इन्द्रियगोचर साक्षी प्रस्तुत नहीं की जा सकती। केवल जब कोई मनुष्य अपने जीवन को इस तरह से ढाल लेता है कि ईश्वर उसके साथ चल सके, तभी उसको व्यक्तिगत रूप से ईश्वर की अनुभूति होती है। यदि कोई मनुष्य अमीबा को खुर्दबीन में देखने से या उसकी फोटो देखने से इन्कार कर दे तो शायद वह कहे कि अमीबा की सत्ता नहीं है, किन्तु जिस क्षण वह अमीबा की फोटो को या अमीबा को देख लेता है, उसी क्षण उसकी युक्ति का आधार समाप्त हो जाता है। यही बात ईश्वर के साथ है। जब तक कोई मनुष्य परमात्मा को देखने से, या निष्पक्ष आंख से उसकी कारीगरी को पहचानने से इन्कार करता है, तभी तक वह जोर-जोर से कहता रहेगा कि ईश्वर की सत्ता नहीं है। यदि एक बार यह अविश्वासी मनुष्य प्रभु की झांकी पा ले तब वह उसकी सत्ता से इन्कार नहीं करेगा। यह एक व्यक्तिगत अनुभव है—और यदि कोई परमात्मा की तलाश करने से इन्कार कर दे तो समस्त युक्तियां व्यर्थ हो जाती हैं। "जो उसकी तलाश करते हैं उनके सामने वह प्रकट होता है।" (हि० कून ६ : २८)

हां, मैं परमात्मा में विश्वास करता हूं—इस विश्व के निर्माता के रूप में और अपने सुहृद् के रूप में। मैं अपने अन्दर और बाहर उसकी सत्ता को अनुभव करता हूं।

—०—

ईश्वर-सत्ता का पूर्ण निश्चय

परिशिष्ट

एण्ड्रयू कौन्वे आइवी, पी-एच० डी०, एम० डी०, डी० एस-सी०, एल-एल० डी०, एफ० ए० सी० पी० ।

शरीर क्रिया-विज्ञान-विद्

डा० आईवी विश्व-विख्यात वैज्ञानिक हैं। यह लेख लिखते समय वे यूरोप और भारत के विश्वविद्यालयों में व्याख्यान-यात्रा से लौटे ही थे। अनेक अमेरिकन और विदेशी वैज्ञानिक संस्थाओं के द्वारा वे अलंकरणों में सम्मानित किये गये हैं। १९२५ से १९४६ तक नार्थ वैस्टर्न विश्वविद्यालय के मैडिकल स्कूल में वे फिज़ियोलोजी और फार्मैकोलोजी (औषध-प्रभाव-विज्ञान) विभाग के अध्यक्ष रहे। १९४६ से १९५३ तक वे इलिनोय विश्व-विद्यालय के वाइस प्रेज़िडेण्ट थे। उसके बाद शिकागो के कालेज आफ मैडिसन में क्लिनिकल साइन्स विभाग के अध्यक्ष और फिज़ियोलोजी के प्राध्यापक रहे। अब तक वे भूतकाल में इन पदों पर रह चुके हैं : नवल मैडिकल रिसर्च इन्स्टीट्यूट के साइन्टिफिक डाइरेक्टर, एविएशन मैडिकल नवल रिज़र्व कोर के कमाण्डर, अमेरिका के युद्ध मन्त्री के परामर्शदाता, अमेरिका आस्ट्रोएण्टरोलोजिकल एसोसिएशन के प्रधान, और अमेरिकन फिज़ियोलौजिकल सोसाइटी के प्रधान। डा० आईवी एक हज़ार से अधिक (१,३२०) वैज्ञानिक लेख लिख चुके हैं, और कैंसर तथा विषूचिका-सम्बन्धी रोगों के संसार-प्रसिद्ध विशेषज्ञ माने जाते हैं।

× × ×

क्या परमात्मा है ? हां मुझे परमात्मा की सत्ता के सम्बन्ध में उतना ही विश्वास है जितना कि अपनी या संसार की किसी भी चीज की सत्ता में विश्वास है।

परमात्मा की सत्ता में विश्वास से ही सत्ता शब्द का पूरा और युक्तियुक्त अर्थ पता लगता है। परमात्मा में विश्वास ही इस पूर्ण निश्चय का अन्तिम तर्क है कि मनुष्य द्रव्य और ऊर्जा के समुच्चय से कुछ अधिक है। मनुष्य के मन को सबसे अधिक प्रेरित करने वाला यह जो मूल विचार है कि मानव मात्र परस्पर भाई हैं, क्योंकि वे परमात्मा रूपी पिता के पुत्र हैं, इस विचार का अन्तिम आधार और स्रोत भी ईश्वर-विश्वास ही है। ईश्वर-विश्वास मनुष्य के अहरणीय अधिकारों और कर्तव्यों का भी अन्तिम और मूल स्रोत है, क्योंकि हम पूर्ण प्रेममय, पूर्ण न्यायमय और पूर्ण दयामय उस प्रभु की दृष्टि में ही समान हैं। ईश्वर-विश्वास वह शक्ति देता है जिससे मनुष्य को यह पक्का विश्वास हो जाता है कि ऐसा विश्वास करने वाले पर कभी विपत्तियां नहीं आ सकतीं। आध्यात्मिक मूल्यों के स्थायित्व में निष्ठा का आधार भी ईश्वर विश्वास ही है, क्योंकि उस प्रकार का स्थायित्व किसी शाश्वत और दिव्य व्यक्तित्व की सत्ता के कारण ही सम्भव है।

ईश्वर की सत्ता को तर्क से सिद्ध किया जा सकता है

मन रूपी यन्त्र के सम्बन्ध में प्रतिदिन हमें जो अनुभूति होती है उसकी आन्तरिक क्रिया के विचार के सिद्धान्तों के प्रयोग से ईश्वर की सत्ता को तर्कपूर्वक सिद्ध किया जा सकता है। इसकी विधिवत् सिद्धि थोमस ऐक्विनास ने की थी। एक सामान्य बच्चे के मन के विकास की प्रक्रिया के दौरान अनेक माता-पिता जिन तथ्यों का निरीक्षण करते हैं, उन्हीं से इस प्रकार की सिद्धि के बुनियादी सिद्धान्त पता लगते हैं। उन लाखों आलोचक-विचारकों के सम्मुख, जिनमें से अनेकों ने विज्ञान और मानवीय कल्याण के क्षेत्रों में महानतम योग दिया है, ईश्वर की सत्ता को तर्कपूर्वक सिद्ध किया जा चुका है और उन विचारकों का उससे समाधान हुआ है।[1]

ईश्वर की असत्ता को तर्क से सिद्ध नहीं किया जा सकता

'परमात्मा है'—इस साध्य को असिद्ध नहीं किया जा सकता। 'परमात्मा नहीं है'—इस साध्य को सिद्ध नहीं किया जा सकता। परमात्मा की सत्ता से इन्कार किया जा सकता है, जैसा कि कार्ल मार्क्स और लेनिन जैसे नास्तिकों ने किया है। किन्तु नास्तिकों ने ऐसा कोई प्रमाण नहीं दिया, जिसे उनकी इन्कारी का समर्थन करने वाली युक्ति-युक्त सिद्धि कहा जा सके। कोई व्यक्ति किसी भी चीज की सत्ता पर सन्देह प्रकट कर सकता है, किन्तु तब भी उसको अपने सन्देह के लिए युक्तियुक्त आधार

---

१. दुर्भाग्य की बात यह है कि जो लोग परमात्मा की सत्ता से इन्कार करते हैं या उसकी सत्ता में सन्देह प्रकट करते हैं, वे आस्तिक व्यक्तियों की अपेक्षा प्रचार-कला में पटु होने के कारण अधिक प्रचार पा जाते हैं।—अनु०

पेश करना होगा। मैंने आज तक इस साध्य का कोई युक्ति-युक्त आधार नहीं पढ़ा और न ही सुना कि परमात्मा नहीं है,। किन्तु परमात्मा है, इस सम्बन्ध में मैंने युक्तियुक्ति प्रमाण पढ़े भी हैं और उनका अध्ययन भी किया है। मैंने यह भी देखा है कि परमात्मा के प्रति सच्चे विश्वास का जनता पर क्या असर पड़ता है और परमात्मा के प्रति अविश्वास से जनता कितनी भीरु बन जाती है।

'परमात्मा है'—इस साध्य के लिए नास्तिक लोग और अनेक अज्ञेयवादी लोग जिस प्रकार की सिद्धि की मांग करते हैं वह इस ढंग की होती है जो परमात्मा को एक मनुष्य प्राणी के सदृश या एक मूर्ति या बुत के समान ठोस सिद्ध कर सके। यदि इस प्रकार के गुणों वाले परमात्मा की सत्ता होती तो उसकी सत्ता के सम्बन्ध में मनुष्य को चुनाव की स्वतन्त्रता न होती। क्योंकि, मनुष्य में निर्णय करने की स्वतन्त्रता रहे—यह बात परमात्मा की योजना में है, इसलिए मनुष्य को यह छूट है कि वह स्वयं इस बात का फैसला करे कि परमात्मा में विश्वास करना चाहिए या नहीं। यह फैसला करने को मनुष्य पूरी तरह आजाद है कि वह अपने मनमाने तर्कों द्वारा परमात्मा की सत्ता के प्रति सन्देह प्रकट करे या उसकी सत्ता को अस्वीकार कर अपने आपको धोखा देता रहे और परिणामस्वरूप कष्ट भोगे।

अनेक नास्तिक और अज्ञेयवादी तथा बहुत से तथाकथित धार्मिक लोग भी ईश्वर को एक ऐसी हस्ती के रूप में समझते हैं जिससे कोई सौदेबाजी की जा सके। इसीलिए वे कहते हैं : 'मैं भला बन जाऊंगा, यदि परमात्मा मेरी आत्मा की रक्षा करे। मैं परमात्मा में विश्वास करने लग जाऊंगा यदि वह जरूरत पड़ने पर हमारे लिए वर्षा भेज दे और आए दिन आने वाली बाढ़ों को रोक दे, या मेरे शरीर का अमुक रोग दूर कर दे, या संसार से अन्याय और बुराई को समाप्त कर दे। यदि परमात्मा होता, और साथ ही भला भी होता, तो मेरे दांत में दर्द नहीं होता।' दूसरे शब्दों में, 'मैं परमात्मा में विश्वास कर लूंगा यदि वह मेरी योजना, मेरे स्वार्थ-पूर्ण मन की योजना और मेरी बुद्धि की योजना के अनुसार इस संसार का निर्माण करे या पुनर्निर्माण करे।'

परमात्मा तक पहुंचने के लिए, सीधे और सुसंगत रूप से सोचने के लिए लोगों को चाहिए कि वे ईमानदारी से अपने मन में से स्वार्थ, सनक, कटुता तथा वे चीजें निकाल दें जो मन के स्पष्ट चिन्तन में बाधक हैं, ताकि वे परमात्मा में विश्वास करने को तैयार हो सकें, और उससे प्रेम कर सकें, और इस प्रकार उस अन्याय और बुराई के उन्मूलन में योग दे सकें, जिसकी वे इतनी चर्चा करते हैं और इतनी निन्दा करते हैं। ईश्वर की वास्तविकता के सम्बन्ध में युक्तियुक्ततापूर्वक इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि परमात्मा उतना ही वास्तविक है जितनी कि संसार की और कोई चीज, क्योंकि अनेक सन्तों और ईश्वर के सच्चे भक्तों ने अपने जीवन के द्वारा जिस वास्तविक ईश्वर-प्रेम का परिचय दिया है, उसे अन्यथा नहीं कहा जा

सकता। संसार में विद्यमान बुराई की शिकायत करने की बजाय अधिक अच्छा तो यह है, कि हम यह मानें कि वह बुराई भी परमात्मा की योजना का एक भाग है ताकि हम उस बुराई के उखाड़ने में योग देने के लिए अपनी बुद्धि का और अपने निर्णय-स्वातन्त्र्य का परिचय दे सकें, क्योंकि तभी यह बात सत्य हो सकती है: 'तेरा साम्राज्य आये, स्वर्ग की तरह इस पृथ्वी पर भी तेरी इच्छा पूर्ण हो।'

निष्ठा, आशा और प्रेम तर्क पर आधारित होने चाहिएं

जिस ईश्वर ने हरेक वस्तु को पैदा किया है, जो विश्व के अन्दर और बाहर ओत-प्रोत है और जो सदा मेरे और तुम्हारे हित की कामना करता है, उसमें पहले तो मेरा विश्वास तर्क पर आधारित है, फिर निष्ठा, आशा और प्रेम पर। यह निष्ठा, आशा और प्रेम भी मुझ में तब तक नहीं हो सकते जब तक वे तर्क पर आधारित न हों।

तर्क से परे भागने की आवश्यकता नहीं है। तर्क का ठीक ढंग से और जोर के साथ प्रयोग करना चाहिए। जो श्रद्धा तर्क पर आधारित नहीं है, वह दुर्बल श्रद्धा है और खण्डन तथा परेशान करने वाले आघातों से वह छिन्न-भिन्न हो सकती है। यदि धार्मिक श्रद्धा भी तर्क पर आधारित न हो तो उससे आचार-व्यवहार दूषित ही होता है। उस तर्क से और विचार के उन सिद्धान्तों से परे नहीं भागना चाहिए जिन पर हमारे दैनिक सांसारिक जीवन में प्रकट होने वाले कार्य और विश्वास टिके हुए हैं और जिन पर हमारे महानतम वैज्ञानिकों के विचार और कार्य आधारित हैं। ईश्वर-विश्वास तर्क और विचार के उन्हीं सिद्धान्तों पर आधारित है जिन पर भौतिक प्रगति के भविष्य में विश्वास टिका है। जिस तर्क-प्रणाली के कारण मैं या आप यह विश्वास करते हैं कि सूर्य कल सवेरे उदय होगा, या कल भी मुझे दैनिक जीवन की आवश्यकताएं पूरी करनी पड़ेंगी, या मैं जीवित रहूंगा, या अपने कार्य में आनन्द लूंगा—वही तर्क-प्रणाली ईश्वर-विश्वास पर भी लागू होती है। यदि तर्क भौतिक प्रगति का आधार बनाया जा सकता है तो आध्यात्मिक या नैतिक प्रगति के लिए उसे आधार क्यों नहीं बनाया जा सकता? हरेक को इस योग्य होना चाहिए कि वह अपने धार्मिक विश्वास के लिए साहस के साथ तर्क पेश कर सके और अपने सदाचरण के द्वारा वह उस विश्वास की सचाई भी सिद्ध कर सके।

यदि आप परमात्मा की सत्ता को सन्तोषजनक ढंग से सिद्ध नहीं कर सकते तो आपको श्रद्धा के आधार पर ईश्वर को मानना होगा, या आप यह कहेंगे कि ईश्वर की सत्ता स्वयंसिद्ध है, जैसा कि थामस जेफरसन ने किया था जब उसने 'स्वतन्त्रता की घोषणा' का 'सार' लिखा था। उसने कहा था: 'हम इन सचाइयों को स्वयंसिद्ध मानते हैं, कि सब मनुष्यों को समान पैदा किया गया है, कि उनके सर्जक ने कुछ ऐसे जन्मजात अधिकार उन्हें प्रदान किए हैं, जिन्हें छीना नहीं जा सकता—और उन अधिकारों में शामिल हैं जीवन, स्वतंत्रता और सुख की खोज, कि इन अधिकारों

की रक्षा के लिए मनुष्य-समाज में सरकारें स्थापित होती हैं और वे सरकारें शासितों की अनुमति से ही अपनी न्यायोचित शक्ति ग्रहण करती हैं।' यह धार्मिक, नैतिक और राजनीतिक निष्ठा का ऐसा महत्वपूर्ण वक्तव्य है जिस पर अमेरिका का संविधान और उसकी सरकार टिकी हुई है। इस प्रकार की बुनियाद पर आधारित होने वाली संयुक्त राज्य अमेरिका की पहली ऐहिक सरकार है। थामस जैफरसन तथा अमेरिका के अन्य संस्थापकों के समक्ष निर्दोष तर्क थे जिन पर उनकी ऐसी निष्ठा आधारित थी।

तथापि, जब लोग कहते हैं कि वे परमात्मा की सत्ता को विश्वास के आधार पर मानते हैं, तो पता यह लगेगा कि उनका विश्वास किसी पूर्ववर्ती ज्ञान, अनुभव या तर्क पर आधारित है। किसी भी चीज़ में विश्वास के लिए किसी न प्रकार का पूर्वानुभव या तर्क अनिवार्य है। जब कोई यह कहता है कि ईश्वर की सत्ता स्वयंसिद्ध है, तो उसका अर्थ यही होता है कि वह यह कहना चाहता है—अपनी शिक्षा की कमी के कारण, या कभी मैंने अपनी तर्क-सामर्थ्य संचित नहीं की, इस कारण, या फिलहाल तर्कों को पेश करने का उचित समय नहीं है या इस समय मैं तैयार नहीं हूं, इस कारण, अपने विश्वास को वैज्ञानिक ढंग से पुष्ट नहीं कर सकता। मैंने आज तक कभी कोई ऐसा पुरुष या महिला नहीं देखी जो यह पूछने पर कि तुम परमात्मा में क्यों विश्वास करते हो—उत्तर में तर्क पेश न कर सका हो। और जो भी तर्क दिया गया उसका परिणाम सदा एक ही होता था : 'कि किसी न किसी को तो इस संसार का और इस संसार को चलाने वाले नियमों का निर्माण करना था,' या 'कोई भी यन्त्र बिना निर्माता के नहीं बन सकता।' यह ऐसी बुनियादी सचाई है जिसे हरेक बच्चा और बूढ़ा समझता है।

बच्चे के मन में प्रथम सिद्धांतों का विकास

जब मैं तीन साल का था, (तीन से पांच साल तक के बच्चों के साथ बहुधा ऐसा ही होता है,) तब मैंने अपने मां-बाप से पूछा : 'मुझे किसने बनाया ? 'पक्षियों को किसने बनाया ?' 'हमारी गाय को किसने बनाया ?' 'इस संसार को किसने बनाया ?' जीवन के तथ्य, या मेरा इन्द्रियानुभव मेरे विकसित होते हुए मन पर ऐसी क्रिया कर रहे थे कि मेरा बाल-मन और मेरी निश्छल बुद्धि भी इस परिणाम पर पहुंची थी कि कोई भी 'यन्त्र बिना निर्माता के' नहीं बन सकता। मेरी बुद्धि ने तात्कालिक तथ्यों से परे की बात को पूछने के लिए मेरे मस्तिष्क को प्रेरित किया—अर्थात् मैं अपने आपको, पक्षी को और गाय को देखता था किन्तु साथ ही यह भी समझता था कि बिना किसी पर्याप्त कारण—निर्माता—के न मैं हो सकता था, न पक्षी हो सकता था, न गाय हो सकती थी।

मेरे सरल, अकृत्रिम, अबोध, अक्षुब्ध, आधि-शून्य, चिन्तारहित, युक्तिवादी मन ने सत्ता और विचार के एक ऐसे अत्यन्त बुनियादी दार्शनिक और वैज्ञानिक सिद्धान्त

का पता लगा लिया था और उसे प्रकट कर दिया था जिसे मनुष्य के मन ने कभी भी सोचा हो।

मन के विकास की प्रक्रिया ने मेरे दिमाग पर इन्द्रियानुभव के साथ मिलकर ऐसा असर डाला कि मेरी बुद्धि इतनी विकसित हो गई कि मैं सत्ता की समझ व्यक्त कर सकूं, या यह समझ सकूं कि 'मैं हूं' या 'मेरी सत्ता है।' मेरे मन ने असत्ता की समझ भी व्यक्त कर दी, 'मैं पक्षी नहीं हूं। या गाय नहीं हूं, या भौतिक दुनिया जैसी चीज़ नहीं हूं।' दूसरे शब्दों में मेरे मन ने सत्ता और असत्ता के सिद्धान्त को व्यक्त कर दिया। उसने अंश और समग्र का भाव भी, कि समग्र अंश से बड़ा होता है, व्यक्त कर दिया।

बच्चे के मन में ज्यों ही यह सत्ता-असत्ता की समझ पैदा होती है, त्यों ही बालक चिन्तन के प्रथम सिद्धान्त, अर्थात् 'हम एक ही समय किसी चीज को स्वीकार या अस्वीकार नहीं कर सकते'—से भी अवगत हो जाता है। छोटा-सा बालक कहता है : 'मैं टाम हूं और 'वह मेरी बहन मेरी' है। छोटा बालक भी इतना बुद्धिमान होता है कि बिना मजाक के वह यह कभी नहीं कहेगा कि 'मैं मेरी हूं और मेरी बहन टाम है।' बालक बहुत जल्दी यह भी जान जाता है कि किसी चौकोर चीज को गोल कहना गलत है। बालक जानता है किसी चीज को चौकोर क्यों कहते हैं, उसका खास कारण होता है, इसलिए जहां वह कारण नहीं होता उसे चौकोर नहीं कह सकते।

बालक का यह ज्ञान और यह तथ्य कि उसने पूछा है : 'मुझे किसने बनाया' और 'संसार को किसने बनाया'—यह सिद्ध करता है कि बालक ने कार्यकारणता के बुनियादी सिद्धान्त को खोज लिया है। इस सिद्धान्त को यों भी कहा जा सकता है कि 'बिना निर्माता के कोई यन्त्र नहीं हो सकता,' क्योंकि प्रत्येक परिवर्तन के लिए कुछ न कुछ कारण होगा।' 'मेरी सत्ता' या 'संसार की सत्ता' के निर्णय से कार्यकारण शृंखला आदिकारण परमात्मा तक, या गति की विद्यमानता से किसी आदि चालक तक, पहुंच जाती है। चिन्तन की प्रवृत्ति को बताने के लिए एक दूसरा तरीका यह है : 'व्यवस्था सर्वत्र स्पष्ट है, व्यवस्था के पीछे व्यवस्थापक होना चाहिए, उस व्यवस्थापक में अनन्त गुण होने चाहिएं, और वह परमात्मा ही हो सकता है। कार्य और कारण के सम्बन्ध का प्राकृतिक नियम इतना जबर्दस्त है कि तीन से पांच साल तक के बच्चे का विकसित होता हुआ मन भी यह जानता है कि कोई न कोई सृष्टिकर्त्ता होना चाहिए।

तात्कालिक ज्ञात तथ्यों से परे के कारण की खोज करने के लिए एक वैज्ञानिक के रूप में मैंने अपना जीवन अर्पित कर दिया है। इन्द्रियों के अनुभव से विकसित होते होते मेरा मन यह आग्रह करता है कि सत्ता के भौतिक और आध्यात्मिक पहलुओं के सत्यों या नए मूल्यवान तथ्यो की खोज के लिए मैं जीवन के तात्कालिक तथ्यों के परे जाऊं। अपनी इस खोज में मैंने प्रकृति-विज्ञान का या 'संसार जैसा वस्तुतः है'—इस क्षेत्र का अध्ययन और मनन किया है, तथा उस नैतिक, आचार-परक और

धार्मिक विज्ञान के क्षेत्र का भी अध्ययन और मनन किया है जो यह मान कर चलता है कि 'संसार को ऐसा होना चाहिए।' इस अध्ययन में मैंने यह पाया है कि अनेक उत्तम लेखकों ने, जिनमें से बहुत से दार्शनिकों के रूप में विख्यात हैं, और अनेक उत्तम चिन्तकों ने ऐसी सूक्ष्म और स्पष्ट गलतियां की हैं जो धूल उड़ा देती हैं या तात्कालिक तथ्यों से परे देखने के आगे आड़ खड़ी कर देती हैं। ऐसे व्यक्तियों ने ज्ञात तथ्यों की भी उपेक्षा कर दी है। जो वैज्ञानिक अपनी प्रयोगशाला में ऐसी बात करता है वह स्वयं अपनी प्रगति में रोड़ा अटका लेता है। ज्ञात तथ्यों को मानने से, क्रम और व्यवस्था के भौतिक तथा आध्यात्मिक मूल्यों की प्रयोगशाला में उन तथ्यों के परे देखने की क्षमता से, प्राकृतिक नियमों में तर्क का आश्रय लेने से, और श्रद्धा, आशा, और सत्य-प्रेम से शक्ति ग्रहण करने से ही समस्त प्रगति होती है।

कार्य-कारणता का सिद्धान्त

कुछ वर्ष पहले की बात है कि कुछ व्यापारी, अपने आपको नास्तिक कहने वाला एक प्रमुख वैज्ञानिक, और मैं, एक खाने की मेज के चारों ओर बैठे हुए थे। धीरे धीरे वार्तालाप चल रहा था। एक व्यापारी ने कहा : 'मैंने पढ़ा है कि अधिकांश वैज्ञानिक नास्तिक होते हैं। क्या यह बात ठीक है ?'

व्यापारी ने मेरी ओर देखा। मैंने उसका उत्तर यों दिया : "मैं इस वक्तव्य की सत्यता में विश्वास नहीं करता। सच तो यह है कि विचार-विनिमयों में या अपने पठन-पाठन में मैंने यह पाया है कि विज्ञान के क्षेत्र में जिन लोगों ने मनुष्य जाति का सर्वाधिक उपकार किया है वे नास्तिक नहीं थे। बहुत से वैज्ञानिकों के उद्धरण गलत दिए गए हैं या उन्हें गलत रूप से पेश किया गया है।" मैंने कहना जारी रखा : "वैज्ञानिक जिस ढंग से सोचता है, कार्य करता है, या जीता है, उसके सर्वथा विपरीत है नास्तिकता का दृष्टिकोण। वैज्ञानिक इस सिद्धान्त के आधार पर काम करता है कि किसी बनाने वाले के बिना कोई यन्त्र नहीं बन सकता। ज्ञात तथ्यों के आधार पर वह तर्क का प्रयोग करता है, और जब वह अपनी प्रयोगशाला में प्रवेश करता है तब विश्वास और निष्ठा से ओत-प्रोत होता है। बहुत से वैज्ञानिक तो केवल काम ही इसलिए करते हैं क्योंकि उन्हें ज्ञान से प्रेम होता है, मनुष्य से प्रेम होता है और परमात्मा से प्रेम होता है। यह ठीक है कि वैज्ञानिक यन्त्रविन्यास को एक उपकरण के रूप में प्रयुक्त करता है, वह शरीर रूपी यन्त्र के बारे में भी चर्चा करता है। किन्तु उसकी सारी गवेषणा कार्यकारण के सिद्धान्त पर, विश्व के क्रम और नियम तथा एकता पर, आधारित होती है। जैसे अन्य हरेक आदमी करता है, वैसे ही कार्यकारण के सिद्धान्त पर विश्वास के आधार पर ही उसका प्रत्येक निर्णय या विचार-पूर्ण कार्य होता है।

"शरीर क्रिया विज्ञान में, जब कोई व्यक्ति शरीर की वृद्धि, विकास, संधारण और सुधार का अध्ययन करता है तो वह देखता है कि लगभग प्रत्येक कोष बिना किसी अपवाद के यह 'जानता है' कि समग्र शरीर की हिफाजत या कल्याण के प्रयोजन से उसे क्या काम करना है ? स्नायु-संस्थान में सामान्य प्रतिवर्ती क्रियाओं (रिफ्लेक्स ऐक्शन) से पता लगता है कि सप्रयोजनता उनकी एक बुनियादी विशेषता है। और अध्ययन करने पर यह अपरिहार्य निष्कर्ष सामने आता है कि मन के विकास के लिए जो यन्त्र उत्तराधिकार में मिला है उसकी रचना इस ढंग की गई है कि इन्द्रियों के पर्याप्त अनुभवों के साथ जब वह गति करता है तब परिणामस्वरूप कार्यकारण का सिद्धान्त अवश्यम्भावी हो जाता है। दूसरे शब्दों में, शरीर के समस्त अवयवों की प्रतिक्रियाओं की सप्रयोजनता के लिए जो मशीनरी उत्तरदायी है वह तब तक विशिष्ट बनती जाती है जब तक मन के विकास में शामिल मशीनरी के साथ इन्द्रियों का अनुभव मिल कर अन्ततः चेतनता की भावना पैदा नहीं कर देता।

"मैं औरों से कुछ अलग हूं और चेतन प्राणी हूं, इसके साथ ही एक प्राथमिकता की भावना या पर्याप्त कारण की भावना पैदा होती है। या एक-एक कोष की सप्रयोजन क्रिया से शुरू करें और उसकी विकासात्मक प्रक्रिया के अवसर प्रदान करें ताकि परिस्थिति के प्रति अधिकाधिक जागरूकता पैदा होती जाए, तो इस चेतनता की भावना के विकास की तर्कसंगत रूप से भविष्यवाणी की जा सकती है जिसके बाद कार्यकारण का नियम तैयार होगा और परिणामस्वरूप मनुष्य अपनी परिस्थितियों पर अधिकाधिक नियन्त्रण प्राप्त करता जाएगा।

"शरीर-क्रिया-विज्ञान में, मछली के क्लोमों या गलफड़ों से पानी की प्राथमिकता सिद्ध होती है, पक्षी के पंखों और मनुष्य के फेफड़ों से वायु की प्राथमिकता सिद्ध होती है, मनुष्य की आंखों से प्रकाश की प्राथमिकता सिद्ध होती है, वैज्ञानिक उत्सुकता से तथ्यों की प्राथमिकता सिद्ध होती है, जीवन की विद्यमानता से जीवनोत्पत्ति की व्यवस्था करने वाले प्राकृतिक नियम की प्राथमिकता सिद्ध होती है। अब मैं पूछता हूं : गम्भीर अन्तर्दृष्टि, विपुल तर्कशक्ति, महान् साहस, महान् कर्तव्य, महान् श्रद्धा और महान् प्रेम क्या किसी चीज की प्राथमिकता सिद्ध नहीं करते ? यह कहना सर्वथा असंगत है कि मनुष्य के विचारों, भावनाओं और कार्यों में जो महानता प्रकट होती है वह किसी भी चीज की प्राथमिकता की ओर संकेत नहीं करती। इनसे उत्कृष्टतर बुद्धिमान्, और उस सृष्टिकर्ता की पूर्व सत्ता सिद्ध होती है, जो उन लोगों के अनुभवों की दुनिया में प्रकट हुआ है जो उस उत्कृष्टतर बुद्धिमान् या सृष्टिकर्ता की खोज में लगातार आगे बढ़ते हैं।

"कार्यकारणता के सिद्धान्त को असिद्ध नहीं किया जा सकता। इसके बिना समस्त जीवित पदार्थों का कार्यकलाप बन्द हो जाएगा। मनुष्य का मन बिना कार्यकारण के आधार के काम नहीं कर सकता। मैं यह स्वीकार करता हूं कि कार्यकारणता का सिद्धान्त सर्वथा वास्तविक चीज है।

"मैंने कुछ वैज्ञानिकों को यह कहते सुना है कि जब तत्वमीमांसा (मेटा-फिजिक्स) या विचार के नियमों को लागू करने का प्रश्न होता है तब कार्यकारणता समाप्त हो जाती है। मेरी यह धारणा है कि विचार के बुनियादी सिद्धान्तों को, या उसे कार्यकारणता की प्राथमिकता कह लीजिए, प्रयुक्त करना और फिर उन्हें केवल इसीलिए छोड़ देना कि आप उनसे परेशान नहीं होना चाहते, बिल्कुल अयुक्तियुक्त है। कार्यकारण की शृंखला में मेटाफिजिक्स की कड़ी जुड़ जाना कोई तर्क के विपरीत बात नहीं है। हम अपने दैनिक जीवन और विज्ञान में बार-बार इसे दुहराते हैं। वह कड़ी सच उतरती है या नहीं, यह बिलकुल अलग सवाल है। किन्तु वह कड़ी सच है या नहीं, यह तब तक पता ही नहीं लगता जब तक उस कड़ी को यथास्थान न रखा जाए और गम्भीरता से खोज न की जाए। इस प्रकार की कड़ी को स्थापित करना ही एक मात्र ऐसा उपाय है जिससे जिज्ञासु सत्य और अन्तिम सत्य तक पहुंच सकता है।

"प्रतीत ऐसा होता है कि नास्तिकों या अज्ञेयवादियों या निरे सन्देहवादियों के मन में एक ऐसा अन्धेरा कोना या जड़ प्रदेश होता है जो उन्हें यह मानने से रोकता रहता है कि परमात्मा की सत्ता में विश्वास किए बिना समस्त सजीव और निर्जीव जगत् के संघटन को समझा ही नहीं जा सकता। जैसा कि आइन्स्टीन ने लिखा है : 'जो मनुष्य अपने जीवन को या अपने साथियों के जीवन को निरर्थक समझता है, वह केवल अभागा ही नहीं है, किन्तु वह जीवन के अयोग्य भी है।' मैं इसमें इतना और जोड़ूंगा कि जिस एकमात्र कारण से वह जीवन के अयोग्य है, वह है विश्वास और तर्क पर आश्रित आशा, यह आशा कि उसका परिणाम होगा या पुनर्जन्म होगा और बच्चे की तरह वह जीवन पर पुनर्विचार प्रारम्भ कर सकेगा।"

तब मैं अपने साथी वैज्ञानिक की ओर, जिसकी आलोचनात्मक योग्यता की मैं और अन्य सब लोग तारीफ करते हैं, मुड़ा और मैंने उससे पूछा : 'मैंने जो कुछ कहा है, क्या वह ठीक है ? उसने उत्तर दिया : 'हां, परन्तु महत्वपूर्ण प्रश्न तो यह है कि किस प्रकार का परमात्मा ?'

मैं इस बात पर सहमत था कि किसी भी विचारशील मनुष्य के समक्ष सबसे पहला महत्वपूर्ण प्रश्न यही उपस्थित होता है : 'क्या परमात्मा है ?' और दूसरा महत्वपूर्द्ध प्रश्न है : 'किस तरह का परमात्मा ?' तीसरा प्रश्न है : 'जीने का प्रयोजन क्या है ?' और चौथा प्रश्न है : 'भला क्या है और बुरा क्या है ?'

तब मैंने कहा : "केवल सृष्टिकर्ता और व्यवस्थापक के रूप में परमात्मा ईसाइयों द्वारा माने जाने वाले परमात्मा से ओछा पड़ता है। मैं दूसरे प्रश्न का अपनी ओर से उत्तर दूंगा। परमात्मा की सत्ता के सम्बन्ध में ईसाइयत का वही बुनियादी विचार है। अपने उत्तर को स्पष्ट और संक्षिप्त करने के लिए मैं 'यन्त्र और निर्माता' वाली उपमा से शुरू करूंगा। ऐसा करने से पहले मैं पुनः यह कहूंगा कि ईसाइयों की श्रद्धा यद्यपि तर्क से परे तक जाती है, किन्तु वह तर्क पर आश्रित सत्य का खण्डन नहीं

करती। जब कोई बुद्धिमान कारीगर कोई यन्त्र बनाता है तो उसके मन में उसका प्रयोजन और डिजाइन भी निहित होता है, और यन्त्र को बनाते हुए वह अपनी बुद्धि और अपने मन का 'स्व' भी उसमें डाल देता है। उस यन्त्र के लिए उसके मन में सहज भावुकता होगी और इस बात की भी उसमें रुचि होगी कि वह यन्त्र कैसे काम करता है। मैं किसी ऐसे तर्कसंगत सृष्टिकर्ता को नहीं सोच सकता जिस पर यह उपमा पूरी तरह से लागू न हो। वह सृष्टिकर्त्ता सर्वोच्च रूप से बुद्धिमान् माना जा सकता है, क्योंकि उसकी रचना से ऐसा ही पता लगता है। आप लोग इस बात पर ध्यान दें कि मैं ऐसे परमात्मा में विश्वास करता हूं जो, यदि एक बार लोग उसे अपने मन-मन्दिर में प्रविष्ट होने दें तो, मनुष्य को सदाचारी और सद्व्यवहार करने वाला बनाता है, महान् उद्देश्यों के लिए काम करने की उन्हें प्रेरणा देता है और उन्हें ऐसी आत्मा देता है जो ईश्वर और मनुष्य से प्रेम करती रहे।

रात के दो बजे का समय था, भोज का समय समाप्त हो चुका था और बात-चीत होनी बन्द हो गई थी।

जिस प्रश्न पर हमने चर्चा शुरू की थी उस पर पूरी तरह विचार करने का समय और स्थान यहां नहीं है। फिर भी 'क्या परमात्मा है?' इस प्रश्न पर अपना उत्तर पूरा करने से पहले मुझे कुछ बातें और कहनी हैं।

ईश्वर के गुण

विभिन्न दार्शनिकों ने तर्कपूर्वक विश्लेषण के आधार पर ईश्वर के गुणों का विस्तार से विवेचन किया है। तर्क के माध्यम से निष्कर्ष यह निकाला गया है कि परमात्मा में कुछ गुण हैं। इन गुणों का कुछ अपूर्ण सा विवरण इस प्रकार है:

ईश्वर अनादि है और अनन्त है. वह द्रव्य नहीं है, वह शरीर नहीं है, वह कोई हादसा नहीं है, वह दिव्य पूर्णता है, वह सब भलाइयों की भलाई है, वह बुराई को जानता है, किन्तु स्वयं बुरा नहीं बन सकता, वह किसी का बुरा नहीं चीतेगा, वह किसी से घृणा नहीं करता, वह असीम है, वह विशुद्धतम सत्य है, उसे ससीम का और वस्तुजात का ज्ञान है, ईश्वर में प्रेम और स्वतंत्र निर्णय है, परमात्मा में कोई वासनाएं नहीं हैं, न ही उसे किसी चीज की कमी है, वह नैतिक मूल्यों का संस्थापक है।

परमात्मा के ये गुण अधिकतर वही हैं जिनका बाइबिल में, खास तौर से 'न्यू टैस्टामैंट' में वर्णन किया गया है। बाइबिल-वर्णित ईश्वर के अधिकांश गुणों को स्वतः सिद्ध या स्वतः प्रमाण के रूप में तो पेश किया जाता है, किन्तु तर्क के आधार पर नहीं।

नैतिक कार्य-कारणता और स्वतंत्र बुद्धि

ईश्वर-विश्वास के अनेक कारण हैं। एक कारण जिसकी कभी उपेक्षा नहीं

करनी चाहिए, वह है, जिसे मैंने 'नैतिक भावना' और 'स्वतंत्र बुद्धि' नाम दिया है। स्वतंत्र बुद्धि से मेरा अभिप्राय है अपनी बुद्धि के अनुसार निर्णय करने की स्वतन्त्रता।

मनुष्य के जीवन का जो आध्यात्मिक और नैतिक पहलू है – कि उसे क्या करना चाहिए—इसका मनुष्य के कल्याण के लिए अमानवीय प्रकृति पर नियन्त्रण और ज्ञान की अपेक्षा कहीं अधिक महत्व है। प्राकृतिक विज्ञान के ज्ञान से, जिस संसार में हम रहते हैं उसको और अधिक अच्छी तरह समझ सकते हैं और जीवन की सुख-सुविधाओं तथा आवश्यकताओं के उत्पादन और वितरण के साधनों में सुधार कर सकते हैं, एवं हम कष्टों को कम करके दीर्घ जीवन का उपाय कर सकते हैं। किन्तु आजकल संसार में जो सबसे बड़ी समस्या है, वह नैतिक और धार्मिक ही है, अर्थात् अणुशक्ति का किस प्रकार प्रयोग किया जाए, जिससे मानव जाति के विनाश की अपेक्षा मानवजाति का कल्याण सध सके। व्यक्ति को या समाज को जिन समस्याओं ने सदा परेशान किया है वे समस्याएं नैतिक हैं, अर्थात् उचित निर्णय करने की समस्याएं हैं।

अपने चारों ओर हम यह देखते हैं कि भौतिक प्रकृति पर कभी विफल न होने वाले नियमों का साम्राज्य है। जंगलों के जानवरों के सम्बन्ध में भी यही बात ठीक हैं। किन्तु मनुष्य की प्रकृति इन सब से भिन्न बनाई गई है। और उसे निर्णय करने की स्वतंत्रता प्रदान की गई है। इसी बात को यों भी कह सकते हैं कि मानव समाज ऐसा बनाया गया है जिसे यह निर्णय करने की स्वतंत्रता है कि वह 'ज्ञान के वृक्ष' का फल खाए या न खाए। यदि हम परमात्मा के नैतिक नियम का पालन नहीं करते तो परिणाम स्वरूप हमें कष्ट भोगना होगा। यदि भौतिक प्रकृति को भी इसी प्रकार निर्णय करने की स्वतंत्रता होती तो मनुष्य की निर्णय करने की स्वतंन्त्रता कायम नहीं रह सकती थी और सब कुछ अस्त-व्यस्त हो जाता।

जानवरों के व्यवहार के अध्ययन से पता लगता है कि सामान्यतया दो प्राकृतिक नियम मानवेतर समस्त जीवित पदार्थों पर लागू होते हैं : (१) अपनी उत्तरजीविता (सरवाइवल), और (२) जाति की उत्तरजीविता। यदि इस प्रकार के नियम सर्वोपरि न होते तो कोई भी नस्ल चिरकाल तक कायम नहीं रह सकती थी। निम्न कोटि के जानवरों के व्यवहार पर लगभग पूर्ण रूप से बिना सीखा प्रतिवर्ती व्यवहार (रिफ्लेक्स-बिहेवियर) नियन्त्रण करता प्रतीत होता है, किन्तु प्राणी-जगत् में ज्यों-ज्यों हम ऊपर चढ़ते जाते हैं त्यों-त्यों हमें सीखा हुआ व्यवहार काम करता हुआ दिखाई देता है। किन्तु यह सन्देहास्पद है कि मनुष्य में निर्णय करने की जैसी स्वतंत्रता है, क्या वैसी स्वतंत्रता मनुष्य से नीचे किसी अन्य प्राणी में भी है? यदि वह होगी भी तो अत्यन्त सीमित होगी। इस प्रकार प्राणी-जगत् में हम यह देखते हैं कि प्रत्येक प्राणी अपने शरीर को 'प्रेम' करने और उसको क्षत-विक्षत होने से बचाने के लिए

प्रेरित होता है, वशर्ते कि उसे अपनी या अपनी जाति की रक्षा के लिए सन्नद्ध न होना पड़े। जानवरों के लिए विभिन्न नस्लों में 'जंगल का कानून' या 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' का कानून चलता है। जहां तक सावधानतापूर्वक अध्ययन किया गया है, बन्दर से नीचे तो प्राणियों में यही व्यवस्था दिखाई देती है। समाजों, (गल्लों रेवड़ों बस्तियों और झुण्डों) के निर्माण के लिए सब प्राणियों में अधिनायकवाद या तानाशाही की प्रवृत्ति दिखाई देती है। कहने का भाव यह है कि अपेक्षाकृत निम्न कोटि के प्राणियों में व्यवहार के जो नियम दिखाई देते हैं वे व्यवहारिक दृष्टि से प्रायः सर्वत्र समान हैं।

किन्तु मानव के इतिहास से पता लगता है कि उसमें प्राणियों के प्राकृतिक नियमों के अलावा कुछ अन्य विशेषताएं भी प्रकट होती है : जैसे रहस्यपूर्ण वस्तु के प्रति आतंक की भावना, या अपराध और 'चाहिए न चाहिए की भावना', और अन्ततः यह निर्णय कि जो शक्ति सब पर हावी है, वह अपराध के कारणीभूत कार्यों और निर्णयों की निन्दा करती है।

इस प्रकार यह पता लगा कि भौतिक जगत से निम्न दर्जे के प्राणियों तक और उसके बाद उच्च दर्जे के प्राणियों तक कार्य कारण की शृंखला का यह परिणाम निकला कि मनुष्य में उंचे दर्जे की निर्णय की स्वन्त्रता पैदा हो गई, जिसके कारण मनुष्य अपनी परिस्थतियों पर तथा अपने ऊपर और अधिक नियन्त्रण रखने में सफल हो सका। साथ ही निर्णय की यह स्वतन्त्रता भले और बुरे की चेतना के विकास के साथ भी जुड़ी हुई है जिसके कारण मनुष्य भलाई और बुराई में विवेक कर सकता है।

इस कार्य-कारण शृंखला का स्रोत क्या हो सकता है ? क्या यह शृंखला न-कुछ से पैदा हो गई और अकस्मात् के कारण ही दिखाई देने लगी ? तुम अपने कमरे में बैठकर पानी का गिलास भरो और इतने मात्र से यह विश्वास करो कि इससे विश्व का मानचित्र तैयार हो जाएगा—यह बात जितनी तर्क-विरुद्ध है उससे हजारों गुना तर्क-विरुद्ध यह बात है कि कार्य कारण की शृंखला न-कुछ से या अकस्मात् से आ गई।

यह देखकर कोई आश्चर्य नहीं होगा कि भौतिक विश्व के नियमों के, वनस्पति-जगत् और प्राणि-जगत् पर नियन्त्रण रखने वाले नियमों के, और मन के विकास के नियमों के कार्य करने के लिए जो कार्य-कारणता का सिद्धान्त आवश्यक है, वही हमें प्रेम, न्याय, दया, अधिकार, उत्तरदायित्व, सौन्दर्य जैसे प्राकृतिक नैतिक नियमों तक और अन्ततः परमात्मा तक ले जाता है। दूसरे शब्दों में वह सिद्धान्त उन उच्च विचारों के मूल्यों तक ले जाता है जिन्हें भौतिक पदार्थों की तरह अक्षरशः तोला नहीं जा सकता, या नापा नहीं जा सकता।

मैं कहता हूं कि मानव के भविष्य की आशा मुख्यत: जीवन में उन्हीं मूल्यों को अपने पास रखने के आग्रह पर निर्भर है जिन्हें नापा या तोला नहीं जा सकता। यदि जीवन की बुनियादी जरूरतें उपलब्ध हों, तो मनुष्य के जीवन में सच्चा सुख उन्हीं चीजों से प्राप्त होता है जिन्हें नापा या तोला नहीं जा सकता, उन्हीं आनन्दों से सुख मिलता है जिनके लिए पीछे पछताना नहीं पड़ता।

इतिहास से और उस पर विचार करने से मुझे यह निश्चय हो गया है कि नैतिक और आध्यात्मिक मूल्यों का महत्व मनुष्य के जीवन में इसी बात पर निर्भर है कि उसके व्यवहार को संचालित करने वाले विश्वास में दिव्य पूर्णता का प्रतिनिधित्व करने वाला कोई दिव्य व्यक्तित्व विद्यमान है या नहीं। हमारी बुद्धि विश्व में क्रम, व्यवस्था और एकता को और कार्यकारण के सिद्धान्त को प्रकट करती है। परन्तु इन तथ्यों से कोई धर्म नही बनता, न ही धर्म में स्थायित्व आता है, जब तक कि परमात्मा को पिता मानने और परिणामत: सब मनुष्यों को परस्पर भाई-भाई मानने के विचार एवं निर्णय करने की स्वतंत्रता के आधार पर हमारे दैनिक जीवन में वे तथ्य कार्यरूप में दृष्टिगोचर नहीं होते।

यदि इस भूतल पर जीवन को उत्कृष्ट बनाना है और उसे अतीत की विशेषताओं से सन्निविष्ट करना है, तो किसी दिव्य शक्ति के पथ-प्रदर्शन की आवश्यकता है। हाल में जो खेदजनक और दु:खद ऐतिहासिक घटनाएं घटी हैं, उनसे पता लगता है कि नैतिकता, सत्य, न्याय, दया और स्वतंत्रता मनुष्य को भीरु बनाती हैं, यदि उनकी जड़ ईश्वर-विश्वास में न हो। नाज़ियों के राज्य समाजवाद में, या नास्तिक साम्यवाद में, ईश्वर-प्रदत्त मनुष्य के चिर-पालित गुण भी भ्रष्ट और कलुषित हो गए।

किसी नैतिक संसार में, उत्तरदायित्व के संसार में ही, मनुष्य स्वतंत्र हो सकता है और ऐसे रह सकता है जैसे मनुष्यमात्र को रहना चाहिए। सब मनुष्य सचमुच परमात्मा की कृति होने के कारण ही बराबर हैं, क्योंकि ईश्वर की सन्तान होने और ईश्वर तथा अन्तिम नैतिक नियम की दृष्टि में ही वे सचमुच बराबर हैं, क्योंकि कोई पिता अपनी सन्तानों में भेदभाव नहीं करता। यदि ईश्वर से या अन्तिम नैतिक नियम से इन्कार कर दिया जाए तो दासता, परतन्त्रता, 'जिसकी लाठी उसकी भैंस', और मनुष्य द्वारा मनुष्य के शोषण के विरुद्ध कोई परिपूर्ण युक्ति नहीं दी जा सकती। यदि मनुष्यों में कोई चरम स्वत: मूल्य न हो, कोई चरम स्वत: निर्णय-बुद्धि न हो, कोई चरम स्वतंत्रता न हो, कोई चरम कर्त्तव्य न हो, तो उनमें केवल बाहरी मूल्य ही रह जाएंगे और तब अपेक्षाकृत अधिक बुद्धिशाली और शक्तिशाली लोग उनका चल सम्पति के रूप में या दासों और गुलामों के रूप में इस्तेमाल करेंगे। परमात्मा ने मनुष्य को जो अधिकार दिए हैं उन्हें परमात्मा ही छीन सकता है, किन्तु मनुष्य को जो अधिकार मनुष्य द्वारा या मानव-निर्मित संस्थाओं द्वारा दिए गए हैं, उन्हें मनुष्य या मानव-निर्मित संस्थाएं छीन सकती हैं। जब तक अनाहरणीय अधिकार परमात्मा या

सृष्टिकर्ता की ओर से नहीं आते, तब तक यह कहना अयुक्तियुक्त है कि मनुष्यों के कुछ ऐसे अधिकार भी हैं जिन्हें कोई मनुष्य या मानव-निर्मित संस्था नहीं छीन सकती, या उनसे इन्कार नहीं कर सकती और उनकी उपेक्षा नहीं कर सकती। मनुष्य किसी आन्तरिक योग्यता या गरिमा का दावा नहीं कर सकता, न ही चरम कर्तव्यों या उत्तरदायित्वों का दावा कर सकता है, यदि वह ईश्वर की सन्तान न समझा जाए।

क्या मनुष्य-मात्र की बन्धुता कोई ऐसी रियायत है जो मानव-निर्मित जड़वादी सरकार ने दी है और व्यक्ति और सरकार के व्यवहार के पथ-प्रदर्शन के लिए उसको कालोचित समझा गया है? या वह परमात्मा के पितृत्व से निकली है? किस स्रोत से उसमें सब से अधिक स्थायित्व आ सकता है? क्या स्वतन्त्रता आत्मा की स्वतन्त्रता से, मानव मन के निर्णय की स्वतंत्रता से आई है? या जड़वादी समाज की वह एक रियायत मात्र है? यदि मनुष्य सरकार और शासन की ही उपज है तो निर्णय स्वातन्त्र्य और आजादी की भावना कैसे टिक सकते हैं?

व्यक्ति की आन्तरिक योग्यता और गरिमा में विश्वास के बिना नैतिक पापों और क्रूरताओं का उदय होगा और उन्हें इस सिद्धान्त के आधार पर न्याययुक्त ठहराया जाएगा कि राज्य ही पूर्ण है। यदि साध्य ठीक है तो उसके लिए कोई भी साधन अपनाया जाए, वे सब ठीक ही माने जाएंगे। नूरेम्बर्ग में यही दुविधा थी। अत्याचारों और क्रूरताओं के लिए जिम्मेदार नाजी नेताओं और डाक्टरों को दोषी कैसे ठहराया जा सकता था और उन्हें सजा कैसे दी जा सकती थी, क्योंकि वे तो नाज़ी कानूनों का और अपनी सरकार के आदेशों का पालन कर रहे थे? उन्हें ईश्वर के शाश्वत, प्राकृतिक नियम के आधीन ही, जिन्हें नास्तिक रूसी प्रतिनिधियों ने विनीत भाव से मानवता के नियमों की संज्ञा दी, दोषी ठहराया जा सकता था और सजा दी जा सकती थी। यदि मनुष्य-निर्मित कानून ही बुनियादी मानवीय अधिकारों का एकमात्र स्रोत होता तो यहूदियों पर, जिप्सियों पर, पोलैण्डवासियों पर और अपने राजनीतिक शत्रुओं पर नाज़ियों के हमले की आप क्यों निन्दा करते हैं? हंगरी के देशभक्तों पर हमले की क्यों आलोचना करते हैं? नाज़ी कानून के अनुसार यहूदियों को कोई अधिकार नहीं थे। लाल साम्यवादी कानूनों के अनुसार हंगरी के देशभक्तों के कोई अधिकार नहीं थे। 'लौह आवरण' के पीछे साम्यवादी शासन के आधीन किसी मनुष्य का कोई ऐसा अधिकार नहीं है जिसे छीना न जा सके। यदि अधिकार अनाहरणीय है, तो उन्हें अनाहरणीय किसने बनाया?' यदि मनुष्य ने संसार को नहीं बनाया, तो वह अपनी कीमत, गरिमा, अधिकार, कर्त्तव्य, निर्णय-स्वातन्त्र्य और आजादी की भावना को भी अपने अन्दर कैसे पैदा कर सकता है? आपको हमेशा कार्यकारण की शृंखला का आश्रय लेना पड़ेगा और वह शृंखला अन्ततः आपको परमात्मा तक पहुंचा देगी, यदि आप स्वेच्छाचारितापूर्ण ढंग से उस पर विचार करना छोड़ ही न दें।

अपने समकालीन अमेरिकन जीवन में भी हम ऐसे सबूत देखते हैं जो इस बात का संकेत करते हैं कि अमेरिका की प्रजातंत्र प्रणाली भी धीरे-धीरे दूषित हो रही

है। उसे शनैः शनैः धर्म-निरपेक्ष बनाया जा रहा है और उसे धार्मिक और आध्यात्मिक आधार से वंचित किया जा रहा है। पाश्चात्य जगत् में मानवीय अधिकारों की अनाहरणीयता को सुरक्षित रखने के अनेक प्रयत्न किए जा रहे हैं, किन्तु उनके मूल दैवी उद्गम की अवहेलना की जा रही है। किन्तु यदि जड़ ही समाप्त हो गई, या विकृत हो गई, या उसे बिना परिवरिश के छोड़ दिया गया, तो ईसाइयत के सुफल कायम नहीं रह सकते और उसकी आध्यात्मिक राजधानी भी नहीं टिक सकती।

उनकी कृतियों से उन्हें पहचानिए

देववाद, मानववाद, सर्वदेववाद और अन्य दार्शनिक विचारधाराओं की मैं चर्चा नहीं करूँगा, क्योंकि मुझे निश्चय है कि लेनिन का यह निष्कर्ष, कम से कम जहां तक समकालीन इतिहास का सम्बन्ध है, सर्वथा ठीक है :

(१) भविष्य केवल या तो पूर्णतः द्रव्य का ही होगा, जिसका अर्थ है अनीश्वरवादी साम्यवाद, अथवा

(२) भविष्य पूर्णतः विचारपरक तर्क का होगा, जिसका अर्थ है ईश्वर में विश्वास।

आज हमें चाहे अच्छा लगे या न लगे, विश्व की अधिकांश भौतिक-शक्ति दो शिविरों में बंटी हुई है। यह समझा जाता है कि आस्तिक शिविर में अन्य चीजों के अलावा नैतिक और आध्यात्मिक शक्ति भी है। मार्क्स और लेनिन का नास्तिक शिविर 'पूंजीवाद' और आस्तिकता की समाप्ति अपना लक्ष्य घोषित करता है, ईश्वर और अपरिवर्तनीय सिद्धान्तों से इन्कार करता है, केवल इष्ट-सिद्धि को ही अपना नीतिशास्त्र मानता है और अपने उद्देश्य की प्राप्ति के लिए किसी भी प्रकार की पाशविकता और विश्वासघात को अच्छा समझता है। 'पूंजीवाद' की समाप्ति के पश्चात् जब लोग ईश्वर-विश्वास पर आधारित नैतिक और धार्मिक विचारों को भूल जाएंगे, तब एक नयी नैतिकता स्थापित होगी। यह नैतिकता व्यक्तिगत नैतिकता पर आधारित न होकर वर्ग-चेतना पर आधारित या शासन पर आधारित नैतिकता होगी।

मार्क्सवादी-लेनिनवादी दर्शन की असंगति यह है—क्योंकि कोई अपरिवर्तनीय नियम नहीं है, इसलिए किस काल में क्या करना उचित है, इस नीति में भी परिवर्तन हो सकता है। इसका अर्थ यह है कि 'शासन-कर्त्ता विशिष्ट वर्ग' और शासन-इच्छुक-विशिष्ट-वर्ग' के बीच संघर्ष हमेशा होता रहेगा। और क्योंकि किन्हीं बुनियादी नैतिक अन्तर्बाधाओं का अभाव होगा, इसलिए विश्वासघात और पाशविक संघर्ष चलता रहेगा। मार्क्सवाद और लेनिनवाद का एक ही विकल्प सम्भव है और वह यह कि कीड़े-मकोड़ों या पशुपक्षियों की सामाजिक प्रणाली अपनायी जाए, जिसका अर्थ है तानाशाही। किन्तु यह तानाशाही मनुष्य के बुनियादी स्वभाव के विपरीत है।

मनुष्य केवल द्रव्य नहीं है, वह कीड़े-मकोड़ों की कोटि का जन्तु भी नहीं है, वह किसी डिक्टेटर द्वारा हांकी जाने वाली भीड़ का अंग भी नहीं है, वह इन सबसे कुछ अधिक है।

यदि किसी स्थान पर साम्यवाद के किसी रूप ने, भले ही पूर्ण रूप से न सही, किन्तु सन्तोषजनक रूप से काम किया है, तो वह स्थान है कान्वैण्ट या मठ। परन्तु ये सफल साम्यवादी संस्थान नजरबन्दी-शिवरों, विश्वासघातों और अत्याचारों के द्वारा नहीं बनाए गए थे। लोगों के मनों में हुई क्रान्तियों के कारण उनका निर्माण हुआ था। परमात्मा के स्वाभाविक नैतिक नियम के अन्दर विश्वास के कारण ही उनका संचालन होता है।

इस समय पहले या दूसरे शिविर को समाप्त करने के लिए संघर्ष किया जा रहा है। खिष्ट्रीय युग के प्रथम तीन शतकों में एक करोड़ दस लाख व्यक्ति केवल इसलिए मौत के घाट उतार दिए गये क्योंकि वे अनीश्वरवादी भौतिकवाद को स्वीकार करके जीने की अपेक्षा ईश्वर में विश्वास रखते हुए मरना अधिक पसन्द करते थे। १९३९ से १९४५ तक कम से कम डेढ़ करोड़ आदमी नज़रबन्दी शिविरों में मार दिये गये, क्योंकि वे अनीश्वरवादी नाज़ीवाद को स्वीकार कर जीने को तैयार नहीं थे। मानवीय अधिकारों की रक्षा के लिए और स्वतन्त्रता की रक्षा के लिए आज के हम लोगों को भी अपने जीवनों का बलिदान देने को तैयार रहना चाहिये।

१९३३ से जनता के बड़े वर्गों पर शासन करने वाले दल के व्यवहार में हम नास्तिकता या अनीश्वरवादी भौतिकवाद का असर देखते हैं। पाश्चात्य देशों में, धर्म-निरपेक्ष स्कूलों और कालेजों में, यहां तक कि रविवारीय स्कूलों में भी, जहां नैतिकता, आचार-शास्त्र, दर्शन और धर्म का अध्यापन ह्रास पर है, वहां कभी निर्दोष समझी जाने वाली कार्ल मार्क्स और नीत्शे की विचारधारा बड़ी बड़ी शिक्षा संस्थाओं की 'हाथी दांत की मीनारों' में चलने वाली बहस से निकल कर उन लाखों अशिक्षित गरीब और शोषित लोगों में फैलाई गई है जो अपने शरीर और आत्मा को एक साथ रखने या अपनी रोजी-रोटी कमाने में ही इतने व्यस्त रहते हैं कि वे अन्य किसी विषय पर विचार ही नहीं कर सकते। शोषित की क्रान्ति का दम भरने वाले इन उग्र नेताओं ने या तो जाति, वर्ग विज्ञान और प्रगति को अपना ईश्वर मान कर बौद्धिक नास्तिकता प्रकट की है, या शक्ति, यश और धन सम्पत्ति को अपना ईश्वर मान कर अपनी मानसिक नास्तिकता प्रकट की है। घृणा पर आधारित उनके व्यवहार से संसार इतना परिचित है कि उसके बारे में चेतावनी देने की आवश्यकता नहीं। किन्तु यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि उनके व्यवहार को देखकर कोई समझ-दार आदमी नास्तिकता या अनुर्वर अज्ञेयवाद की सिफारिश करने को तैयार नहीं होगा।

जब कोई मुसीबत आकर पड़ती है और जीवन धारण करने का भौतिकवादी तर्क कुचला जाता है, तब इस प्रकार के नास्तिक और अनीश्वरवादी व्यक्ति के

व्यवहार पर भी ध्यान दीजिए। अक्सर आत्म-हत्या ही उनका एक मात्र उपाय होता है। जब जीवन का कोई प्रयोजन शेष नहीं बचता, तब, जैसा कि आत्महत्या के विवरणों से पता लगता है, बहुधा आत्मविनाश का ही मार्ग अपनाया जाता है—जैसा कि शराबियों के बारे में होता है।[1] जब हिटलर और उसके गिरोह ने अनेक प्रगतिवादी किस्म के अविश्वासी जर्मन यहूदियों से उनकी सम्पत्ति, कीर्ति और सत्ता छीन ली तो उनमें से बहुतों ने आत्महत्या कर ली। किन्तु जो यहूदी पुराने ढंग के और आस्तिक थे, उनके जीवित रहने का तर्क इस मुसीबत से न केवल अधिक स्पष्ट हो गया, बल्कि अधिक मूल्यवान् भी हो गया। जो व्यक्ति सचमुच परमात्मा में विश्वास करता है, उसके जीवित रहने का प्रेरणादायक तत्व और तर्क कभी समाप्त नहीं होता।

इसके अतिरिक्त कोई भी मानवीय साधन जिसने जबर्दस्ती बल प्रयोग के द्वारा भौतिक और आर्थिक दृष्टि से लोगों को बाध्य करने का अधिकार प्राप्त कर लिया है, फिर चाहे वह कोई शासक-दल हो, या कोई राजतन्त्र हो, या कोई जन-समुदाय हो, या कोई मजदूर यूनियन हो, या कोई आर्थिक एकाधिकार स्थापित करने वाला व्यापारिक वर्ग हो, या सरकार के अन्दर या बाहर काम करने वाली नौकर-शाही हो—वह बिना भ्रष्ट हुए नहीं रह सकता। बल-प्रयोग से हथियाई गई और छल-प्रयोग से कायम रखी गई कोई भी सत्ता, जिस पर कि शासितों का कोई सीधा नियन्त्रण नहीं है, भ्रष्ट होकर ही रहेगी। जहां तक नास्तिकों का प्रश्न है, यह भ्रष्टाचार और कई गुणा होकर बढ़ जाएगा।

ईश्वर-विश्वास का स्थायी मूल्य

ईश्वर-विश्वास को कभी भी कुचला क्यों नहीं जा सकता, इसके तीन कारण हैं।

प्रथम कारण तो यह है कि सब मनुष्यों के लिए, सब कालों के लिए, और सब अपेक्षाओं की पूर्ति के लिए जिस शिक्षा-प्रणाली की कल्पना की जाएगी, वह सदा आस्तिकता पर ही आधारित होगी। स्वास्थ्य और सुख को ही अपना लक्ष्य समझने वाली प्रकृतिवादी शिक्षा बीमार व्यक्ति के लिए नहीं हो सकती। व्यवहारवादी शिक्षा अकुशल और अपने आपको परिस्थितियों के योग्य न ढाल सकने वाले व्यक्ति

---

१. अधिकांश शराबी शराब पीने पर तभी आमदा होते हैं जब उनकी व्यक्तिगत गौरव की भावना समाप्त हो चुकी होती है और जिस प्रयोजन के लिए वे जी रहे होते हैं, वह प्रयोजन भी समाप्त हो चुका होता है। अध्ययन करने से पता लगा है कि आत्महत्या करने वालों में प्रायः पचास प्रतिशत शराबी होते हैं। कुछ मनोवैज्ञानिक शराब की लत को अस्थायी आत्महत्या बताते हैं। अन्य आत्महत्याएं शक्ति, यश और धन के मद में आकर या उनके छिन जाने पर होती हैं। इन सब लोगों में ईश्वर-विश्वास का अभाव होता है।

के लिये नहीं हो सकती। मानव-वादी शिक्षा अनपढ़ और विशुद्ध यान्त्रिक मन वाले व्यक्ति के लिए नहीं हो सकती। किन्तु ईश्वरवादी धार्मिक शिक्षा सब तरह के लोगों के लिए हो सकती है—कालेजों में भी, बाजारों में भी, घर में भी, अस्पतालों में भी, गन्दी बस्तियों में भी, जेलों में भी और लड़ाई के मैदानों में भी। ईश्वर-विश्वास से मनुष्य में जैसा आत्मिक बल आता है वह इस बात की गारण्टी है कि उस प्रकार का विश्वास करने वाले व्यक्ति की दुर्गति कभी नहीं हो सकती। शरीर-रचना-शास्त्र की दृष्टि से, धर्म की यह परिभाषा की जा सकती है कि मनुष्य अपनी ज़रूरत के मुताबिक किसी उच्चतर शक्ति की उपासना करता है। विशाल मानव समुदाय के लिए भी इस प्रकार की आवश्यकता को नष्ट कर देना अत्यन्त कठिन होगा।

दूसरा कारण यह है कि ईश्वर-विश्वास विश्व का और जीवन का परिपूर्ण अर्थ देने के लिए अपेक्षित है और विचारशील लोग इस प्रकार के अर्थ की हमेशा तलाश करेंगे।

तीसरा कारण यह है कि आगामी दीर्घ-काल तक बच्चे जन्म लेते रहेंगे और उनके मन का विकास तब तक उसी ढंग से होता रहेगा जब तक मन के और विचारों के विकास की प्रक्रिया वैसे ही कार्य करती रहेगी जैसी कि अब तक करती आई है। कुतर्की और व्यर्थ विवाद करने वाले या अपने आप को बुद्धिमान् कहने वाले लोग चाहे कुछ भी क्यों न कहते रहें, वे मानव की विचार-प्रक्रिया को बदल नहीं सकते। और इस दृष्टि से यह कहा जा सकता है कि यह विश्व उसी ढंग से कार्य करता रहेगा जैसा कि अतीत में करता आया है। कार्य-कारण का सिद्धान्त मनुष्य की स्वाभाविक विचार-प्रक्रिया का आवश्यक अंग है और जब तक कोई तर्कहीन व्यक्ति उस के मन को उस दिशा में जाने से रोक नहीं देता, तब तक वह सदा उसी दिशा में सोचेगा। मनुष्य जाति का सबसे अधिक जिन लोगों ने उपकार किया है उन्होंने प्रकृति-जगत् में, और प्रकृति जगत् से ऊपर उठकर विचार-जगत् में, कार्य करने वाले आधार-भूत नियमों के बुनियादी सिद्धान्तों की कभी अवहेलना नहीं की। इन्द्रिय-गोचर प्रत्येक वस्तु के तात्कालिक तथ्यों से परे कारण की खोज के लिए और नई सचाई का पता लगाने के लिए उन्होंने अपना प्रयत्न लगातार जारी रखा और अन्त में वे ईश्वर-विश्वास तक पहुंच गए।

इन्हीं कारणों से हम ईश्वर-विश्वास का समर्थन करते हैं। उन्हीं वस्तुओं का मूल्य सदा स्थायी और विकासमान होता है जो सब मनुष्यों के लिए सब परिस्थितियों में और सब कालों के लिए उपयोगी हो। यही कारण है कि भले ही विभिन्न युगों में सभ्यताओं का उत्थान और पतन होता रहा, किन्तु धार्मिक विश्वास की प्रवृत्ति और व्यक्ति तथा समाज पर उसका प्रभाव लगातार बढ़ता ही गया है। इससे भी अधिक महत्वपूर्ण बात यह है कि प्रत्येक बच्चे के जन्म के साथ तर्क-सम्मत विचार और विश्वास के बुनियादी सिद्धान्त सदा पुनः उदय होते रहेंगे।

हमें यह स्मरण रखना चाहिए कि एक छोटे से बच्चे में भी तर्क, बुद्धि, विश्वास, आशा और प्रेम की झलक अवश्य मिलती है। क्या यह इसलिए है कि ईसा ने बचपन वाले पहलू पर जोर दिया है ? उदाहरण के लिए देखिए :

'मुझ तक आने के लिए छोटे-छोटे बच्चे कष्ट उठाते हैं, उनको रोको मत, मना भी मत करो, क्योंकि ईश्वर का राज्य उन्हीं के लिए है।' (मार्क १० : १४)

'छोटे बच्चे के रूप में जो भी कोई ईश्वर के राज्य को प्राप्त नहीं कर सकता, वह इतना बुद्धिमान नहीं कि उस राज्य में प्रवेश पाने का अधिकारी हो।' (ल्यूक १८ : ११)

'जब तक तुम छोटे बच्चों की तरह नहीं बन जाते तब तक स्वर्ग के राज्य में प्रवेश पाने के अधिकारी नहीं हो सकते।' (मैथ्यू १८ : ३)

'जब तक किसी का नया जन्म नहीं होता, वह ईश्वर के राज्य को नहीं देख सकता।' (जान ३ : ३)

परमाणु के अभ्यंतर की झांकी का मार्ग प्रशस्त करने वाले वैज्ञानिक मैक्स प्लांक ने जैसे कहा है : 'सन्देहवाद के विरुद्ध, कट्टरता के विरुद्ध, और अन्धविश्वास के विरुद्ध, धर्म और प्रकृति-विज्ञान एक संयुक्त लड़ाई लड़ रहे हैं और यह जिहाद लगातार जारी है, और इस जिहाद का सदा एक ही नारा रहा है और सदा यह ही नारा रहेगा, : 'परमात्मा की ओर।'

मनुष्य जाति के उपकारकों की सूची में अग्रगण्य लुई पास्तोर के उद्धरण से मैं समाप्त करूँगा : 'यदि मुझसे कोई यह कहे कि ये निष्कर्ष निकालने में मैं तथ्यों से परे पहुंच गया हूं, तो मैं उत्तर दूंगा : यह सत्य है कि मैंने जानबूझ कर अपने आपको ऐसे विचारों के मध्य उन्मुक्त रूप से विचरण करने दिया है जिनको सदा कठोरता-पूर्वक सिद्ध नहीं किया जा सकता। चीजों को देखने और उन पर विचार करने का मेरा यह अपना तरीका है।'

यदि मैं भी तथ्यों से परे पहुंच गया होऊं और मैंने भूलें की हों, तो कृपया मुझे बताने का कष्ट करें, क्योंकि मैं सदा सीखने को उत्सुक रहता हूं।

——

श्रेष्ठ वैदिक साहित्य

ऋग्वेद (६ मण्डल) महर्षि दयानन्द कृत भाष्य	७१)	स्वर्ण पथ : सजिल्द :	३)
आर्ट पेपर पर उपहार संस्करण	१५१)	अजिल्द :	१.५०)
ऋग्वेद (७-१० मण्डल)	७१)	महान् अनुपमेय दयानन्द	१.५०)
उपहार संस्करण	१५१)	प्रभु के चरणों में	१.५०)
यजुर्वेद-सामवेद भाष्य	७१)	ऋषि दयानन्द ने कहा था	१.५०)
उपहार संस्करण	१५१)	वैदिक गृहस्थाश्रम—सजिल्द :	८)
अथर्ववेद भाषा भाष्य	७१)	धरती का स्वर्ग : गृहस्थाश्रम	२)
उपहार संस्करण	१५१)	ज्योति स्तम्भ	६)
यजुर्वेद भाष्य महर्षि दयानन्द कृत	३५)	आर्य क्रान्तिकारी	३)
अथर्ववेद परिचय	५)	वाल्मीकि रामायण अजिल्द	३)
अथर्ववेदीय चिकित्सा शास्त्र	१५)	सजिल्द	४)
वेदामृत	१०)	बृहस्पति राज धर्म सूत्र	२)
सामवेद भाष्य	२५)	उपनिषद् कथा माला	१)
अपने प्रभु से : प्रार्थना	१०)	महर्षि दयानन्द का ऐक्यवाद	१)
अथर्ववेदीय मंत्र विद्या	१०)	राष्ट्रवादी दयानन्द	१)
वेदों का यथार्थ स्वरूप	१०)	योग और ब्रह्मचर्य (सचित्र)	१.५०)
उपनिषद् संग्रह	१०)	शतपथ ब्राह्मण (प्रथम काण्ड)	२५)
वेद ज्योति : सजिल्द ५), अजिल्द :	४)	संक्षिप्त महाभारत	१०)
वन्दना के स्वर	१५)	वैदिक गीता भाष्य	१५)
दयानन्द चित्र दर्शन	२०)	मोक्ष का वैदिक मार्ग	१)
ज्ञान दर्शन	१०)	गायत्री-शतक	२)
अध्यात्म योग (कपड़े की जिल्द)	८)	माँ गायत्री	१.५०)
वैदिक धर्म ही क्यों ?	५० पैसे	धर्म का मार्ग	१)
		शतक-त्रयी	१.५०)

प्रकाशक :

जन-ज्ञान प्रकाशन

दयानन्द संस्थान, वेद मन्दिर, दिल्ली-६

प्रत्येक हिन्दू परिवार में होना ही चाहिए

परमात्मा का आशीर्वाद

चारों वेदों का हिन्दी भाष्य

(मन्त्र-अर्थ-स्वर सहित)

जिस के घर में वेद नहीं
वह हिन्दू का घर नहीं

रियायती मूल्यों और विवरण
के लिए पत्र लिखें

अध्यक्ष, दयानन्द संस्थान, वेद मन्दिर
५६६६३९/८०१२२१, दिल्ली-३६